

# **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र** **(Managerial Economics)**

**(Paper-X)**

**एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)**  
**M.A. Economics (Final)**

**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**  
**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**  
**रोहतक-124 001**

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK  
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system  
or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or  
otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University  
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय सूची

<b>अध्याय 1:</b>	प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र : प्रकृति एवं क्षेत्र	5
<b>अध्याय 2:</b>	मांग का अर्थ, प्रकार और निर्धारक तत्त्व	20
<b>अध्याय 3:</b>	मांग की लोच : अर्थ, मापने की विधियां एवं प्रबन्धकीय उपयोग	40
<b>अध्याय 4:</b>	मांग पूर्वानुमान : अर्थ, उपयोग और मापने की विधियाँ	58
<b>अध्याय 5:</b>	मांग पूर्वानुमान की विधियां	69
<b>अध्याय 6:</b>	लागत की विभिन्न धारणायें	84
<b>अध्याय 7:</b>	लागत सिद्धान्त	93
<b>अध्याय 8:</b>	उत्पादन फलन	118
<b>अध्याय 9:</b>	लाभ-हानि विश्लेषण	122
<b>अध्याय 10:</b>	व्यवहार में कीमत-निर्धारण की विधियां	131
<b>अध्याय 11:</b>	सीमा-कीमत निर्धारण का सिद्धान्त	151
<b>अध्याय 12:</b>	बहु उत्पाद कीमत निर्धारण	160
<b>अध्याय 13:</b>	वैधानिक कीमत	162
<b>अध्याय 14:</b>	पूंजी बजटन की प्रकृति और समस्याएं	164
<b>अध्याय 15:</b>	निवेश का मूल्यांकन	166
<b>अध्याय 16:</b>	पूंजी के स्रोत	174
<b>अध्याय 17:</b>	पूंजी की लागत	176
<b>अध्याय 18:</b>	फर्म का अधिकतम लाभ सिद्धांत	179
<b>अध्याय 19:</b>	बिक्री अधिकतम सिद्धान्त	182
<b>अध्याय 20:</b>	संतुलित संवृद्धि दर अधिकतम सिद्धांत	197
<b>अध्याय 21:</b>	प्रबन्धक की उच्च उपयोगिता या विलियमसन का प्रबन्धकीय डिस्क्रीशन मॉडल	202
<b>अध्याय 22:</b>	साइर्ट एवं मार्च का व्यवहारिक मॉडल	206

**M.A. Economics (Final)**  
**Paper-X**  
**Managerial Economics**

M. Marks : 100  
Time : 3 Hrs.

**Note:**

- (i) Question paper will consist of two sections A and B
- (ii) Section A will consist of two compulsory questions spread over the whole of syllabus. The first question will consist of 7 parts and the candidate will be required to attempt 5 parts. Answers will be very short type about 35 words carrying 4 marks each. The second question will consist of 3 parts and the candidate will be required to attempt 2 parts. Answer will be short type of about 200 words carrying 10 marks each.
- (iii) Section B of the paper will consist of 6 questions taking two from each unit, and the candidate will be required to attempt 3 questions selecting one from each unit. The answers will be of full length essay type carrying 20 marks each.

**UNIT-I**

Nature and Scope of Managerial Economics, Economic Theory and Managerial Economics, Market demand and demand forecasting: Market demand, meaning, types and determination, meaning, types and measurement of elasticity of demand, meaning and methods of demand forecasting, Survey methods-export opinion survey method, consumers interviews methods, statistical methods-trend method, regression method, leading indicator methods, simultaneous equation method.

**UNIT-II**

Theory of costs and break-even analysis. Various concepts of costs; Nature of cost functions (short and long period); Economics and diseconomics (internal and external); Estimation of cost-output relations; break-even analysis and its uses. Pricing Principles, policies and Practices; Limit pricing principle; Multiple product pricing, pricing in life cycle of a product statutory pricing.

**UNIT-III**

Capital budgeting and investment decision. Nature of capital budgeting problems, Evaluation of investment decisions. Sources and cost of capital. Alternative functions of business firms; Profit maximisation, sales revenue maximisation (Baumol); balanced growth rate maximisation (Mariss); managerial utility maximisation (Williamson); satisfying behaviour (Cyert & March).

## UNIT—I

## अध्याय 1

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र : प्रकृति एवं क्षेत्र

MANAGERIAL ECONOMICS :  
NATURE AND SCOPE

1950-60 के दशक के बाद बड़ी-बड़ी फर्मों का विकास हुआ। फर्मों में प्रबन्धकीय कार्यों में जटिलता आई। उत्पादन स्तर, उत्पादन की गुणवत्ता, उत्पादन का स्टॉक, वस्तुओं की कीमत, वस्तु की माँग का अनुमान इत्यादि कुछ ऐसी आर्थिक समस्याएँ प्रबन्धके के सामने आती थी। प्रबन्धक के पास निश्चित साधन होते थे और उन्हीं साधनों की सहायता से फर्म का विकास करना होता था। किसी प्रबन्धक की समस्या का कुछ आसानी से समाधान करने के लिए अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग हुआ, जिससे धीरे-धीरे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का महत्व बढ़ा। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र वर्तमान में Applied Economics का एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की परिभाषा, प्रकृति और क्षेत्र के घर में हम इस अध्याय में गहराई से व्याख्या करेंगे।

अर्थशास्त्र के वे सभी विचार जो एक व्यवसायी के लिए अच्छे और उपयोगी हो सकते और उसके निर्णय लेने में सहायक होते हैं, का एक क्रमबद्ध अध्ययन प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में वे सभी आर्थिक विचार शामिल किये जाने हैं जो फर्मों को निर्णय लेने और योजना बनाने में सहायक हो—

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को बहुत से विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे

1. व्यवसायिक अर्थशास्त्र
2. फर्म और उद्योग का अर्थशास्त्र
3. व्यवसायिक प्रबन्ध का अर्थशास्त्र
4. प्रबन्धक के लिए अर्थशास्त्र
5. व्यवसायिक निर्णय का अर्थशास्त्र

हम इन विभिन्न नामों में से कोई एक नाम दे सकते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की एक निश्चित प्रकृति और क्षेत्र रखता है उसकी व्याख्या से पहले उसकी परिभाषा की व्याख्या करेंगे।

### प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

#### (Meaning and Definition of Managerial Economics)

इसे विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ दी जा रही हैं :

**स्पेन्सर तथा सीगिलमैन** ने अपनी पुस्तक 'Managerial Economics—Decision Making and Forward Planning' में इसे निम्न शब्दों में परिभाषित किया है, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त तथा व्यापार पद्धति का इस उद्देश्य से किया गया समन्वय है कि "प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा हो।"

इस परिभाषा के अनुसार प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों तथा व्यापार पद्धतियों का समन्वय है। यह समन्वय इस उद्देश्य से किया गया है कि प्रबन्धकों को अपने व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में निर्णय लेने तथा भविष्य के सम्बन्ध में नियोजन करने में सुविधा हो।

यहाँ इस परिभाषा को समझने के लिए दो शब्दों का अर्थ समझ लेना अधिक उपयोगी होगा। प्रथम **निर्णय कार्य** एवं द्वितीय **भावी नियोजन**। एक प्रबंध का प्रमुख कार्य निर्णय एवं भावी नियोजन होता है। निर्णय का तात्पर्य दो या दो से अधिक वैकल्पिक मार्गों में से किसी एक का चुनाव करना होता है तथा भावी नियोजन का तात्पर्य भविष्य के लिए योजनाएं बनाना होता है। चुनाव की समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि उत्पादन के विभिन्न साधन-भूमि, श्रम, पूँजी, उद्यमी आदि सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा इनके वैकल्पिक उपयोग सम्भव होते हैं, अतः एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्णय द्वारा विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव करना होता है। एक बार निश्चित मार्ग अथवा विकल्प का चुनाव करने के बाद उत्पादन, कच्चे माल, पूँजी, श्रम, मूल्य आदि के सम्बन्ध में भावी नियोजन करना होता है। अतः निर्णय तथा भावी नियोजन दोनों साथ-साथ चलते हैं।

प्रबन्धक के लिए निर्णयन तथा भावी नियोजन का कार्य अत्यधिक जटिल है, क्योंकि व्यावसायिक इकाइयों को अनिश्चितता के वातावरण में कार्य करना होता है। व्यावसायिक इकाइयों को भविष्य का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है अतः व्यावसायिक प्रबन्ध को भूतकालीन समकों, वर्तमान सूचनाओं तथा भावी अनुमानों के आधार पर ही निर्णय लेने होते हैं तथा भावी नियोजन करना होता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र प्रबन्धकों को अनिश्चितता के वातावरण में अधिक सही निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सहायता पहुंचाता है।

**डब्ल्यू० डब्ल्यू० हेन्स** ने अपनी पुस्तक *Managerial Economics : Analysis and Cases* में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र निर्णय लेने में प्रयोग होने वाला अर्थशास्त्र है। यह अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है जो निरपेक्ष सिद्धान्त तथा प्रबन्धकीय व्यवहार के बीच की घाटी के सेतु-बन्धन का कार्य करता है। यह समस्याओं के स्पष्टीकरण, सूचनाओं के संगठन एवं मूल्यांकन तथा वैकल्पिक व्यवहारों की तुलना में आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों के प्रयोग को अधिक महत्व देता है।"

हेन्स के अनुसार प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की ही एक विशिष्ट शाखा है जो प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायक होती है। इसमें आर्थिक विश्लेषण के विभिन्न उपकरणों को प्रबन्धकीय निर्णयों के लिए प्रयोग करने को महत्व दिया जाता है।

**मैकनेर तथा मेरियम**, के अनुसार, "व्यवसायिक परिस्थितियों के विश्लेषण हेतु आर्थिक रीतियों का उपयोग ही प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में निहित है।"

मैकनेर तथा मेरियम ने प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को एक ऐसा विषय बतलाया है जिसमें विभिन्न व्यवसायिक परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए आर्थिक रीतियों अथवा विधियों का प्रयोग किया जाता है।

जोल डीन (Joel Dean) के अनुसार, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का उद्देश्य यह बताना है कि आर्थिक विश्लेषण का उपयोग व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण में कैसे हो सकता है।"

डीन के अनुसार प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र वह विषय है जो आर्थिक विश्लेषण का प्रबन्धकीय निर्णयों में उपयोग करना बताता है।

**जेम्स बेट्स तथा जे०आर० पार्किन्स** के शब्दों में "व्यावसायिक अर्थशास्त्र फर्म के आचरण का व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक अध्ययन है।"

बेट्स तथा पार्किन्स के अनुसार प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में एक फर्म के व्यवहार अथवा आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करते हैं।

**जोसेफ एल० मेसी** के अनुसार, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र प्रबन्ध द्वारा आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया करना होता है।

**नॉरमन एफ० दपती** के अनुसार प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र के उस भाग का समावेश होता है जिसे फर्म का सिद्धान्त कहते हैं तथा जो व्यवसायी को निर्णय लेने में पर्याप्त सहायक हो सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक ज्ञान की वह शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण के सिद्धान्तों का व्यावसायिक प्रबन्ध की नीति निर्धारण में प्रयोग करने हेतु अध्ययन किया जाता है। यह विज्ञापन अर्थशास्त्र तथा प्रबन्ध की सीमा पर स्थित है और अर्थशास्त्र तथा प्रबन्ध के मध्य सेतु-बन्धन का कार्य करता है।

### Nature of Managerial Economics

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति में सामाजिक विज्ञान और कला दोनों के समावेश होने बात कही जाती है।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के सामाजिक विज्ञान और कला के होने के कौन-कौन से तत्व मौजूद हैं। उनकी व्याख्या निम्न है।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की प्रवृत्ति रखता है क्योंकि यह मनुष्य से सम्बन्ध रखता है इसके सामाजिक होने के पक्ष में तर्क निम्न है।

**I. क्रमाणत अध्ययन (Systematic Study)**—इसमें प्रबन्धकों के आर्थिक क्रियाएं का अध्ययन किया जाता है। जैसे

1. कैसे अधिकतम लाभ का लक्ष्य प्राप्त करना ।
2. कम खर्च में उत्पादन किया जाए।
3. किस प्रकार अधिकतम वृत्ति की जाए।

**II. वैज्ञानिक नियम :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के कुछ नियम जैसे मांग का नियम, पूर्ति का नियम आदि वैज्ञानिक नियम हैं। ये कारण और परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

**III. नियमों की सत्यता :** अन्य विज्ञानों की तरह प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में अपने नियमों की जाँच की जाती है। जैसे-घटते उत्पादन के नियम, घटती उपयोगिता का नियम इत्यादि सत्य नियम माने जाते हैं।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र**—आदर्शात्मक और वास्तविक विज्ञान दोनों हैं।

**1. आदर्शात्मक विज्ञान :** एक प्रबन्धक को कितना उत्पादन करना चाहिए ? कितना विज्ञापन खर्च करना चाहिए ? कैसी कीमत नीति बनानी चाहिए ? आदि प्रश्नों पर अध्ययन करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रबन्धक अर्थशास्त्र की Nature—आदर्शात्मक विज्ञान जैसी है।

**2. वास्तविक विज्ञान :** वास्तविक विज्ञान में क्या है ? क्या था ? आदि का अध्ययन किया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में इन बातों का अध्ययन किया जाता है। जैसे-

1. उत्पादन के कौन से नियम लागू हो ?
2. लागत ऋण का आकार कैसा है ?
3. उद्योग में फर्म की स्थिति कैसी है ?
4. दूसरी फर्मों की संख्या कितनी है ?

**IV. अर्थशास्त्र कला के रूप में :** किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग को कला कहा जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में-प्रबन्धक अपने लाभ अधिकतम करना चाहता है, जिसके लिए उसकी कई व्यवहारिक निर्णय लेने पड़ते हैं और निश्चित नीति बनानी पड़ती है। जैसे विज्ञापन का सहारा लेना।

**कीमत कटौती का सहारा लेना :** हालांकि कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति में कला और विज्ञान दोनों का मेल है जिनकी विशेषताएँ की निम्न व्याख्या की जा सकती है।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति के अनुसार इसकी निम्न विशेषताएँ दी जा सकती हैं।

**1. व्यक्ति अथवा सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय स्वभाव (Micro Economics in nature)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का स्वभाव व्यक्ति अर्थशास्त्रीय होता है, क्योंकि इसमें अध्ययन की इकाई व्यक्ति अर्थशास्त्र की तरह से एक फर्म होती है। इसमें एक फर्म विशेष की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। इसमें एक व्यक्ति की क्रियाओं का भी अध्ययन नहीं किया जाता है, केवल व्यावसायिक फर्म का अध्ययन किया जाता है।

**2. 'फर्म सिद्धान्त' अथवा 'फर्म का अर्थशास्त्र' (Firm Theory or Firm Economics)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में उन सभी आर्थिक सिद्धान्तों, धारणाओं एवं मॉडलों का अध्ययन किया जाता है जिन्हें हम 'फर्म सिद्धान्त' अथवा 'फर्म के अर्थशास्त्र' के नाम से पुकारते हैं। इस लाभ सिद्धान्त की विवेचना भी की जाती जो अर्थशास्त्र के वितरण सिद्धान्त का एक भाग हैं। इसमें वितरण के अन्य सिद्धान्तों लगान, ब्याज, मजदूरी आदि का अध्ययन नहीं किया जाता है। इसमें लाभ सिद्धान्त का अध्ययन इसलिए किया जाता है, क्योंकि फर्म के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक उद्देश्य लाभ कमाना होता है। पहले फर्म का एकमात्र उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना माना जाता था। परन्तु अब इस विचारधारा में परिवर्तन हो गया है। फिर भी लाभ कमाना अथवा संतोषप्रद लाभ कमाना फर्म का एक उद्देश्य होता है।

**3. समष्टि अर्थशास्त्र भी उपयोगी (Micro Economics is also useful)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के लिए व्यापक अथवा समष्टि अर्थशास्त्र भी उपयोगी होता है, क्योंकि इसका ज्ञान उस वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने में सहायक होता है जिसमें एक व्यावसायिक फर्म काम करती है। समष्टि अर्थशास्त्र का ज्ञान व्यावसायिक प्रबन्धकों को उन बाहरी शक्तियों के साथ अपने व्यवसाय को यथा सम्भव सर्वोत्तम ढंग से समायोजन करने के योग्य बनाता है जिन पर प्रबन्धकों का कोई नियन्त्रण नहीं है परन्तु उनके व्यवसाय के कल्याण में निर्णायक महत्व रखती है। ऐसी महत्वपूर्ण बाहरी शक्तियों में सरकार की कर नीति, औद्योगिक नीति, विदेशी व्यापार नीति, श्रम नीति, राष्ट्रीय नीति आय विश्लेषण तथा व्यापार चक्र आदि प्रमुख हैं। समष्टि अर्थशास्त्र के वे सभी पहलू जो फर्म विशेष को प्रभावित करते हैं, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अध्ययन के भाग माने जाते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री इन महत्वपूर्ण समष्टि मूलक तत्वों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। उसे उन समष्टि मूलक पहलुओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके फर्म के निर्णयों को इनसे समायोजित करना होता है।

**4. वर्णनात्मक अर्थशास्त्र न होकर निर्धारणात्मक अर्थशास्त्र (It is not descriptive Economics but determinant Economics)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का स्वभाव वर्णनात्मक अर्थशास्त्र न होकर निर्धारणात्मक अर्थशास्त्र है। यह विभिन्न चरों का वर्णन न करके उनका निर्धारण करने वाला विषय है। आर्थिक सिद्धान्त में विभिन्न प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया जाता है परन्तु उनके बारे में उचित-अनुचित का निर्णय नहीं लिया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में विभिन्न चरों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों के बारे में निर्णय किया जाता है। उदाहरण के तौर पर आर्थिक सिद्धान्त में मांग के नियम का अध्ययन किया जाता है तब यह बताया जाता है कि मूल्य बढ़ने पर मांग घटती है तथा मूल्य घटने पर मांग बढ़ती है परन्तु वहाँ यह विचार नहीं किया जाता है कि मांग



में जो परिवर्तन होता है, वह अच्छा है अथवा बुरा। परन्तु प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में यह निर्धारण किया जाता है कि फर्म के लिए यह परिणाम अच्छा है अथवा बुरा।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री विभिन्न निर्णयों के फर्म पर पड़ने वाले अच्छे एवं बुरे प्रभावों की व्याख्या करता है। अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक विषय न होकर व्यावहारिक उपयोगिता का विषय है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की कुछ अन्य विशेषताएँ भी दी जा सकती हैं :

**5. सैद्धान्तिक शिक्षण की अपेक्षा केस विधि अधिक उपयोगी (Case Study method is more useful)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का शिक्षण सैद्धान्तिक न होकर किस वस्तु-स्थिति पर आधारित होने पर अधिक उपयोगी होता है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक विषय न होकर व्यावहारिक उपयोगिता का विषय है, अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री इस बात के लिए अभ्यस्त होने चाहिये कि वे विभिन्न परिस्थितियों में प्रबन्धकों को सही निर्णय लेने में सहायता पहुंचा सकें।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को विश्वविद्यालयों अथवा प्रबन्ध संस्थानों में केस विधि द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए अर्थात् विद्यार्थियों के सामने व्यावसायिक फर्म की समस्या रखी जाय तथा उसे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विधियों द्वारा हल करके दिखाया जाय, जिससे विद्यार्थी भविष्य में जब प्रबन्धक बनें तो वे अपनी फर्म की वास्तविक समस्याओं को हल कर सकें। सैद्धान्तिक शिक्षण व्यावहारिकता से दूर होता है अतः उसकी फर्म के लिए विशेष उपयोगिता नहीं होती है।

**6. अधिक परिष्कृत (More refined)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त की तुलना में अधिक परिष्कृत है तथा इसके अन्तर्गत विश्लेषण के लिए आधुनिक गणितीय तथा अन्य वैज्ञानिक उपकरणों की अधिक सहायता ली जाती है।

आर्थिक सिद्धान्त अत्यधिक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित होते हैं जबकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के मॉडल अधिक व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक होते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की धारणाओं अनिश्चितताओं के अन्तर्गत भी प्रबन्धकों को उपयोगी निर्णय लेने में सहायता पहुंचाती है।

## व्यावसायिक प्रबन्ध में अर्थशास्त्र के उपयोग के पहलू

### (Aspects of Application of Economics in Business Management)

व्यावसायिक प्रबन्ध में अर्थशास्त्र के उपयोग के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं :

(1) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र परम्परागत सैद्धान्तिक धारणाओं तथा वास्तविक व्यावसायिक व्यवहार तथा दशाओं के मध्य समन्वय स्थापित करता है। आर्थिक विश्लेषण में कुछ मॉडल (Model) बनाये जाते हैं तथा ये मॉडल कुछ मान्यताओं पर आधारित होते हैं। इन मॉडलों के आधार पर फर्म के व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। परन्तु इस प्रकार के निष्कर्ष इन मान्यताओं के कारण अवास्तविक बन जाते हैं क्योंकि वास्तविक जीवन में फर्म जिस प्रकार का व्यवहार करती है उसका संतोषजनक स्पष्टीकरण इन सिद्धान्तों से नहीं हो पाता है। अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के द्वारा इन आर्थिक मॉडलों को अधिक सरल मान्यताओं पर आधारित बनाकर वास्तविक व्यावसायिक व्यवहारों के अधिक अनुकूल बनाने की आवश्यकता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र यह कार्य करता है। इस तथ्य को एक या दो उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण के तौर पर व्यक्तिमूलक आर्थिक विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है और इस सभ्यता के आधार पर यह बताया जाता है कि फर्म कितना उत्पादन करेगी तथा उसे किस मूल्य पर बेचेगी। परन्तु, वास्तविक जीवन में

प्रत्येक फर्म का उद्देश्य सदैव लाभ अधिकतम करना नहीं होता है और इस तरह फर्म सिद्धांत फर्म के वास्तविक व्यवहार का संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान करने में असफल रहता है।

(2) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक प्रबन्ध में अर्थशास्त्र के प्रयोग का क्षेत्र आर्थिक सम्बन्धों को अनुमानित करने के रूप में प्रस्तुत करता है। जैसे वस्तु की मांग सम्बन्धी लोच को मापना अर्थात् वस्तु की आय लोच, मूल्य लोच, तिरछी लोच तथा प्रोत्साहन लोच कितनी है। वस्तु की लागत तथा उत्पादन में क्या सम्बन्ध है तथा वस्तु के मूल्य तथा आगम में क्या सम्बन्ध है आदि का अनुमान करने में आर्थिक विश्लेषण सहायक होता है। इन आर्थिक सम्बन्धों का उपयोग व्यावसायिक पूर्वानुमानों के लिए किया जाता है। अधिकांश भावी नियोजन पूर्वानुमानों पर आधारित होता है।

(3) आर्थिक मात्राओं का संख्या के रूप में उनकी सम्भावनाओं के सभी पूर्वानुमान करने में भी आर्थिक सिद्धान्त प्रबन्धकों को सहायता पहुंचाते हैं। जैसाकि हम सब जानते हैं कि सामान्यतया प्रत्येक व्यावसायिक प्रबन्धक को अनिश्चितता के वातावरण में काम करना पड़ता है अतः उसे भावी पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है जिससे वह भावी पूर्वानुमानों के आंकड़ों के आधार पर निर्णय ले सकें तथा भावी नियोजन कर सकें। प्रबन्धकीय भावी मांग, मूल्य, लागत, पूँजी, लाभ आदि का संख्या के रूप में उनकी सम्भावना के साथ पूर्वानुमान लगाता है। ये पूर्वानुमान निर्णय के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

(4) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक प्रबन्धक, को भावी नियोजन एवं निर्णय कार्य में आर्थिक मात्राओं के उपयोग करने तथा व्यावसायिक नीति निर्धारण में सहायता पहुंचाता है। भावी पूर्वानुमानों के आधार पर व्यावसायिक प्रबन्धक भविष्य के लाभ, मूल्य, लागत, पूँजी आदि के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारण करता है तथा उपलब्ध विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प को चुनता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र प्रबन्ध के सामने एक परिणामत्मक चित्र प्रस्तुत करता है तथा स्पष्ट करता है कि कौन-कौन से मार्ग उपलब्ध हैं, उनके क्या सम्भव परिणाम होंगे तथा प्रत्येक परिणाम करता है कि कौन-कौन से मार्ग उपलब्ध हैं, उनके क्या सम्भव परिणाम होंगे तथा प्रत्येक परिणाम की क्या सम्भावना है। प्रबन्धक इस चित्र के आधार पर किसी एक उपयुक्त मार्ग को चुनता है।

(5) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक प्रबन्धक को उस बाह्य वातावरण को समझने तथा व्यवसाय को उसके साथ समायोजित करने का मार्ग बताता है जिसमें एक फर्म को कार्य करना पड़ता है। उदाहरणार्थ व्यापार चक्र, राष्ट्रीय आय में उतार-चढ़ाव, विदेशी व्यापार, करारोपण, श्रम कानून, श्रम सम्बन्ध, एकाधिकार विरोधी अधिनियम, औद्योगिक लाइसेन्सिंग, मूल्य नियन्त्रण आदि के सम्बन्ध में सरकारी नीतियों का व्यवसाय पर क्या प्रभाव पड़ेगा तथा फर्म की नीतियों को किस प्रकार इनके साथ समायोजित किया जाए आदि की जानकारी प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र देता है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

### (Scope of Managerial Economics)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है क्योंकि इसमें वे सभी आर्थिक सिद्धान्त, अवधारणाएँ, मॉडल्स तथा विधियाँ सम्मिलित होती हैं जो व्यावसायिक फर्मों के प्रबन्धकों को निर्णयन तथा भावी नियोजन में सहायक होती हैं। कुछ अर्थशास्त्री ऑपरेशन्स रिसर्च (Operations Research) की विभिन्न विधियों को भी इसकी विषय वस्तु में शामिल कर लेते हैं। सामान्यतया आर्थिक विश्लेषण के निम्न पहलू इसके कार्य-क्षेत्र में आते हैं :

(1) **माँग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान (Demand Analysis and Forecasting)**—एक व्यावसायिक फर्म उत्पादन के साधनों को ऐसी वस्तुओं में बदलने का कार्य करता है जिन्हें बाजार में मुद्रा के बदले बेचा जा सके। फर्म अनिश्चितता के वातावरण में भावी पूर्वानुमानों के आधार पर

ही कार्य करती है। प्रबन्धकों के निर्णय मांग के सही अनुमानों पर निर्भर करते हैं। प्रबन्धकों के लिए फर्म की उत्पादन सारणियों का निर्धारण करने तथा उत्पादन के साधनों को उत्पादन कार्य में प्रयुक्त करने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि भावी विक्रय के सही पूर्वानुमान लगाये जाएं। भावी विक्रय-पूर्वानुमान फर्म के प्रबन्धकों को फर्म की बाजार में स्थिति बनाये रखने, सुदृढ़ करने अथवा लाभ बढ़ाने में मार्गदर्शन करते हैं। मांग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान प्रबन्धकीय निर्णय तथा भावी नियोजन में सहायक होते हैं। मांग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि फर्म की वस्तु विशेष की बाजार में वर्तमान में औसत कितनी मांग है, यह मांग किन-किन तत्वों से प्रभावित होती है, बाजार में वस्तु के कौन-कौन से स्थानापन्न उपलब्ध हैं तथा वस्तु विशेष की भावी मांग कितनी होगी। फर्म के मांग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान सम्बन्धी निर्णय सही होने पर फर्म अधिक लाभ कमाती है तथा निर्णय गलत होने पर हानि उठाती है।

(2) **उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध (Production, Planning and Management)**—प्रत्येक फर्म किसी विशेष उत्पादन कार्य में लगी होती है, अतः उसे उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध करना होता है। फर्म को अपने साधनों तथा उनसे उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं को ध्यान में रखकर लाभदायक निर्णय करने होते हैं। अपने कौन से साधनों को, कितनी मात्रा में, कौनसी वस्तु के उत्पादन में लगायें जिससे फर्म न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकें। प्रबन्धकों को उत्पादन कार्य जो कि आदान-प्रदान के पारस्परिक भौतिक सम्बन्ध की व्याख्या करता है, का समुचित ज्ञान होना चाहिए। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में उत्पादन प्रकार्य (Production Function) का विस्तार से अध्ययन किया जाता है। अल्पकालीन उत्पादन प्रकार्य में उत्पादन के नियमों एवं दीर्घकालीन उत्पादन प्रकार्य में पैमाने के प्रतिफल का विवेचन किया जाता है।

(3) **लागत विश्लेषण (Cost Analysis)**—प्रबन्धकों का एक महत्वपूर्ण कार्य फर्म के लाभ को अधिकतम करने के लिए लागतों की व्याख्या करना तथा नियन्त्रण करना होता है। लागतें अनेक प्रकार की होती हैं जैसे सीमान्त लागत, परिवर्तनशील लागत, स्थिर लागत आदि। इन विभिन्न लागतों को कम करके ही लाभ अधिक कमाया जा सकता है। लागतों को उसी समय कम किया जा सकता है जब लागतों की प्रवृत्ति तथा उनको प्रभावित करने वाले तत्वों के सम्बन्ध में खोज एवं अनुसन्धान कार्य किया जाए। अनेक बार प्रबन्धकों को लागतों को प्रभावित करने वाले समस्त तत्वों का ज्ञान नहीं होता है अथवा उन पर प्रबन्धकों का नियन्त्रण नहीं होता, अतः उन्हें लागत सम्बन्धी अनिश्चितता के वातावरण में कार्य करना होता है। आर्थिक लागतों का विश्लेषण लाभ-नियोजन तथा उचित मूल्य नीति निर्धारण में भी सहायक सिद्ध होता है। लागत विश्लेषण के अन्तर्गत लागत अवधारणायें तथा वर्गीकरण एवं लागत व उत्पादन सम्बन्ध सम्मिलित होते हैं।

(4) **मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नीतियाँ एवं व्यवहार (Pricing Policies and Practices)**—मूल्य फर्म के लिए आगम होता है। अतः मूल्य का निर्धारण प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण विषय है। फर्म की सफलता मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों पर निर्भर करती है। इसके अन्तर्गत बाजारों के विभिन्न प्रारूपों में मूल्य नीतियों तथा व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। मूल्य पूर्वानुमानों का अध्ययन भी इसी का भाग होता है। विभेदात्मक मूल्य निर्धारण तथा विभिन्न प्रकार छूट योजनाएँ भी मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नीति एवं व्यवहार के अन्तर्गत ही आती हैं। फर्म की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन मूल्य नीतियों का अध्ययन भी इसमें किया जाता है।

(5) **लाभ प्रबन्ध (Profit Management)**—व्यावसायिक फर्मों की स्थापना लाभ कमाने के उद्देश्य से की जाती है। दीर्घकाल में फर्म की सफलता का मापन लाभ के आधार पर ही होता है। लाभ आगम तथा लागतों पर निर्भर करता है। लागत तथा आगम अनेक कारकों से प्रभावित होते हैं जिनमें से कुछ कारक तो फर्म के लिए आन्तरिक होते हैं तथा कुछ बाह्य। यदि भविष्य के बारे में फर्म को इन कारकों का सही ज्ञान होता है तो लाभ का विश्लेषण बहुत सरल होता है। परन्तु

फर्म अनिश्चितता के वातावरण में विभिन्न अनुमानों एवं आशाओं के आधार पर कार्य करती है। इसलिए लाभ का नियोजन एवं प्रबन्ध प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण एवं जटिल कार्य है। इसके अन्तर्गत लाभ सम्बन्धी धारणाओं, लाभ नियोजन, लाभ नियोजन विधियों जैसे सम-विच्छेद विश्लेषण (Break-even analysis), लाभ-मापन तथा लागत नियन्त्रण का अध्ययन किया जाता है।

(6) **पूँजी प्रबन्ध (Capital Management)**—व्यावसायिक फर्मों की समय-समय पर पूँजी का विनियोजन करना होता है। पूँजी विनियोजन सम्बन्धी निर्णयों में एक ओर भारी राशियों का प्रश्न होता है तथा दूसरी ओर इनमें एक बार विनियोजन कर देने के बाद निर्णयों को वापस परिवर्तित करना बहुत कठिन होता है। ये निर्णय सर्वोच्च स्तर पर ही किये जाते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में पूँजी प्रबन्धक बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें पूँजी की लागत, पूँजी पर लाभ-देयता तथा विभिन्न परियोजनाओं में से उपर्युक्त परियोजना या परियोजनाओं का चुनाव सम्मिलित होता है।

(7) **अनिश्चितता के अन्तर्गत निर्णय सिद्धान्त (Decision Theory Under Uncertainty)**—प्रबन्धकों को बहुत से निर्णय अनिश्चितता, के वातावरण में लेने होते हैं। अनिश्चितताएँ अनेक प्रकार की होती हैं जैसे मांग की अनिश्चितता, लागत की अनिश्चितता, पूँजी की अनिश्चितता आदि। इन अनिश्चितताओं के कारण निर्णय प्रक्रिया अधिक जटिल हो गई है। अनिश्चितता की स्थिति में निर्णय लेने के लिए अनेक सांख्यिकीय विधियों का विकास किया गया है। आर्थिक विश्लेषण के यन्त्रों को इस तरह से परिशोधित किया जा रहा है कि जिससे अनिश्चितताओं को ध्यान में रखते हुए निर्णय प्रक्रिया को तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा सके।

(8) **विक्रय प्रोत्साहन एवं व्यूह-रचना (Sales Promotion and Strategy)**—एक व्यावसायिक प्रबन्धक को विक्रय-व्यूह रचना के प्रति भी पर्याप्त ध्यान देना होता है। विक्रय लागतें विक्रय व्यूहरचना पर निर्भर करती हैं। विक्रय व्यूह रचना पर ही विक्रय की मात्रा निर्भर करती हैं। विक्रय प्रोत्साहन पर कितना व्यय किया जाए, विज्ञापन की मात्रा, आकार एवं प्रकार क्या हो, यह सब प्रबन्धक को देखना होता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में विक्रय लागतों, विक्रय प्रोत्साहन योजनाओं एवं विक्रय व्यूह रचना व व्यवस्था का अध्ययन करना होता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में एक व्यावसायिक फर्म के सामने उपस्थित होने वाली विभिन्न अनिश्चितताओं से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। ये मांग की अनिश्चितताएँ, लागत की अनिश्चितताएँ, आगम अथवा मूल्य की अनिश्चितताएँ तथा लाभ की अनिश्चितताएँ होती हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र फर्म को इन अनिश्चितताओं का सामना करने तथा आवश्यक समायोजन करने का रास्ता बतलाता है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं आर्थिक सिद्धांत

### (Managerial Economics & Economics Theory)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के स्वभाव तथा इसकी विशेषताओं के अध्ययन के आधार पर इसकी अर्थशास्त्र से निम्न भिन्नताएं स्पष्ट की जा सकती हैं :

(1) अर्थशास्त्र में आर्थिक सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है जबकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में इन सिद्धान्तों का व्यावसायिक फर्म की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयोग किया जाता है।

(2) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का स्वभाव व्यक्ति अथवा सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय है जबकि अर्थशास्त्र का स्वभाव व्यक्ति अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र दोनों ही प्रकार का होता है।

(3) प्रबन्धकीय अर्थव्यवस्था में फर्म की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। यह व्यक्ति-मूलक अध्ययन है परन्तु इसका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष की समस्याओं से नहीं होता है। जबकि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध व्यक्ति तथा फर्म दोनों से ही होता है।

(4) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में लाभ सिद्धान्त का भी अध्ययन किया जाता है परन्तु वितरण के अन्य सिद्धान्तों की इसमें विशेष उपयोगिता नहीं होती है जबकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र में वितरण के सभी सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

(5) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त तथा धारणाएं व्यावहारिक से दूर, मान्यता प्रधान तथा काल्पनिक होती है जबकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की अवधारणाएं व्यावहारिक होती हैं।

(6) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की ही एक विशिष्ट शाखा है अतः अर्थशास्त्र अधिक व्यापक विषय है।

(7) अर्थशास्त्र अधिक पुराना विषय है, जबकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र केवल द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकसित विषय है।

(8) अर्थशास्त्र वर्णनात्मक (Descriptive) विषय अधिक होता है, जबकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र निर्देशात्मक (Prescriptive) विषय अधिक होता है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

### (Relation between Managerial Economics and Other Subjects)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अन्य विषयों विशेषतः अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, गणित सिद्धान्त, लेखा शास्त्र आदि से गहरा सम्बन्ध है। एक योग्य एवं प्रशिक्षित प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री इन सभी विषयों की अवधारणाओं एवं विधियों को प्रबन्धकीय समस्याओं के हल के लिए समाकलित करता है।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं सूक्ष्म अर्थशास्त्र** (Managerial Economics and Micro Economic Theory)—सूक्ष्म अर्थशास्त्र प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की अवधारणाओं तथा विश्लेषण सम्बन्धी उपकरणों के लिए मुख्य स्रोत है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में मांग की लोच, सीमान्त लागत, अल्प एवं दीर्घकाल, बाजार प्रारूप, आदि सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय धारणाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में मूल्य सिद्धान्त के विभिन्न मॉडलों का भी उपयोग किया जाता है। परन्तु इसमें सूक्ष्म अर्थशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण विचारों विशेषतः उदासीनता वक्र विश्लेषण का उपयोग नहीं किया जाता है।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र** (Managerial Economics and Macro Economics Theory)—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में समष्टि अर्थशास्त्र का योगदान मुख्यरूप से पूर्वानुमान के क्षेत्र में है। आधुनिक आय एवं रोजगार सिद्धान्त का सामान्य व्यावसायिक दशाओं के पूर्वानुमान में सीधा महत्व है। सामान्यतया एक व्यक्तिगत फर्म का भविष्य सामान्य व्यावसायिक दशाओं पर निर्भर करता है अतः व्यक्तिगत फर्म के पूर्वानुमानों पर निर्भर करते हैं।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी** (Managerial Economics and Statistics)—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के लिए सांख्यिकी बहुत उपयोगी है। प्रथम प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में आर्थिक सामान्यताओं (Economic generalization) की प्रायोगाश्रित जांच (Empirical testing) सांख्यिकीय विधियों द्वारा ही की जाती है। इन आर्थिक सामान्यताओं की रचना में निगमन तर्क का महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु ये सामान्यताएं व्यवहार में तभी मान्य होती है जब इनकी वास्तविक विश्व के आंकड़ों से जांच करके इन्हें सही पाया जाये। द्वितीय प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में निर्णय करने के लिए विभिन्न पारिमाणिक आंकड़ों का क्रमबद्ध तथा फलनीय सम्बन्धों के रूप में प्रस्तुतिकरण आवश्यक होता है। यह कार्य सांख्यिकी द्वारा ही सम्भव होता है। उदाहरण के तौर पर एक फर्म के मूल्य सम्बन्धी निर्णय मांग तथा लागतों पर आधारित होने के लिए यह आवश्यक है कि फर्म को मांग तथा लागत फलन सांख्यिकी द्वारा उपलब्ध हों। अन्तिम प्रबन्धकों को निर्णय करने के लिए विभिन्न चरों के बारे

में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं होती हैं और उन्हें भावी घटनाओं की अनिश्चितताओं से निबटना पड़ता है। ऐसी घटनाओं की अनिश्चितताओं से निबटने के लिए सम्भावना सिद्धान्त जो सांख्यिकी का एक भाग है, तर्क प्रदान करता है।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं गणित (Managerial Economics and Mathematics)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र से गणित का निकट का सम्बन्ध है। प्रबन्ध अर्थशास्त्र की घटनाओं को अधिक शुद्धता गणितीय उपकरणों द्वारा ही प्राप्त हुई है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की स्वभाव से ही मापनीय है। इसके अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक सम्बन्धों का माप एवं पूर्वानुमान किया जाता है तथा इन्हें प्रबन्धकीय निर्णय तथा भावी नियोजन के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र अत्यधिक गणितात्मक हो गया है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में ऑपरेशन्स रिसर्च (OR) का अत्यधिक महत्त्व है। ऑपरेशन्स रिसर्च स्वभाव से गणितीय ही है।

**प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं लेखाशास्त्र (Managerial Economics and Accounting)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं लेखाशास्त्र में घनिष्ठ समन्ध है। लेखाशास्त्र का सम्बन्ध व्यावसायिक फर्म की वित्तीय क्रियाओं के लेखा रखने से होता है। ये लेखे सामान्यतया भूतकालीन क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री अपने निर्णयों के लिए आवश्यक सामग्री जिन स्रोतों से प्राप्त करता है उनमें एक स्रोत लेखाशास्त्र है। लेखाशास्त्र के आंकड़ों का प्रबन्धकीय निर्णयों तथा भावी नियोजन में प्रयोग करने हेतु यह आवश्यक है कि उनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण, निरूपण तथा समायोजन किया जाए। एक उदाहरण द्वारा प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र तथा लेखाशास्त्र के सम्बन्ध को समझा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर वित्तीय विवरणों से फर्म के लाभ को देखकर यह निर्धारित किया जा सकता है कि यह इच्छित बिन्दु तक सुधार द्वारा बढ़ाया जा सकता है या नहीं। यदि बढ़ाया जा सकता है तो व्यवसाय के सुधार का और यदि नहीं बढ़ाया जा सकता है तो व्यवसाय को बन्द करने का निर्णय किया जा सकता है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का महत्त्व

### (Importance of Managerial Economics)

आधुनिक व्यवसाय में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तविक जगत में आर्थिक समस्याओं से संबंधित बेहतर निर्णय ले पाने एवं अग्रिम आयोजन हेतु इसका विशेष महत्त्व है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के महत्त्व को निम्नलिखित द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है :

**1. सूक्ष्म व्यवसाय मॉडल (Important Concepts Model)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र बेहतर निर्णय निर्माण के लिए कई उपकरण और तकनीकें प्रदान करता है जिससे प्रबंधन को अधिक बढ़िया व्यवसाय मॉडल निर्माण में सहायता मिलती है। यदि परंपरागत अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, तकनीकों और उपकरणों को वास्तविक व्यवसायिक व्यवहारों के साथ जोड़ता है।

**2. महत्त्वपूर्ण धारणाएं (Important Concepts)**—प्रबंधकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक समस्याओं की व्याख्या और समाधान करने वाली महत्त्वपूर्ण धारणाएं प्रदान करता है। मांग की लोच, स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतें, अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागतें, अवसर लागतें, सम-सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त जैसी धारणाएं, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का जानकारी और कुशलता में वृद्धि करती है।

**3. व्यावसायी आंकड़ों की पूर्ति (Supplies of Business Data)**—फर्म अपने व्यावसायिक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आंकड़ों का संकलन और विश्लेषण करती है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्र ऐसे आंकड़ों की पूर्ति में सहायक होता है।

**4. आर्थिक संबंधों का पूर्वानुमान (Predicting Economics Relationship)**—अर्थशास्त्र आय, मांग की लोच और लागत-लाभ विश्लेषण जैसे विभिन्न व्यावसायिक घटकों के बीच आर्थिक संबंधों का पूर्वानुमान करता है। यह निर्णय निर्माण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण बाह्य घटकों को समझने में भी सहायक होता है।

**5. व्यावसायिक पूर्वानुमान (Business Forecasting)**—सामान्य व्यावसायिक क्रिया का अल्पकालीन पूर्वानुमान करना प्रबन्धक का मुख्य कार्य है। व्यावसायिक अथवा मांग पूर्वानुमान करने, बाजार शोध एवं नीति विश्लेषण पर आधारित व्यावसायिक दशाओं, लागतों, लाभ, पूंजी, उत्पादन कीमत आदि में परिवर्तन का पूर्वानुमान करने में यह प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री की मदद करता है।

**6. प्रबन्धकीय अनुशासन (Managerial Discipline)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र बेहतर प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र बेहतर प्रबन्धकीय अनुशासन प्रदपन करने का विज्ञान और कला है। यह प्रबन्धकीय निर्णयों और व्यावसायिक समस्याओं के संबंध में आर्थिक सावधानी एवं जानकारी बढ़ाता है।

**7. संसाधनों का इष्टतम आवंटन (Optimal Allocation of Resources)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र संसाधनों के इष्टतम आवंटन में फर्म के व्यवहार से संबंधित है। यह किसी उत्पादन क्षेत्र में विभिन्न विकल्पों और प्रतियोगी क्रियाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ विकल्प को चुनने में सहायता के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करता है।

**8. एकीकरण (Integration)**—फर्म के उस स्तर पर जहां उसके कई कार्यशील विभाग होते हैं, जैसे उत्पादन, विपणन, वित्त, मानव संसाधन, विकास विभाग आदि, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र इन विभिन्न क्षेत्रों को एकीकृत करता है।

इस प्रकार, व्यावसायिक समस्याओं को हल करने में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का विशेष महत्त्व है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री की भूमिका या कार्य

### (Role of Functions of Managerial Economist)

वह व्यक्ति जो प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अध्ययन कर प्रबन्धन के अंग के रूप में निर्णय-निर्माण में सहायक होता है, उसे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री कहते हैं।

निर्णय, निर्माण और सूचना परिष्करण (Information Processing), प्रबन्धकों के दो मुख्य कार्य हैं। विवेकपूर्ण निर्णय लेने के लिए, प्रबन्धकों को सूचना प्राप्त करने, उसके परिष्करण और प्रयोग में सक्षम होना चाहिए। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का कार्य प्रबन्धकों को यह बताना है कि कौन-सी सूचना एकत्र करनी चाहिए तथा उसका कैसे परिष्करण और उपयोग किया जाए। अतः निर्णय निर्माण तथा अग्रिम आयोजन संबंधी समस्याओं को सुलझाने में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के कार्यों को हम दो भागों में बांट सकते हैं :

#### 1. विशिष्ट कार्य (Specific Functions)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को कई विशिष्ट कार्य करने पड़ते हैं जैसे वर्तमान में घाटे में चल रही शाखा को बंद कर दिया जाय या चलने दिया जाए, स्टोर खुलने के दैनिक घंटों को बढ़ाया जाय या नहीं आदि। इसके लिए इन्हें आर्थिक आंकड़े एकत्रित करने पड़ते हैं तथा व्यावसायिक

वातावरण से संबंधित सभी प्रासंगिक सूचनाओं का विश्लेषण कर फर्म और उद्योग द्वारा सामना की जा रही समस्याओं पर स्थिति-पत्र तैयार करने पड़ते हैं। तीव्र तकनीकी विकास वाले उद्योग की स्थिति में, उन्हें बदलते तकनीकी स्तर के प्रभाव का निरन्तर मूल्यांकन करना पड़ता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को छोटे और बड़े आकार के वित्तीय, लाभ और बाजार की संभाव्यताओं को ध्यान में रखते हुए पूंजी बजट का मूल्यांकन करना पड़ता है। साथ ही, अक्सर उन्हें अपने चेयरमैन तथा शीर्ष अधिकारियों के लिए भाषण तथा लेख तैयार करने पड़ते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के निम्न विशिष्ट कार्य हैं :

(i) मांग अथवा विक्रय पूर्वानुमान; (ii) औद्योगिक बाजार-शोध; (iii) प्रतिस्पर्धात्मक कंपनियों का आर्थिक विश्लेषण; (iv) कीमत-निर्धारण और संबंधित निर्णय; (v) पूंजी प्रोजेक्ट्स; (vi) उत्पादन कार्यक्रम; (vii) पूर्ति पूर्वानुमान; (viii) समयोजित सलाह; (ix) लाभ आयोजन; (x) निवेश मूल्यांकन और पूर्वानुमान; (xi) सुरक्षा प्रबन्धक विश्लेषण; (xii) व्यापार और जन-सम्पर्क के विषय में सुझाव; (xiii) प्राथमिक वस्तुओं के विषय में सुझाव; (xiv) विदेशी मुद्रा प्रबन्धन पर सुझाव; (xv) कृषि का आर्थिक विश्लेषण; (xvi) अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं का विश्लेषण; (xvii) व्यावसायिक वातावरण संबंधी घटकों का विश्लेषण और पूर्वानुमान; तथा (xviii) निर्णय निर्माण आदि।

इन कार्यों में मांग पूर्वानुमान और बाजार शोध प्रमुख हैं। इसके लिए प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को अपने और प्रतियोगी फर्मों के बिक्री संबंधी आंकड़ों को एकत्र करना पड़ता है। इस आधार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन कर एक रिपोर्ट देनी पड़ती है ताकि प्रबन्धक को बाजार में उनकी मांग की स्थिति का ठीक-ठीक पता चल सके कि बाजार में उसकी क्या भागीदारी होगी? उद्योग में कौन-सी फर्म क्यों उससे आगे है तथा उसके पिछड़ने का कारण क्या है? इन सभी कार्यों और अन्य कई प्रबन्धकीय निर्णयों के लिए मूल अर्थशास्त्र के प्रयोग तथा विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण की जरूरत पड़ती है।

## 2. सामान्य कार्य (General Functions)

अर्थशास्त्री का एक मुख्य कार्य उन घटकों का पता लगाना है जो भविष्य में व्यवसाय को प्रभावित करने वाले हैं। इनकी जानकारी सर्वश्रेष्ठ निर्णय-निर्माण में सहायक होती है। इन घटकों को हम दो श्रेणियों में बांट सकते हैं : (i) बाह्य घटक और (ii) आन्तरिक घटक।

(i) **बाह्य घटक (External Factors)**—बाह्य घटकों पर फर्म का कोई वश नहीं चलता। फर्म सिर्फ सही समय पर इन घटकों का उचित समायोजन कर सकती है। ये घटक व्यावसायिक वातावरण का निर्माण करते हैं। प्रबंधकीय अर्थशास्त्री का कार्य इन बाह्य घटकों की प्रवृत्ति को समझना और उसके आधार पर नीति-निर्माण का सुझाव देना है। बाह्य घटकों के अन्तर्गत निम्न बातें आती हैं :

(1) अर्थव्यवस्था की सामान्य आर्थिक दशा बाह्य घटकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अर्थात् राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दशा क्या है? साथ ही, राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर और स्तर, स्थानीय, क्षेत्रीय एवं विश्व-व्यापी आर्थिक दशाएं, क्षेत्रीय आय वितरण, अर्थव्यवस्था पर अन्तर्राष्ट्रीय घटकों का प्रभाव, निकट भविष्य में व्यापार चक्र की कौन-सी अवस्था आने वाली है, आदि।

(2) उत्पाद की मांग की संभावना दूसरा महत्वपूर्ण बाह्य घटक है। सामाजिक व्यवहार, जन-सामान्य की क्रय-शक्ति, फैशन, रुचि तथा अधिमान आदि में कोई परिवर्तन हो रहा है या नहीं तथा इनके प्रभावों से कम्पनी के उत्पादों की बिक्री बढ़ेगी या घटेगी या लगभग विलुप्त हो जाएगी। प्रबंधकीय अर्थशास्त्री इन प्रश्नों को उत्तर खोजकर प्रबंधन को आवश्यक सुझाव देता है।

(3) क्या कोई तत्त्व फर्म की साधन लागत को प्रभावित तो नहीं कर रहा है अर्थात् बाजार की ऋण शर्तें, सरकारी ऋण नीति में होने वाले परिवर्तन तथा विभिन्न क्षेत्रों में श्रम-लागत क्या है ?



(4) विदेशी बाजारों का विस्तार या संकुचन होने वाला है तथा नए विदेशी नियमों का बाहरी अर्थव्यवस्था की फर्मों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

(5) कच्चे माल तथा तैयार माल के बाजार की प्रकृति क्या है ? यह बात कीमत नीति में सहायक होती है।

(6) प्रतियोगिता और भी बढ़ेगी या घटेगी।

(7) सरकार की आर्थिक नीतियों की प्रवृत्ति क्या है ? सरकार का वार्षिक बजट कैसा है कर की दर, प्रशुल्क और आयात प्रतिबन्धों में क्या परिवर्तन हुए हैं ?

(8) केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीतियां औद्योगिक उत्पादन और उपभोक्ता व्यय को प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर रही हैं ? ये नीतियां फर्म की लागत, ऋण, बिक्री और लाभ को किस तरह प्रभावित करेंगी ?

(9) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री मांग की प्रकृति और प्रवृत्ति समझकर बाजार में फर्म के भाग का विस्तार भी करते हैं।

(ii) **आन्तरिक घटक (Internal Factor)**—चूंकि आन्तरिक घटक फर्म के क्षेत्र और प्रचलनों (Operations) के अन्तर्गत आते हैं, अतः प्रबन्धन का उन पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। इन्हें व्यावसायिक प्रचालन भी कहते हैं। इन घटकों की जानकारी से फर्म के मालसूची, उत्पादन तथा बिक्री संबंधी निर्णय में मदद मिलती है। यह वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की प्रवृत्ति के पूर्वानुमान में भी सहायक होती है। इस सन्दर्भ में निम्न बातें आती हैं :

(1) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का प्रमुख कार्य फर्म के लिए अधिकतम लाभ पैदा करने वाले उत्पादन मिश्रण की खोज करना तथा वर्तमान बाजार दशाओं पर विभिन्न वस्तुओं की उचित कीमत निर्धारित करता है।

(2) अगले वर्ष के लिए बिक्री और लाभ का विवेकपूर्ण बजट तैयार करना।

(3) फर्म अपने निवेश-निर्णयों के लिए भी प्रबन्धकीय अर्थशास्त्रियों से सहायता मांगती है। फर्म द्वारा निवेश करने की लागत और निवेश पर प्रतिफल का पूर्वानुमान करना इनका काम है।

(4) अगले महीने कितनी नकद राशि उपलब्ध होगी तथा उसका निवेश किन क्षेत्रों में और कितना किया जाए ?

(5) मजदूरी नीतियों में क्या परिवर्तन किए जाए ?

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को व्यावसायिक वातावरण ध्यान में रखते हुए इन सारे सवालों का जवाब ढूंढना पड़ता है।

**सार्वजनिक वाद-विवाद (Public Debates)**—कई सुप्रसिद्ध प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री सार्वजनिक वाद-विवाद में भाग लेते हैं। सरकार और समाज द्वारा उनके विचार और सुझाव जाने जाते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री, सरकारी निर्णयों का रूपान्तरण और उद्योग की प्रतिक्रियाओं को बताकर सरकार और उद्योग के बीच सेतु का काम करते हैं। सचमुच, इनके काम में सतर्कता से और दबाव में काम करने की योग्यता बहुत जरूरी है।

## प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का उत्तरदायित्व

### (Responsibilities of a Managerial Economist)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री, प्रबंधन के लिए किस प्रकार सर्वाधिक सहायक हो सकता है ? इसके लिए उसके कर्तव्य और उत्तरदायित्व को समझना आवश्यक है, जो निम्न प्रकार हैं :

**1. उद्देश्य और कार्य में समन्वय (Adjustment in Objectives and Functions)**—इसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व अपने कार्य और उद्देश्य में ताल-मेल रखना है। फर्म का मुख्य

उद्देश्य निवेश की गई पूंजी पर अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को इस बात में गहरी आस्था होनी चाहिए कि लाभ ही व प्रेरक शक्ति है जिससे व्यवसाय पल्लवित और पुष्पित होता है तथा उसका पहला कर्तव्य अधिकतम लाभ कमाने के लिए फर्म को सक्षम बनाना है। तभी वह एक सफल प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री के रूप में ख्याति अर्जित कर सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के दौरान उसे अनेक आलोचनाएं सुननी पड़ सकती है, परन्तु इससे उसे हतोत्साहित नहीं होना चाहिए।

**2. उद्योग की राजनीति की जानकारी (Knowledge of Industry Politics)**—फर्म की सफलता का राज इस बात में निहित है कि उद्योग में अन्य फर्मों की क्या कमजोरियाँ हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का विचार सिर्फ उनके सैद्धान्तिक ज्ञान पर ही आधारित नहीं होना चाहिए बल्कि उन्हें उद्योग जगत की राजनीति का गहरा अध्ययन होना चाहिए।

**3. सही पूर्वानुमान (Accurate Forecasts)**—हम देखते हैं कि सामान्यतया प्रबन्धन के प्रत्येक निर्णय भविष्य से संबंधित होते हैं। जबकि भविष्य अनिश्चित है तथा अनिश्चितता जोखिमों से भरी है। ऐसी स्थिति में, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का यह परमदायित्व होता है कि वह पूर्वानुमान इतना सही करे कि फर्म के सामने भविष्य की अनिश्चितताओं से उत्पन्न होने वाली जोखिमें कम-से-कम हों। ऐसा पूर्वानुमान वे बाजार दशाओं, सामान्य आर्थिक वातावरण, सरकारी नीतियों आदि पर उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर करते हैं। इसके लिए वे संभाव्यता सिद्धान्त की तकनीक का प्रयोग करते हैं। यदि प्रबंधन के पास ऐसा सही पूर्वानुमान और उसके संभावित प्रयोग उपलब्ध है तो वह अधिक सरलतापूर्वक व्यावसायिक आयोजन कर सकता है। प्रबंधकीय अर्थशास्त्री प्रबंधन का विश्वासपात्र तभी बन सकता है जब उसके पूर्वानुमान सही साबित होते हैं।

**4. पूर्वानुमान में परिवर्तनों की सूचना देना (To Inform about the Changes in Forecasts)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री जब यह देखता है कि कुछ आकस्मिक और तुच्छ घटकों या अपनी किसी गलती के कारण उसका पूर्वानुमान गलत साबित होने वाला है तो उसका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह शीघ्र दूसरा नया पूर्वानुमान करे और प्रबन्धन को इसकी सूचना यथाशीघ्र दें। समय पर और शीघ्रता से की गई। इस कार्यवाही से प्रबंधन को अपने निर्णय के उचित संशोधन में मदद मिलेगी।

**5. स्पष्टता (Clarity)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री का यह दायित्व है कि वह प्रबंधन के उद्देश्यों को साफ-साफ शब्दों में व्याख्या करने को कहे, अन्यथा उसके लिए सही पूर्वानुमान करना संभव नहीं होगा।

**6. व्यापक सम्पर्क (Wide Contracts)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री कल क्षमता इसी बात से आंकी जा सकती है कि वह लम्बी शोध क्रिया की अपेक्षा निजी सम्पर्क से कितनी जल्दी और आवश्यक सूचना एकत्रित कर सकता है। इसके लिए वह पहले से उपलब्ध स्रोतों या कठिन संदर्भ स्रोतों का सहारा लेता है उसका दायित्व है कि वह अपना विस्तृत सम्पर्क बनाकर रखे ताकि सूचना के स्रोतों और सूचना प्राप्त करने के स्थानों का ज्ञान आसानी से हो सके। साथ ही, वह जानता हो कि वह सूचना जल्दी में कहां से मिलेगी। इसके अतिरिक्त, वह संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ को निजी तौर पर जानता है। इसके लिए उन्हें व्यावसायिक संघों का सक्रिय सदस्य होना चाहिए।

**7. गंभीरता और तत्परता (Seriousness and Promptness)**—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री को अपने काम के प्रति गंभीर होना चाहिए। उसे चुनौतीपूर्ण कार्य करने के लिए सदैव तत्पर होना चाहिए। जब भी कोई विशिष्ट कार्य, जो अध्ययन दलों या विशिष्ट प्रोजेक्टों से संबंधित हो सकता है, करने को मिले तो उसे पूरी गंभीरता और तत्परता से पूरा करना उसका दायित्व है। इसमें मिली सफलता या विफलता ही उसकी मूल योग्यता, शिक्षण, प्रशिक्षण और अनुभव की सूचक होती है।

यही सफलता या असफलता उसके व्यक्तित्व और अपने तथा अपने व्यावसायिक विचारों के लिए निरन्तर समर्थन पाने की क्षमता को निर्धारित करती है।

**8. सरलीकरण (Simplification)**—इसका एक बड़ा दायित्व यह भी है कि वह अपने अति जटिल विचारों को भी सरल और सामान्य भाषा में विश्वास पैदा करने वाले ढंग से प्रस्तुत करे। तकनीकी शब्दावली का प्रयोग यथासंभव न करे क्योंकि यदि प्रबन्धन इसे नहीं समझ पाया तो स्वाभाविक है वह उसे स्वीकार नहीं करेगा।

अतः हम देखते हैं कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्री निर्णय निर्माण और अग्रिम आयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परन्तु अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभाने के लिए उसे अपना उत्तरदायित्व समझना होगा। अभी भी कई फर्म अर्थशास्त्री के इस पद को विलासिता का पद मानती हैं। उसका महत्त्व बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने को प्रबंधन के सामने किस तरह प्रस्तुत करता है। परन्तु इतना निश्चित है कि एक निष्ठावान अर्थशास्त्री फर्म के लाभ में वृद्धि और उसकी समस्याओं के समाधान में प्रभावी सिद्ध होता है।

## अध्याय 2

# मांग का अर्थ, प्रकार और निर्धारक तत्त्व

## CONCEPT AND TYPE OF DEMAND AND ITS DETERMINANT

---

हम इस अध्याय में मांग के अर्थ की व्याख्या करते हुए उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वों की व्याख्या करेंगे। उसके साथ-साथ मांग के प्रकार, मांग के नियम, मांग में वृद्धि, संकुचन, विस्तार आदि आधारभूत Concept को विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। अध्याय के अंत में प्रबंधकीय अर्थशास्त्र मांग के महत्त्व की व्याख्या करेंगे।

### 1. मांग का अर्थ (Meaning of Demand)

अर्थशास्त्र में मांग शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया जाता है। आम बोलचाल की भाषा में इच्छा, आवश्यकता तथा मांग शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में इन तीनों शब्दों के विभिन्न अर्थ होते हैं। मान लीजिए आप की रंगीन टी०वी० लेने की इच्छा है परन्तु आपके पास पर्याप्त धन नहीं है तो यह इच्छा आर्थिक दृष्टि से केवल इच्छा (Desire) ही है, मांग (Demand) नहीं, परन्तु यदि पर्याप्त धन होते हुए भी आप उस धन की रंगीन टी०वी० पर खर्च करना नहीं चाहते तो यह इच्छा केवल आवश्यकता (Want) ही कहलाएगी, मांग (Demand) नहीं। यह इच्छा उसी स्थिति में मांग (Demand) का रूप धारण करेगी जिस स्थिति में (अर्थात् एक निश्चित समय और एक निश्चित कीमत पर) आप रंगीन टी०वी० खरीदने के लिए तैयार हैं। इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि एक निश्चित कीमत व निश्चित समय के सम्बन्ध में ही मांग का उल्लेख किया जाना चाहिए। अतएव **“यदि मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्व समान रहे तो मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए इच्छुक है, तथा योग्य है।”** (Demand is defined as the quantity of a product which a consumer is willing and able to purchase at any given price during some specified period of time provided all other influences remaining unchanged.)

### 2. मांग का परिभाषार्थ (Definitions of Demand)

(1) प्रो० वीरा एन्सटे के अनुसार, **“मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जो एक दिये हुए समय में एक ही दी हुई कीमत पर खरीदी जाएगी।”**

प्रो० बैन्हम के अनुसार, **“एक निश्चित कीमत पर किसी वस्तु की मांग उसकी वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जाएगी।”**

उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि वस्तु में पांच तत्त्व होते हैं। (1) वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा (2) उस इच्छा को पूरा करने के लिए धन (3) धन खर्च करने के लिए तत्परता (4) वस्तुओं की मांगी गई मात्रा तथा कीमत में सम्बन्ध (5) मांगी गई मात्रा का उस समय से सम्बन्ध।

उपरोक्त तत्वों की सहायता से, आवश्यकता तथा मांग का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। मांग के पांच तत्व होते हैं जबकि आवश्यकता के पहले तीन तत्व होते हैं। मांग किसी वस्तु की एक निश्चित कीमत पर खरीदी जाने वाली मात्रा को प्रकट करती है, जबकि आवश्यकता उस वस्तु की इच्छा पूरी करने की शक्ति को प्रकट करती है।

## **मांग के प्रकार** (Types of Demand)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में विविध प्रकार की वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध होती हैं। प्रबंधकीय निर्णयों के लिए एक अर्थपूर्ण मांग विश्लेषण हेतु उनका वर्गीकरण अति महत्वपूर्ण है। ये वर्गीकरण निम्न है :

(i) **उपभोक्ता वस्तुओं और उत्पादक वस्तुओं की मांग** (Demand for Consumer's Goods and Producers' Goods)—उपभोक्ता वस्तुएं वे अंतिम वस्तुएँ होती हैं जो उपभोक्ता की आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट करती हैं। ऐसी वस्तुएं हैं : रोटी, दूध, कपड़े, फर्नीचर आदि। पूंजी या उत्पादक वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में मदद पहुंचाती हैं और जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को अप्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट करती हैं; जैसे प्लांट, कृषिगत एवं औद्योगिक कच्चे पदार्थ आदि। उपभोक्ता वस्तुओं की मांग प्रत्यक्ष या स्वायत्त (Autonomous) मांग कहलाती है। उत्पादक वस्तुओं की मांग व्युत्पन्न (Deliver) मांग होती है क्योंकि इन वस्तुओं की अंतिम उपभोग के लिए नहीं बल्कि अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए मांग की जाती है।

जे०डीन (Dean) ने अर्थव्यवस्था में उत्पादक वस्तुओं की मांग के सन्दर्भ में निम्न बातें बताई हैं :

- (i) उत्पादक वस्तुओं के क्रेता व्यवसायी होते हैं और वे प्रायः कुशल होते हैं। अतः बिक्री बढ़ाने की क्रियाओं का उन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
- (ii) उत्पादक वस्तुओं के क्रेता, साधन-कीमत विभेदों और स्थापनों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। इस प्रकार, पूंजी, श्रम और अन्य साधनों की मांग लोचशील होती है।
- (iii) उपभोक्ता वस्तुओं के क्रेताओं का उद्देश्य पूर्णतः आर्थिक होता है। वे पूंजीगत वस्तुओं को लाभ के उद्देश्य से ही खरीदते हैं।
- (iv) उनकी मांग उपभोग मांग से व्युत्पन्न होने के कारण उसमें निरन्तर और तीव्र उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।

कोई वस्तु उपभोक्ता वस्तु है या उत्पादक वस्तु, यह उसके उपयोग पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, जब फर्नीचर का उपयोग घर में किया जाता है तो वह उपभोक्ता वस्तु है जबकि वहीं फर्नीचर जब व्यावसायिक गृह के लिए उपयोग किया जाता है, तो उसे उत्पादक वस्तु है। फिर भी, वह विभेद उपयुक्त मांग विश्लेषण के लिए लाभप्रद है।

(ii) **नाशवान और टिकाऊ वस्तुओं की मांग** (Demand for Perishable and Durable Goods)—आगे उपभोक्ता और उत्पादक वस्तुओं को नाशवान और टिकाऊ वस्तुओं में वर्गीकृत किया गया है। अर्थशास्त्र में, नाशवान वस्तुएं वे होती हैं जिनका उपभोग सिर्फ एक बार उपयोग की जा सकती हैं। अर्थात् नाशवान वस्तुएं अपने-आप उपभोग की जाती हैं जबकि टिकाऊ वस्तुओं की सिर्फ सेवाएं उपभोग की जाती हैं। इस प्रकार, नाशवान वस्तुओं के अन्तर्गत सभी प्रकार की सेवाएं, भोज्य पदार्थ, कच्चे माल आदि आते हैं तथा दूसरी ओर टिकाऊ वस्तुओं के अन्तर्गत मकान, मशीन, फर्नीचर आदि आते हैं। इस विभेद का इसलिए और भी महत्व है क्योंकि मांग विश्लेषण में टिकाऊ वस्तुएं, गैर-टिकाऊ वस्तुओं की अपेक्षा अधिक जटिल समस्याएं पैदा करती हैं। गैर-टिकाऊ वस्तुओं की

बिक्री प्रायः वर्तमान मांग को पूरा करने के लिए की जाती है जो वर्तमान दशाओं पर निर्भर करती है। दूसरी ओर, टिकाऊ वस्तुओं की बिक्री वर्तमान वस्तुओं के भंडार में वृद्धि करती है, जिनकी सेवाएं एक समय अवधि के उपरान्त उपभोग की जाती हैं। नाशवान वस्तुओं की मांग अधिक लोचशील होती है, जबकि नाशवान टिकाऊ वस्तुओं की मांग अल्पकाल में कम लोचशील होती है और दीर्घकाल में उनकी मांग में अधिक लोचशील होने की प्रवृत्ति होती है। जे० डीन ने कहा है कि टिकाऊ वस्तुओं की मांग व्यावसायिक दशाओं के सापेक्ष में अधिक अस्थिर होती है। स्थगनता, स्थानापन्नता, भंडारण और विस्तार परस्पर संबंधित समस्याएं हैं जो टिकाऊ वस्तुओं की मांग निर्धारित करने में शामिल रहती हैं।

(iii) **व्युत्पन्न और स्वायत्त मांग (Derived and Autonomous Demand)**—जे० डीन के अनुसार, जब किसी वस्तु की मांग, कुछ मूल वस्तुओं की खरीद से जुड़ी होती है तो उसकी मांग व्युत्पन्न मांग कहलाती है। अतः जब किसी वस्तु की मांग कुछ अन्य वस्तुओं की मांग पर निर्भर करती है तो उसे व्युत्पन्न मांग कहते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार की उत्पादक वस्तुओं की मांग व्युत्पन्न मांग होती है क्योंकि उनकी मांग उपभोक्ता या उत्पादक वस्तुएं बनाने के लिए की जाती है। उदाहरणार्थ, ईंट या सीमेंट की मांग व्युत्पन्न मांग है, क्योंकि इनकी मांग की उत्पत्ति भवनों की मांग से होती है।

दूसरी ओर, उन वस्तुओं की, जिनकी मांग कुछ अन्य वस्तुओं की मांग से जुड़ी होती है, **स्वायत्त मांग** कहलाती है, जैसे भोजन, वस्त्र आवास आदि। उपभोक्ता वस्तुओं की मांग स्वायत्त मांग होती है। स्वायत्त मांग प्रत्यक्ष मांग होती है। यह अंतिम मांग होती है। यद्यपि आधुनिक जगत् में ऐसी वस्तुएं दूध पाना बहुत कठिन है जिनकी मांग अन्य वस्तुओं की मांग से पूर्णतः स्वतंत्र हो।

परन्तु इस निर्भरता की कोटि (degree) वस्तु-से-वस्तु में व्यापक रूप से परावर्तित होते हैं। जैसे निब की मांग कलम की मांग से पूर्णतः जुड़ी है, जबकि पेट्रोल की मांग कार की मांग से हल्के ढंग से जुड़ी है। अतः व्युत्पन्न और स्वायत्त मांग का विभेद, प्रकार की अपेक्षा कोटि का विभेद है।

व्युत्पन्न मांग, स्वायत्त मांग की अपेक्षा प्रायः कम कीमत लोचशील होती है।

व्युत्पन्न मांग की धारणा मांग पूर्वानुमान को आसान बनाती है, विशेषकर जब निर्भर और मूल वस्तुएं निश्चित अनुपातों में उपयोग की जाती हैं और मूल वस्तुओं की मांग का निश्चित समय होता है। परन्तु हम देखते हैं कि निश्चित अनुपात नियम के बजाय अपवाद होता है।

(iv) **फर्म (या कंपनी) मांग और उद्योग मांग (Firm or Company Demand and Industry Demand)**—अनेक व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिए फर्म-मांग और उद्योग-मांग में अन्तर तथा इनके बीच संबंध का ज्ञान होना आवश्यक होता है।

फर्म एक व्यावसायिक इकाई है जबकि उद्योग निकटतम प्रतियोगी फर्मों का एक समूह। फर्म-मांग से आशय किसी विशेष फर्म की किसी विशेष वस्तु की मांग से है। दूसरी ओर, उद्योग-मांग किसी विशेष उद्योग की वस्तु की कुल मांग होती है। उदाहरणार्थ, सिर्फ बिरला यामाहा मोटरसाइकिल की मांग फर्म की मांग है जबकि सभी प्रकार की मोटरसाइकिलों की मांग उद्योग की मांग है।

(v) **कुल बाजार मांग और बाजार खण्डों द्वारा मांग (Total Market Demand and Market Segment Demand)**—कुल बाजार मांग से आशय किसी वस्तु के लिए सभी बाजार खण्डों की कुल मांग से है जबकि एक विशेष बाजार खण्ड मांग किसी वस्तु के लिए उस विशेष बाजार खण्ड की मांग होती है। उदाहरणार्थ, हीरो साइकिल का कुल बाजार (अर्थात् घरेलू + विदेशी) मांग तथा घरेलू मांग, चाय को बड़ी मात्रा में खरीदने वालों (जैसे दुकानों, जलपान-ग हों, अतिथि-ग हों, होटलों आदि) द्वारा मांग बनाम पारिवारिक मांग। कुल बाजार मांग को विभिन्न खण्डों, जैसे भौगोलिक क्षेत्रों, उप-उत्पादों, उत्पाद उपयोग, वितरण तंत्रों, उपभोक्ता वर्ग का आकार, कीमत

संवेदनशीलता आदि के आधार पर विभाजित कर बाजार खण्डों की मांग का अध्ययन किया जा सकता है। घरेलू एवं विदेशी मांग समस्याओं जैसे खराब विदेशी बाजार के कारणों का विश्लेषण करने, किसी वस्तु के लिए किसी विशेष क्षेत्र में मांग में कमी होने आदि समस्याओं के समाधान के लिए यह विभेद अति लाभप्रद होता है।

(vi) **अल्पकालीन मांग और दीर्घकालीन मांग (Short-run Demand and Long-run Demand)**—नाशवान वस्तुओं जैसे सब्जी, फल, दूध आदि के लिए कीमत में परिवर्तन से मांगी गई मात्रा में परिवर्तन शीघ्रता से होता है। ऐसी वस्तुओं के लिए एक अकेला ऋणात्मक ढलान वाला सामान्य मांग वक्र होता है। लेकिन टिकाऊ वस्तुओं जैसे उपकरण, मशीनें, कपड़े और अन्य ऐसी वस्तुओं के लिए कीमत में परिवर्तन का मांगी गई मात्रा पर अंतिम प्रभाव नहीं होगा जब तक कि वस्तु का वर्तमान स्टॉक समायोजित नहीं होता जो लंबी अवधि ले सकता है। एक **अल्पकालीन मांग वक्र** कीमत में परिवर्तन से मांगी गई मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है, जब टिकाऊ वस्तु का वर्तमान स्टॉक और स्थानापन्नों की पूर्तियां दी हुई हों। दूसरी ओर, एक दीर्घकालीन मांग वक्र कीमत में परिवर्तन से मांगी गई मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है, जब दीर्घकाल में सभी समायोजन (adjustment) कर गए हों। जोल डीन (Joel Dean) के अनुसार, "अल्पकालीन मांग से अभिप्राय चालू मांग से है जिसमें कीमत में परिवर्तन, आय में उतार-चढ़ाव आदि की तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है जबकि दीर्घकालीन मांग अन्ततः कीमत-निर्धारण में परिवर्तनों, संवर्द्धन या वस्तु सुधार के परिणामस्वरूप होती है। इसके अन्तर्गत बाजार को नये अवसर के मुताबिक अपने को समायोजित करने का पर्याप्त समय मिलता है।"

(vii) **संयुक्त मांग और सम्मिश्र मांग (Joint Demand and Composite Demand)**—जब दो वस्तुएं एक ही समय में एकल आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए एक साथ मांगी जाती हैं तो उसे संयुक्त या पूरक मांग कहते हैं। संयुक्त मांग किन्हीं ऐसी दो या अधिक वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबंध को बताती है जो एक साथ (इकट्ठी) मांगी जाती हैं। कार तथा पेट्रोल की, पैन तथा स्याही की और चाय तथा चीनी की मांग, संयुक्त मांग है। जिन वस्तुओं की संयुक्त मांग होती है वे वस्तुएं पूरक (Complementary) कहलाती हैं। एक वस्तु की कीमत बढ़ जाने से दूसरी वस्तु की मांग गिर जाती है, जोर विलोमशः भी। उदाहरण के लिए, कार की कीमतों में वृद्धि कार की मांग को और साथ ही पेट्रोल की मांग को गिरा देगी और पेट्रोल की कीमत घटा देगी, बशर्ते कि पेट्रोल की पूर्ति अपरिवर्तित रहे। दूसरी ओर, यदि कारों के उत्पादन की लागत गिरने से कारों की कीमत गिर जाती है तो उनकी मांग बढ़ जाएगी बशर्ते कि पेट्रोल की उपलब्ध पूर्तियां अपरिवर्तित रहें। दूसरी ओर जिस वस्तु के अनेक वैकल्पिक किए जा सकें, उसकी मांग सम्मिश्र मांगे कहलाती है। यह चमड़ा, इस्पात, कोयला, कागज आदि वस्तुओं की ही नहीं अपितु भूमि, श्रम तथा पूंजी जैसे उत्पादन के साधनों की भी विशिष्टता है। उदाहरण के तौर पर, रेल, फैक्ट्री, घरेलू उपयोग आदि के लिए कोयले की मांग रहती है। सम्मिश्र मांग में एक वस्तु के विभिन्न प्रयोगों में स्पर्धा रहती है। अतः उस वस्तु का प्रत्येक प्रयोग उसके अन्य प्रयोगों से स्पर्धा रखता है। इसलिए इसे स्पर्धी मांग (प्रतियोगी मांग) भी कहते हैं। किसी वस्तु के लिए एक उपयोगकर्ता द्वारा मांग में परिवर्तन से अन्य उपयोगकर्ताओं को इसकी पूर्ति पर प्रभाव पड़ेगा जिससे उसकी कीमत में परिवर्तन होगा। इस प्रकार उसकी मांग प्रणाली ही बदल जाएगी।

### **मांग फलन (Demand Functions)**

गणितीय भाषा में, फलन स्वतंत्र और निर्भर चरों के संबंध का सांकेतिक कथन होता है। इस प्रकार फलन किसी वस्तु की मांगी गई मात्रा (निर्भर चर) और उसके निर्धारकों (स्वतंत्र चरों) के बीच के संबंध को व्यक्त करता है। इसे निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है :

जहां,

$$D_a = f(P_a, Y, P_s, P_c, T, A, E_p, E_y, N, D_n, U)$$

$D_a$  = a वस्तु की मांग

$f$  = 'कर फलन' या 'पर निर्भर'

$P_a$  = a वस्तु की कीमत

$Y$  = उपभोक्ता की आय

$P_a$  = a वस्तु की स्थानापन्न की कीमतें

$P_s$  = a वस्तु की पूरकों की कीमतें

$T$  = उपभोक्ता की रुचियों, आदतों और अधिमानों की माप

$A$  = विज्ञापन

$E_p$  = भविष्य कीमतों के विषय में उपभोक्ता की प्रत्याशाएं

$E_y$  = भविष्य की आय में विषय में उपभोक्ता की प्रत्याशाएं

$N$  = जनसंख्या का आकार

$D_n$  = राष्ट्रीय आय का वितरण

$U$  = a वस्तु की मांग के अन्य निर्धारक

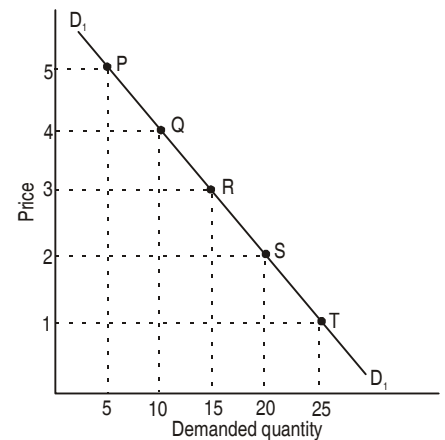
इस प्रकार यह समीकरण मांग फलन का संक्षिप्त रूप है। परन्तु उपर्युक्त मांग फलन की व्याख्या जटिल है क्योंकि रुचियों और अन्य घटकों को मापा नहीं जा सकता। अतः अर्थशास्त्री कीमत के अतिरिक्त अन्य सभी चरों को स्थिर मानते हुए मांग फलन की सरल व्याख्या करते हैं जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:  $D_a = f(P_a)$  जो यह दर्शाता है कि a वस्तु की मांग उसकी कीमत का फलन होता है। अर्थात् प्रत्येक कीमत से संबंधित मांगी गई मात्रा होती है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की मांग से आशय सम्पूर्ण मांग अनुसूची से है जो किसी दिए हुए समय में वैकल्पिक कीमतों पर खरीदी गई वस्तु की विभिन्न मात्राओं से होती है।

### मांग अनुसूची और मांग वक्र (Demand Schedule and Demand Curve)

मांग अनुसूची एक दिए हुए समय में विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की विभिन्न मात्राओं को एक तालिका के रूप में दर्शाती है। प्रो० बेन्हम (Benham) के अनुसार, "किसी बाजार में एक निश्चित समय पर एक वस्तु की विभिन्न कीमतों पर जितनी मात्रा खरीदी जाती है यदि उसे एक तालिका के रूप में लिखा जाय तो मांग अनुसूची प्राप्त होती है।"

मांग अनुसूची दो प्रकार की होती है : (1) व्यक्तिगत मांग अनुसूची, और (2) बाजार मांग अनुसूची। इनकी हम यहां व्याख्या करते हैं।

(1) **व्यक्तिगत मांग अनुसूची और वक्र (Individual's Demand Schedule and Curve)**—एक व्यक्ति की मांग अनुसूची उसके द्वारा विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की विभिन्न मात्राओं को दर्शाती है। कीमतों और मात्राओं की तालिका को मांग अनुसूची और उसकी चित्र द्वारा दिखाना मांग वक्र कहलाता है। प्रो० सैमुअल्सन के शब्दों में, "मांग अनुसूची का रेखीय चित्रण मांग वक्र कहलाता है।"



एक व्यक्ति की मांग अनुसूची को तालिका 1 में दर्शाया गया है। मांग अनुसूची से स्पष्ट होता है कि एक वस्तु संतरा की कीमत कम होने के साथ-साथ एक व्यक्ति उसकी अधिक मात्राएं खरीदता



है। जब कीमत 5 रु० है तो मांग 5 इकाइयां है। कीमत 4 रु० हो जाए तो मांग बढ़कर 10 इकाइयां हो जाती है। और अन्ततः कीमत 1 रु० होने पर 25 इकाइयां मांगी जाती है।

चित्र 1 में  $DD_1$  वक्र इस मांग अनुसूची के आधार पर खींचा गया है। बिन्दु P, Q, R, S और T विभिन्न कीमत मात्रा संयोगों को प्रकट करते हैं। डा० मार्शल के अनुसार, ये मांग बिन्दु है। पहला बिन्दु P पहले कीमत-मात्रा संयोग को और इसके पश्चात् Q, R., S और T आगे संयोगों के दर्शाते हैं, जो नीचे दाई ओर  $D_1$  की ओर चलते हैं। इनको मिलाने से  $DD_1$  मांग वक्र बनता है, जिसकी ढलान ऋणात्मक (Negative) है।

### तालिका 1 :

#### व्यक्तिगत मांग अनुसूची

कीमत (रु०)	मांगी गई मात्रा
5	5 इकाइयां
4	10 इकाइयां
3	15 इकाइयां
2	20 इकाइयां
1	25 इकाइयां

(2) **बाजार मांग अनुसूची और वक्र (Market Demand Schedule and Curve)**—एक बाजार में एक वस्तु जैसे संतरे का एक उपभोक्ता न होकर बहुत से उपभोक्ता होते हैं। एक वस्तु की बाजार मांग को एक मांग अनुसूची और मांग वक्र द्वारा दर्शाया जाता है। वे वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई विभिन्न मात्राओं के कुल जोड़ को दर्शाते हैं। मान लीजिए एक मार्केट में A और B दो व्यक्ति हैं जो वस्तु को खरीदते हैं। वस्तु से मांग अनुसूची को तालिका 2 में व्यक्त किया गया है। तालिका यह दर्शाती है कि दोनों व्यक्तियों द्वारा प्रत्येक कीमत पर संतरे की मांगी गई कुल मात्राओं का जोड़ उसकी बाजार मांग है। यह अधिक कीमत 5 रु० पर कम है अर्थात् 15 इकाइयां और कीमत कम होने पर बढ़ती जाती है और अन्ततः 1 रु० पर 75 इकाइयां हो जाती है।

तालिका के आधार पर चित्र 2 में बाजार मांग वक्र  $D_M$  खींचा गया है जो दोनों उपभोक्ताओं के मांग वक्रों का सामानांतर जोड़ है :  $D_M = D_A + D_B$ .

### मांग का नियम की व्याख्या (The Law of Demand)

यह नियम वस्तु की मांगी गई मात्रा और उसकी कीमत के संबंध व्यक्त करता है। मार्शल की परिभाषा इस प्रकार है : "मांग का नियम यह बताता है कि अन्य बातें समान होने पर, मांग की मात्रा कीमत गिरने से बढ़ती है और कीमत बढ़ने से घटती है।" फर्गुसन के शब्दों में, "मांग के नियम के अनुसार, मांगी गई मात्रा कीमत के साथ विपरीत परिवर्तित होती है।" इस प्रकार, यह नियम कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध व्यक्त करता है। चित्र में इस बात पर निर्भर करता है कि "अन्य बातें समान रहें"। यह वाक्यांश नियम की कुछ महत्वपूर्ण मान्यताओं की ओर निर्देश करता है जिनके आधार पर ही यह नियम चालू होता है।

तालिका 2 :

बाजार मांग अनुसूची			
कीमत	मांगी गई मात्रा		कुल मांग
(रु०)	A + B	=	मांग
5	5 + 10	=	15
4	10 + 20	=	30
3	15 + 30	=	45
2	20 + 40	=	60
1	25 + 50	=	75

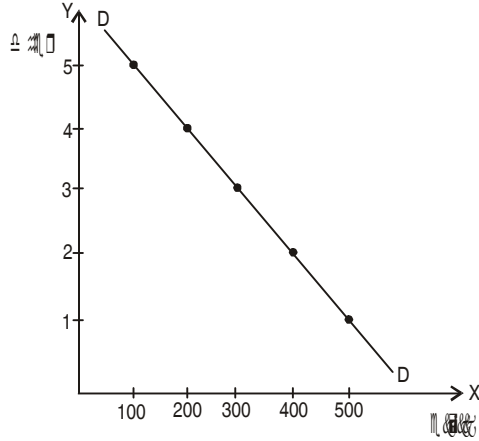
चित्र 2.

**इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)**

- (i) उपभोक्ताओं की रुचियों व अधिमानों में कोई परिवर्तन न हो;
- (ii) उपभोक्ताओं की आय स्थिर रहे;
- (iii) रीति-रिवाजों में कोई परिवर्तन न हों;
- (iv) प्रयोग में आने वाली वस्तु साधारण हो अर्थात् श्रेष्ठता प्रदान करने वाली न हो;
- (v) वस्तु के कोई स्थानापन्न न हो;
- (vi) अन्य वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन न हों;

तालिका 3 :

मांग अनुसूची	
कीमत (रु०)	मांगी गई मात्रा
5	100 इकाइयां
4	200 इकाइयां
3	300 इकाइयां
2	400 इकाइयां
1	600 इकाइयां



चित्र 3.

(vii) भविष्य में वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन की आशा न हो;

(viii) वस्तु के गुण में परिवर्तन न हो; और

(ix) उपभोक्ताओं की आदतें स्थिर रहें।

इन मान्यताओं के होने पर ही मांग का नियम क्रियाशील होता है। यदि इनमें से किसी एक में भी परिवर्तन आ जाये तो यह चालू नहीं होगा।

### इसकी व्याख्या (Its Explanation)

इन मान्यताओं के दिए होने पर, मांग के नियम की तालिका 3 और चित्र 3 द्वारा व्याख्या की गई है।

उपरोक्त तालिका यह दर्शाती है कि संतरे की कीमत 5 रु० प्रति इकाई होने पर इसकी 100 इकाइयों की मांग की जाती है। यदि कीमत घटकर 4 रु० होती है तो मांग बढ़कर 200 इकाइयां हो जाती है। इसी तरह 1 रु० हो जाने पर मांग बढ़कर 600 इकाइयां हो जाती है। इसके विपरीत जैसे-जैसे कीमत 1 रु० से बढ़ती है तो मांग 600 इकाइयों से कम होती चली जाती है। चित्र में मांग वक्र  $DD_1$  का P बिन्दु 5 रु० कीमत पर मांग की 100 इकाइयां दर्शा रहा है। जैसे-जैसे कीमत घटकर 4 रु०, 3 रु०, 2 रु० और 1 रु० होती है, मांग बढ़कर क्रमशः 200, 300, 400 तथा 600 इकाइयां होती जाती है जो मांग वक्र के Q, R, S और T बिन्दुओं से स्पष्ट है। **इस प्रकार, मांग वक्र  $DD_1$  कीमत में कमी होने पर संतरों की बढ़ती मांग को दर्शाता है और कीमत तथा मांग के बीच विपरीत संबंध को स्पष्ट करता है।**

### मांग वक्र के नीचे की ओर ढालू होने के कारण

(Clauses of Downward Sloping Demand Curve)

मांग वक्र बाएं से दाएं की ओर ढालू क्यों होता है ? इसके कारण मांग नियम के चालू होने को भी स्पष्ट करते हैं। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

(1) **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)**—मांग का नियम घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार जब कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदता है तो उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयां तभी खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जाएगी। कम इकाइयां प्राप्त होने पर उपयोगिता अधिक होगी और उपभोक्ता वस्तु के लिए अधिक होगी और अधिक कीमत पर मांग कम होगी। इसी कारण मांग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

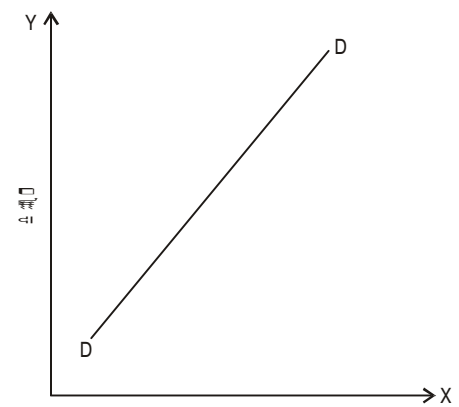
(2) **कीमत प्रभाव (Price Effect)**—हर वस्तु के कुछ उपभोक्ता होते हैं। परन्तु जब उस वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो नए उपभोक्ता खरीदने लगेंगे जिससे मांग बढ़ जाती है। इसके विपरीत, वस्तु की कीमत बढ़ने से कई उपभोक्ता वस्तु का उपभोग बन्द या कम कर देंगे जिससे मांग कम हो जाएगी। अतः उपभोक्ता द्वारा **कीमत प्रभाव** के कारण वस्तु के अधिक उपयोग या त्याग करने से भी मांग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

(3) **आय प्रभाव (Income Effect)**—जब किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है, क्योंकि वस्तु की पहले जितनी मात्रा खरीदने पर उसे अब कम मुद्रा व्यय करनी पड़ती है। इसके विपरीत, वस्तु की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है। इसे **आय प्रभाव** कहते हैं। इस प्रभाव के अधीन वस्तु की कीमत कम होने पर उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा में खरीदता है और साथ में बढ़ी हुई आय का कुछ भाग दूसरी वस्तुओं की भी अधिक मात्रा खरीदने पर खर्च करेगा। जैसे दूध की कीमत होने से वह दूध की अधिक मात्रा तो खरीदेगा ही, पर साथ में अन्य वस्तुओं की मांग भी बढ़ा देगा। साधारण वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन का आय प्रभाव धनात्मक होता है। इसी कारण मांग वक्र नीचे की ओर ढालू होता है।

(4) **प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)**—वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने का दूसरा प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव होता है। किसी वस्तु की कीमत कम हो जाने पर, परन्तु उसके स्थानापन्नों की कीमतों में कोई परिवर्तन न होने पर, उपभोक्ता उस वस्तु को अधिक खरीदेंगे जिससे उनकी मांग बढ़ जाएगी। इसके विपरीत, स्थानापन्नों की कीमतें स्थिर रहने पर यदि वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो उपभोक्ता इस वस्तु का उपयोग कम कर देंगे और स्थानापन्नों को अधिक खरीदेंगे जिससे वस्तु की मांग कम हो जायेगी। उदाहरणार्थ, चाय की कीमत कम होने परन्तु काफी की कीमत स्थिर रहने पर चाय की मांग बढ़ जायेगी। इस प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण भी मांग वक्र बाएं से दाएं नीचे की ओर ढालू होता है।

(5) **विभिन्न आय वर्ग (Different Income Groups)**—हर समाज में प्रत्येक व्यक्ति की आय भिन्न होती है परन्तु अधिकतर ऐसे लोग पाये जाते हैं जिनकी आय कम होती है। मांग वक्र का नीचे की ओर ढालू होना इन्हीं व्यक्तियों पर निर्भर करता है। साधारण लोग कीमत कम होने पर वस्तु को अधिक मात्रा खरीदते हैं और कुछ नये उपभोक्ता भी उसे खरीदना शुरू कर देते हैं, जिससे वस्तु की मांग अधिक बढ़ती है। धनी लोगों का मांग वक्र पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे अधिक कीमत पर भी वस्तु की पहले जितनी मात्रा खरीदने में समर्थ होती है।

(6) **विविध उपयोग (Different uses)**—कई वस्तुओं व सेवाओं के भिन्न-भिन्न प्रयोग होते हैं जो मांग वक्र की ऋणात्मक ढलान को प्रभावित करते हैं। ऐसी वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने पर उनका उपयोग केवल अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए किया जायेगा जिससे उनकी मांग कम हो जायेगी। इसके विपरीत, कीमत गिर जाने पर उनका उपयोग कई प्रकार के कार्यों में किया जायेगा जिससे उनकी मांग बढ़ेगी। जैसे, बिजली की दर अधिक होने पर उसका उपयोग केवल घर में रोशनी के लिए किया जायेगा, परन्तु यदि दर कम हो तो लोग उसका उपयोग खाना बनाने, पंखे, हीटर आदि चलाने में भी करेंगे।



॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

चित्र 4.

(7) **असंतुष्ट आवश्यकता की संतुष्टि की प्रवृत्ति** (Tendency of Satisfy Unsatisfy Want)—प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता कुछ-न-कुछ असंतुष्ट रहती है। जब किसी वस्तु जैसे सेब की कीमत में कमी होती है तो वह अपने असंतुष्ट आवश्यकता को पूरा करना चाहता है जिससे उसकी मांग बढ़ जाती है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति के कारण भी मांग वक्र नीचे दाईं ओर ढालू होता है।

### मांग के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Demand)

कुछ अवस्थाओं में मांग वक्र बाएं से दाएं ऊपर की ढालू होता है अर्थात् इसकी ढलान धनात्मक (Positive) होती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में उपभोक्ता, वस्तु की कीमत बढ़ने पर अधिक और कीमत गिरने पर कम मात्रा खरीदते हैं। जैसा चित्र 4 में D वक्र दिखाया गया है। ऊपर की ओर ढालू मांग वक्र के अनेक कारण बताए जाते हैं :

(1) **युद्ध (War)**—यदि युद्ध या आपात स्थिति के पूर्व-अनुमान के कारण वस्तु की पूर्ति में कमी हो जाने की आशंका हो तो कीमत बढ़ने पर लोग स्टॉक करने के लिए वस्तु को अधिक मात्रा में खरीदने लगते हैं, जिससे मांग बढ़ती है।

(2) **मंदी (Depression)**—मंदी के दौरान कीमतें कम होने पर भी लोग वस्तुओं की कम मात्रा ही खरीदते हैं। ऐसा इसलिए कि उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति कम होती है।

(3) **गिफन वस्तुएं (Giffen Goods)**—मार्शल के अनुसार, गिफन वस्तुओं के कारण भी मांग वक्र बाएं से दाएं ऊपर को ढालू होता है। घटिया वस्तुएं गिफन वस्तुएं कहलाती हैं जिनकी कीमत घट जाने पर उनकी मांग में कमी होती है। ऐसी वस्तुओं का उपभोग गरीब ही करते हैं। उदाहरणार्थ, घटिया वस्तु ज्वार की कीमत कम होने से उसके उपभोक्ताओं की वास्तविक आय बढ़ जाती है। इस कारण वे बढ़िया वस्तु गेहूँ का उपयोग अधिक कर देंगे जिससे ज्वार की कीमत कम होने पर उसकी मांग भी कम हो जाएगी। इस प्रकार मांग वक्र ऊपर को ढालू होगा।

(4) **प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect)**—यदि उपभोक्ता दिखावटी उपभोग या प्रदर्शन प्रभाव से प्रभावित है तो वे कीमतों के बढ़ने पर भी ऐसी वस्तुएं खरीदना चाहेंगे जो उन्हें सम्मान प्रदान करने वाली हों। इसके विपरीत, ऐसी वस्तुओं की कीमतें कम होने पर उनकी मांग कम होती है। जैसे हीरे, जवाहरात, फैशन की वस्तुएं आदि।

(5) **अज्ञानता प्रभाव (Ignorance Effect)**—उपभोक्ता अज्ञानता प्रभाव के कारण ऊंची कीमत पर भी ऐसी वस्तुएं खरीद लेते हैं जो अपनी कीमत, भ्रान्तिजनक पैकिंग, लेबल आदि के कारण धोखे से कुछ और समझ ली जाती है। इसके विपरीत, कुछ वस्तुएं सस्ती होने पर भी अधिक नहीं बिकती क्योंकि उनके पैकिंग, लेबल आदि आकर्षक नहीं होते।

(6) **सट्टा (Separation)**—मार्शल सट्टे को, मांग के महत्वपूर्ण अपवादों में से एक मानता है। उसके अनुसार, सटोरियों के दलों में होड़ के कारण मांग का नियम लागू नहीं होता। एक ग्रुप जो किसी वस्तु की बहुत अधिक मात्रा मार्केट में फेंकना चाहता है, प्रायः उस वस्तु को खुल्लमखुल्ला खरीदना शुरू कर देता है। इस प्रकार, जब वह ग्रुप वस्तु की कीमत बढ़ा देता है, तो चुपचाप और अपरिचित दिशाओं के माध्यम से बहुत अधिक मात्रा बेचने की व्यवस्था कर लेता है। इस प्रकार, जब कीमतें बढ़ती हैं तो मांग भी बढ़ जाती है।

(7) **जीवनरक्षक वस्तुएं (Necessaries of Life)**—सामान्यतः मांग का नियम जीवन रक्षक वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़ा आदि पर लागू नहीं होता। इन वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर भी उपभोक्ता इनकी मांग कम नहीं कर देते। बल्कि अक्सर आरामदायक वस्तुओं की मांग कम करके जीवन रक्षक वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर उनको खरीदते हैं। इस कारण भी मांग वक्र दाईं ओर ऊपर को ढालू होता है।

## 1. मांग में परिवर्तन (Change in Demand)

मांग में होने वाले परिवर्तनों को मांग वक्र द्वारा दो प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :-

(1) **एक ही मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं द्वारा मांग या मांग वक्र संचालन (Movement along a Demand Curve)**—जब अन्य बातें समान रहने पर केवल वस्तु की कीमत में ही परिवर्तन होता है तो मांग में होने वाले परिवर्तन को एक ही मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं द्वारा प्रकट किया जाता है। इसे वस्तु की मात्रा में परिवर्तन (Change in Quantity of Demand) भी कहा जाता है। कीमत के कम होने से मांग में होने वाली वृद्धि को मांग का विस्तार (Extension of Demand) तथा कीमत के बढ़ने से मांग में होने वाली कमी को मांग का संकुचन (Contraction of Demand) कहा जाता है।

(2) **मांग वक्र के स्थानान्तरण द्वारा (Shift in the Demand Curve)**—इस प्रकार के परिवर्तन में यदि वस्तु की कीमत स्थिर भी रहे तो भी मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व जैसे मौसम, आय, रुचि, फैशन, आदत आदि परिवर्तित हो जायें। (अर्थात् मांग के नियम सम्बन्धी अन्य बातें समान नहीं रहती) तो मांग वक्र में स्थानान्तरण होता है। मांग वक्र अपने स्थान से सरककर दायें तथा बायें हो जायेगी।

इसे मांग के स्तर में होने वाला परिवर्तन (Change in the level of Demand) भी कहा जाता है। इन तत्वों में परिवर्तन आने से मांग के घटने को 'मांग में कमी' (Decrease in Demand) तथा मांग के बढ़ने को मांग में वृद्धि (Increase in Demand) कहा जाता है।

मांग में होने वाले परिवर्तनों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की जा सकती है :-

(1) **मांग का विस्तार (Extension of Demand)**—अन्य बातें रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होने के फलस्वरूप उसकी मांग अधिक हो जाती है तो इसे मांग का विस्तार कहा जाता है। (Extension of demand is a rise in demand due to fall in price)। उदाहरण के लिए जैसा कि नीचे दी हुई तालिका द्वारा ज्ञात होता है कि जब आईसक्रीम की कीमत पांच रुपये है तो एक आईसक्रीम की मांग की जाती है यदि कीमत कम होकर एक रुपया हो जाती है तो मांग का विस्तार होकर नई मांग 5 आईसक्रीम हो जाती है।

### मांग का विस्तार (Extension of Demand)

कीमत (₹)	मांग की मात्रा	वर्णन
Price (Rs.)	(Quantity)	(Description)
5.00	1	कीमत में कमी (Fall in Price)
1.00	5	मांग में वृद्धि (Rise in Demand)

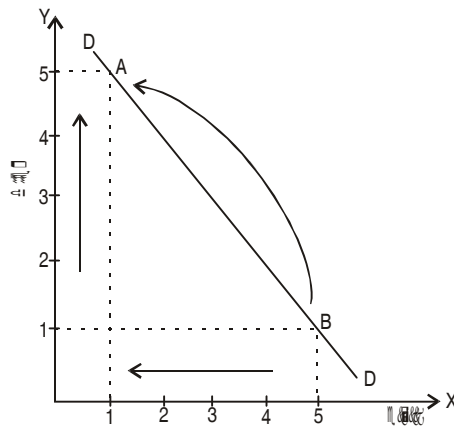
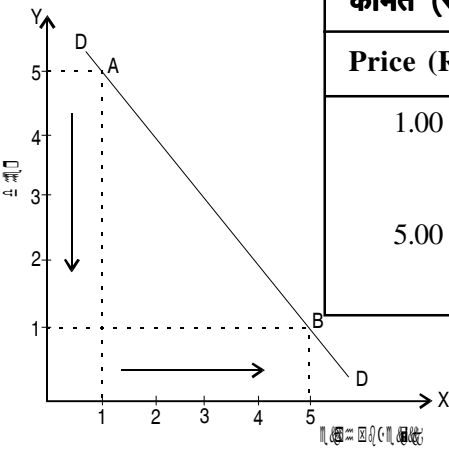
मांग के विस्तार को चित्र 5 द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इस चित्र में AB आईसक्रीम की मांग वक्र है। जब आईसक्रीम की कीमत पांच रुपये है तो उसकी मांग एक है। उपभोक्ता मांग वक्र के A बिन्दु पर है। जब आईसक्रीम की कीमत कम होकर एक रुपया हो जाती है तो उसकी मांग का विस्तार होकर नई मांग पांच हो जाती है। उपभोक्ता मांग वक्र के A बिन्दु से B बिन्दु पर पहुंच जाता है। अतएव मांग वक्र के ऊंचे बिन्दु से नीचे बिन्दु की ओर सरकना मांग के विस्तार को प्रकट करता है।

चित्र 5.

(2) **मांग का संकुचन (Contraction of Demand)**—अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने के फलस्वरूप उसकी मांग कम हो जाती है तो मांग में होने वाली कमी को मांग का संकुचन कहते हैं। (Contraction of demand is a fall in demand due to rise in price). उदाहरण के लिए जैसा कि निम्नलिखित तालिका में ज्ञात होता है कि जब आईसक्रीम की कीमत एक रुपया है तो पांच आईसक्रीम की मांग की जाती है। यदि आईसक्रीम की कीमत बढ़कर पांच रुपये हो जाती है तो आईसक्रीम की मांग का संकुचन होकर नई मांग एक हो जाती है।

**मांग का विस्तार (Extension of Demand)**

कीमत (₹)	मांग की मात्रा	वर्णन
Price (Rs.)	(Quantity)	(Description)
1.00	5	मांग में वृद्धि (Rise in Price)
5.00	1	मांग में कमी (Fall in Demand)



चित्र 6.

मांग के संकुचन को चित्र 6 द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इस चित्र में AB आईसक्रीम का मांग वक्र है। जब आईसक्रीम की कीमत एक रुपया है तो उसकी मांग पांच है। उपभोक्ता मांग वक्र के बिन्दु B पर है। इसके विपरीत जब आईसक्रीम की कीमत बढ़कर पांच रुपये हो जाती है

तो उसकी मांग का संकुचन होकर नई मांग एक हो जाती है। उपभोक्ता मांग वक्र के B बिन्दु से A बिन्दु पर पहुँच जाता है। अतएव एक मांग वक्र के नीचे बिन्दु से ऊँचे बिन्दु की ओर सरकना मांग के संकुचन को प्रकट करता है।

## 2. मांग में वृद्धि तथा मांग में कमी

### (Increase in Demand and Decrease in Demand)

मांग में वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों जैसे-आय, फैशन आदि में परिवर्तन होने के कारण जो परिवर्तन होता है उसे मांग में वृद्धि या कमी कहते हैं।

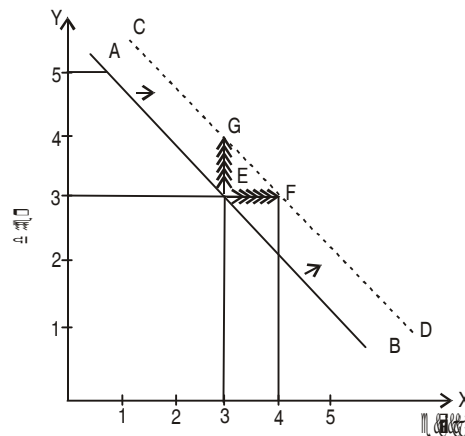
(1) **मांग में वृद्धि (Increase in Demand)**—यदि किसी वस्तु की कीमत समान रहने पर उस वस्तु की मांग बढ़ जाती है अथवा कीमत बढ़ने पर मांग समान रहती है तो इस परिवर्तन में वृद्धि कहा जाता है। (More demand at same price or same demand at more price is called increase in demand)। अतएव मांग में दो प्रकार से वृद्धि हो सकती है:

(i) **समान कीमत-अधिक मांग (Same Price-More Demand)**—मान लीजिए जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो तीन आईसक्रीम की मांग है। यदि आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये ही रहे परन्तु मांग बढ़कर 4 हो जाती है तो इसे मांग में वृद्धि कहा जाएगा।

(ii) **अधिक कीमत-समान मांग (More Price-Same Demand)**—जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो मांग तीन है। यदि मूल्य बढ़कर चार हो जाए परन्तु मांग में कोई कमी न आए वह पहली जितनी अर्थात् तीन ही रहे तो इसे भी मांग में वृद्धि कहा जाएगा।

### Increase in Demand

Price of Ice Creams (Rs.)	Demand of Ice Creams
Same Price	More Demand
(Rs.) 3	3
(Rs.) 3	4
More Price	Same Demand
(Rs.) 3	3
(Rs.) 4	3



चित्र 7.

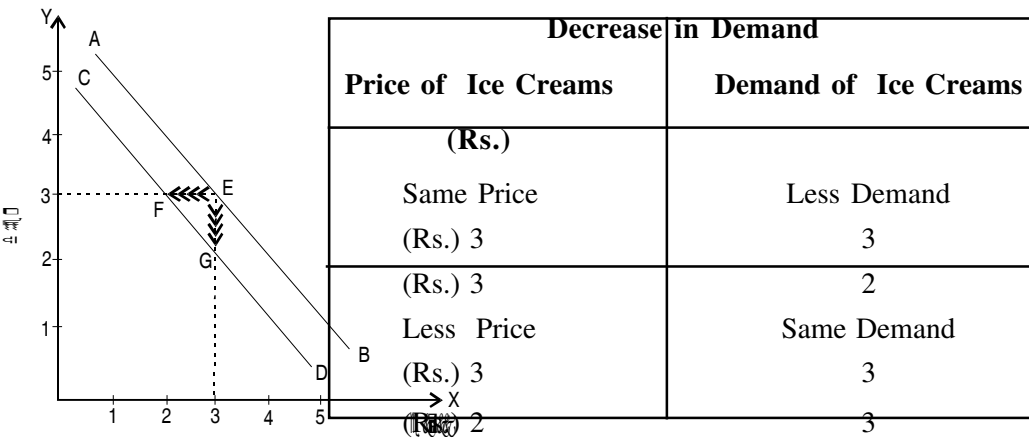


मांग में होने वाली वृद्धि को रेखाचित्र 7 से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए AB प्रारम्भिक मांग वक्र है। जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो आईसक्रीम की मांग भी तीन है। उपरोक्ता AB मांग वक्र के E बिन्दु पर है। मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों में परिवर्तन होने के कारण मांग वक्र AB दो कारणों से ऊपर की ओर सरक कर CD हो जाएगी। CD मांग वक्र के (1) बिन्दु से F ज्ञात होता है कि आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये पर आईसक्रीम की मांग 3 से बढ़कर 4 हो गई है। (2) बिन्दु G से ज्ञात होता है कि आईसक्रीम की कीमत बढ़कर चार रुपये हो जाती है परन्तु मांग पहले जितनी अर्थात् 3 ही रहती है। नई मांग वक्र CD मांग में होने वाली वृद्धि को प्रकट कर रही है

(2) **मांग में कमी (Decrease in Demand)**—यदि किसी वस्तु की कीमत समान रहने पर उस वस्तु की मांग कम हो जाती है अथवा कीमत कम होने पर भी मांग समान रहती है तो इस परिवर्तन को मांग में कमी कहा जाता है। (Less demand at same price and same demand at less price is called decrease in demand) अतएव मांग में दो प्रकार से कमी हो सकती है।

(i) **समान कीमत, कम मांग (Same Price-Less Demand)**—मान लीजिए जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो 3 आईसक्रीम की मांग है। यदि कीमत तो तीन रुपये ही रहे परन्तु मांग कम होकर 2 आईसक्रीम हो जाए तो इसे मांग में कमी कहा जाएगा।

(ii) **कम कीमत, समान मांग (Less Price-Same Demand)**—जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो मांग 3 है। यदि कीमत कम होकर दो रुपये हो जाए परन्तु मांग में कोई वृद्धि नहीं हो तो वह पहले जितनी ही अर्थात् 3 ही रहे तो इसे मांग में कमी कहा जाएगा।



### चित्र 8.

मांग में होने वाली कमी को रेखाचित्र 8 से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए AB प्रारम्भिक मांग वक्र है। जब आईसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो आईसक्रीम की मांग 3 है। उपभोक्ता AB मांग वक्र के E बिन्दु पर है। मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों में परिवर्तन होने के कारण मांग दो कारणों से नीचे की ओर सरक कर CD हो जाएगी। इस नई मांग वक्र के (1) बिन्दु E से ज्ञात होता है यद्यपि आईसक्रीम की कीमत कम होकर दो रुपये हो गई है तो मांग पहले जितनी अर्थात् 3 ही है। नई मांग वक्र CD मांग में होने वाली कमी को प्रकट करती है।

संक्षेप में जब कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्वों में परिवर्तन होने के कारण मांग में परिवर्तन होता है, तो इसे मांग में वृद्धि या कमी कहते हैं मांग में वृद्धि होने से मांग वक्र दाईं ओर ऊपर की ओर सरक जाती है। इसके विपरीत मांग में कमी होने से मांग वक्र नीचे की ओर सरक (Shift) जाती है।

## 7. परस्पर-सम्बन्धी मांग (Inter-Connected Demand)

जब किसी वस्तु की मांग दूसरी वस्तु की मांग पर निर्भर करती है तो उसे परस्पर सम्बन्धित मांग कहते हैं। ये निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है।

(1) **संयुक्त या पूरक मांग (Joint of Complementary Demand)**—जब किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि के लिए दो या दो से अधिक वस्तुओं की मांग एक साथ ही की जाती है तो उसे संयुक्त या पूरक मांग कहते हैं। (Joint demand means one commodity completing the other) जैसे फोटो लेने के लिए फिल्म तथा कैमरे की मांग, मोटर चलाने के लिए कार व पेट्रोल की मांग, चाय के लिये दूध, चीनी तथा चाय की पत्ती की मांग। संयुक्त मांग वाली वस्तुओं को पूरक वस्तुएं कहा जाता है।

(2) **सामूहिक मांग (Composite Demand)**—जब किसी वस्तु से कई आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं उसकी मांग सामूहिक मांग कहलाती है। (Composite demand is the demand of the same commodity for two or more purposes)—जैसे : दूध की मांग, दही, पनीर, खोआ आदि कई कार्यों के लिए की जाती है तो इसकी कुल मांग, सामूहिक मांग कहलायेगी।

(3) **प्रत्यक्ष तथा व्युत्पन्न मांग (Direct and Derived Demand)**—जब किसी वस्तु की मांग उसका प्रत्यक्ष उपभोग करने के लिए की जाती है तो उसे प्रत्यक्ष मांग कहते हैं, जैसे : कोयले की मांग कमरा गर्म करने के लिए की जाए या दूध पीने के लिए की जाए तो यह प्रत्यक्ष मांग कहलाएगी। इसके विपरीत यदि एक वस्तु की मांग किसी दूसरी वस्तु को बनाने के लिए की जाती है तो वह व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) कहलाती है। (The term derived demand is used when the demand for one commodity is the direct result of the demand for another) अन्य शब्दों में व्युत्पन्न मांग से अभिप्राय उस मांग से है जो किसी उत्पादन या उत्पादन के साधन को व्यक्त करे जिसका प्रयोग किसी अन्य वस्तु के उत्पादन में किये जाने के कारण उसमें मांग से व्युत्पन्न हो। (Derived demand is the demand for product or a factor of production which is derived from the demand of some other product in the production of which it is used) जैसे फैक्टरी में कोयले की मांग, मकान बनाने के लिए ईट, सीमेन्ट, लकड़ी आदि की मांग।

(4) **प्रतियोगी मांग (Competitive Demand)**—जब दो वस्तुएं एक दूसरी की प्रतिस्थापन होती हैं। इनमें से एक की मांग बढ़ने पर दूसरे की मांग कम हो जाती है। इसलिए इन वस्तुओं की मांग को प्रतियोगी मांग कहा जाता है। (Demand for substitutes is known as competitive demand. An increase in the quantity demanded of one of them will reduce the demand for the other.) इन वस्तुओं को प्रतिस्थापन वस्तुएं (Substitute) भी कहा जाता है। प्रतिस्थापन वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो एक दूसरे के लिए प्रयोग की जा सकती हैं। एक निश्चित आय पर एक

वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर दूसरी की मांग में परिवर्तन आता है। जैसे कोका कोला और पेप्सी कोला, यदि कोका कोला की कीमत बढ़ जाती है तो पेप्सी कोला की मांग में वृद्धि हो जाएगी।

## मांग के निर्धारक अथवा मांग को प्रभावित करने वाले घटक

(Determinants of Demand or Factors Influencing Demand)

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण चरों की चर्चा नीचे की जा रही है।

### 1. गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं (Non-Durable Consumer Goods)

ये ऐसी वस्तुएं होती हैं जिनका उपयोग सिर्फ एक बार हो सकता है। ये वस्तुएं हैं : खाद्य सामग्री, सिगरेट, माचिस, ईंधन आदि। ऐसी वस्तुओं की मांग क्रय-शक्ति, कीमत और जनसंख्या द्वारा प्रभावित होती है। इस प्रकार इन वस्तुओं की मांग का पूर्वानुमान निम्न सूत्र की सहायता से किया जा सकता है---

$$d = f(Y, P, D)$$

यहां  $d$  = मांग;  $f$  = फलन;  $y$  = व्यययोग्य आय या, क्रय-शक्ति;  $P$  = कीमत; और  $D$  = जनसांख्यिकी का सूचक है।

(i) **क्रयशक्ति (Purchasing Power)**—व्यक्तिगत आय में से प्रत्यक्ष करों को घटाकर व्यययोग्य आय प्राप्त की जा सकती है। परन्तु इसकी गणना में अशुद्धता का भय बना रहता है।

यही कारण है कि हेन्स (Haynes) जैसे कई अर्थशास्त्रियों ने मांग पूर्वानुमान के लिए व्यययोग्य आय के प्रयोग को अस्वीकार कर दिया है। उनका कहना है कि मांग पूर्वानुमान के लिए व्यययोग्य आय के बदले 'स्वनिर्णयात्मक आय' (discretionary income) का प्रयोग किया जाना चाहिए। स्वनिर्णयात्मक आय, व्यययोग्य आय से आरोपित आय (imputed income) और माल के रूप में आय, (Income in kind) प्रमुख निश्चित व्यय भुगतान, बीमा किश्त भुगतान, लगान, बंधक, ऋण भुगतान आदि, और आवश्यक व्यय अर्थात् किसी सामान्य वर्ष के दौरान खाद्य सामग्री उपभोग पर आधारित, वस्त्र और परिवहन व्यय आदि को घटाकर प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इसका अनुमान करना भी आसान नहीं है। इसीलिए स्पेन्सर (Spencer), क्लार्क (Clark) और हॉग्वेस्ट (Hoguest) जैसे अर्थशास्त्रियों ने व्यययोग्य आय को ही अधिक संतोषजनक अवधारणा बताया।

(ii) **कीमत (Price)**—कीमत मांग का अति महत्वपूर्ण निर्धारक है। कोई वस्तु और उसकी पूरक वस्तुओं की कीमत और उसकी मांग के बीच ऋणात्मक संबंध होता है जबकि स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत से उस वस्तु की मांग का धनात्मक संबंध होता है। गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का मांग पूर्वानुमान करते समय कीमत लोच और प्रति लोच काफी उपयोगी हो सकता है। गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं जिनका भंडारण हो सकता है और जो फैशन संबंधी परिवर्तनों से स्वतंत्र हैं, सापेक्षिक रूप से अधिक कीमत लोचशील होती हैं, जबकि जिन वस्तुओं का भंडारण नहीं हो सकता है, कीमत बेलोच होती है।

(iii) **जनसांख्यिकी (Demography)**—मांग, जनसंख्या के आकार और विशेषताओं पर भी महत्वपूर्ण रूप से निर्भर करती है। गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का मांग पूर्वानुमान करते समय कुल जनसंख्या, आय-वर्ग, सामाजिक प्रतिष्ठा, आयु, लिंग, पुरुष-महिला अनुपात, ग्रामीण और शहरी अनुपात, भौगोलिक विशेषताएं, शिक्षा का स्तर आदि पर भी अवश्य विचार किया जाना चाहिए। उपर्युक्त चरों के आधार पर बाजार खंड निर्धारित किया जा सकता है और प्रत्येक बाजार खंड की मांग एवं कुल बाजार मांग का अनुमान प थक-प थक किया जा सकता है, क्योंकि ये सभी मिलकर विचाराधीन गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार, गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग उपर्युक्त घटकों द्वारा निर्धारित होती है।

### 2. टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं (Durable Consumer Goods)

इन वस्तुओं का उपयोग पर्याप्त समय अवधि तक किया जा सकता है। यह महत्वपूर्ण नहीं होता कि अवधि छोटी है या लम्बी। ये वस्तुएं हैं : पेन, दूध-ब्रश, कपड़ा, स्कूटर, टी०वी० आदि। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग दो भागों में विभाजित की जा सकती है : प्रतिस्थापन मांग और नवीन मांग, जिनके पास पहले से ही वह वस्तु है, उनकी ओर से मांग, प्रतिस्थापन की मांग और पूर्ण रूप से नवीन स्वामियों द्वारा मांग नवीन मांग कहलाएगी। दोनों के लिए मांग पूर्वानुमान अलग-अलग किया जाता है, क्योंकि दोनों पर पड़ने वाले प्रभाव भिन्न होते हैं। इस प्रकार टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का मांग पूर्वानुमान करते समय एक ओर क्रय विशेषताएं, जो उपभोग वातावरण को स्पष्ट करती है और दूसरी ओर विचाराधीन वस्तुओं की नवीन, प्रतिस्थापन और कुल मांग की बीच के संबंधों के वृद्धि मॉडल या मूल समीकरण पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग के महत्वपूर्ण निर्धारकों की चर्चा यहां की जा रही है :

(i) **समय अवधि (Time Period)**—उपभोक्ता के पास यह विकल्प होता है कि यदि वह आवश्यक समझे तो मरम्मत कराकर टिकाऊ वस्तुओं का उपयोग कई वर्षों तक करे या उसे निकाल बाहर करे और उसके स्थान पर नयी वस्तु खरीद ले। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अपनी पुरानी वाशिंग मशीन का प्रतिस्थापन उसे बेचकर या नई स्वचालित मशीन की कीमत में अंतर का भुगतान द्वारा कर सकता है। परन्तु यह चुनाव उसकी सामाजिक स्थिति, प्रतिष्ठा, आय का स्तर, अप्रचलन की दर आदि पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त, हम देखते हैं कि युद्ध, अभाव और प्राकृतिक आपदाओं के दिनों में लोग टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के प्रतिस्थापन को स्थगित कर देते हैं।

(ii) **प्रयोग की सुविधाएं (Facilities of Use)**—टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उपयोग के लिए सामान्यतः विशेष सुविधाओं की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, स्कूटर और कार के लिए सड़क और पेट्रोल स्टेशन एवं पंखा, टी०वी०, मिक्सर-ग्राइण्डर आदि के लिए बिजलीयुक्त घर की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी सुविधाओं का रहना और उसमें वृद्धि विचाराधीन वस्तुओं की मांग की मात्रा को निर्धारित करती है।

(iii) **जनसंख्या संबंधी घटक (Demographic Factors)**—टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग का कुल जनसंख्या, वृद्धि दर, आयु-लिंग संयोजन, आय-वर्ग, सामाजिक स्थिति एवं प्रतिष्ठा, ग्रामीण एवं शहरी अनुपात, शिक्षा का स्तर, भौगोलिक विशेषताएं आदि से अति घनिष्ठ संबंध होता है। उदाहरणार्थ, बच्चों के खिलौने की मांग जन्म-दर पर निर्भर करेगी। इसी तरह साड़ियों की मांग आयु के हिसाब से औरतों की संख्या पर निर्भर करती है।

साथ ही टिकाऊ वस्तुएं, जो किसी एक सदस्य द्वारा नहीं, बल्कि पूरे परिवार द्वारा उपयोग की जाती हैं, जैसे रेडियो, टी०वी०, फर्नीचर आदि, इन वस्तुओं की खरीद का निर्णय पारिवारिक विशेषताओं, जैसे परिवारों की संख्या और आकार, बच्चों और वयस्कों का आयु वर्गीकरण, कीमत, आय आदि के द्वारा महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होता है।

(iv) **कीमत और ऋण सुविधाएं (Price and Credit Facilities)**—टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग उनकी कीमतों और खरीदने के लिए उपलब्ध ऋण सुविधाओं पर अत्यधिक निर्भर करती है। कीमत के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वस्तु की औसत आयु और उसकी कीमत का अनुपात क्या है? यदि औसत आयु अधिक है तो कीमत प्रभाव हतोत्साहित होगा और विलोमशः।

ऊंची कीमत वाली टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद पर ऋण सुविधा अपनी मांग में त्वरक (accelerator) का काम करती है। अर्थात् तत्काल नकद-भुगतान में कमी, ऋण अवधि में बढ़ोतरी या ब्याज दर से कमी कीमत वृद्धि के प्रभाव को कम करती है। आजकल कार, स्कूटर, टी०वी०, रेफ्रिजरेटर बनाने वाली कई कंपनियां अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए ग्राहकों को ऋण सुविधा प्रदान कर रही हैं।

(v) **उपभोक्ता ऋण बकाया (Consumer Credit Outstandings)**—यहां एक विचारणीय बात है कि इस प्रकार लिया गया ऋण उपभोक्ता को भविष्य में चुकाना पड़ता है जो उसकी भविष्य की स्वनिर्णयात्मक क्रय-शक्ति को घटाता है। अतः मांग पूर्वानुमान करते समय उपभोक्ता बकाया ऋण की स्थिति पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए। यदि उपभोक्ता की वर्तमान आय से उपभोक्ता बकाया ऋण का अनुपात अधिक होता है तो टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की भविष्य की मांग कम हो जाएगी और विलोमशः। इसके दो कारण हो सकते हैं—एक ओर तो ऋणदाता जोखिम के प्रति अधिक सावधान हो जाएंगे; और दूसरी ओर, उपभोक्ता स्वयं अतिरिक्त ऋण लेना कम कर देंगे।

(vi) **आय-स्तर (Income Level)**—GNP या व्यवयोग्य आय में वृद्धि की संभावना जितनी अधिक होगी, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि की संभावना उतनी ही अधिक होगी। परन्तु विश्वसनीय मांग पूर्वानुमान के लिए GNP या व्यवयोग्य व्यक्तिगत आय के बदले स्वनिर्णयात्मक आय के प्रयोग को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। क्योंकि स्वनिर्णयात्मक आय और टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में घनिष्ठ संबंध देखे गए हैं।

स्वनिर्णयात्मक आय = व्यवयोग्य आय (व्यक्तिगत आय = आयकर) + अस्थायी आय।

(vii) **चरम सीमा बिन्दु (Saturation Point)**—चरम सीमा बिन्दु का विचार टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं जैसे कार, रेफ्रिजरेटर, वाशिंग मशीन आदि के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। किसी विशेष बाजार में इस वस्तुओं की मांग का एक चरम सीमा बिन्दु होता है। उदाहरणार्थ, जब हम उस स्थिति में पहुंच जाते हैं जहां लगभग 100% घरों में वाशिंग मशीन उपलब्ध है तो अतिरिक्त वाशिंग मशीन की मांग की संभावना सीमित हो जाएगी। ऐसी स्थिति में मुख्य रूप से प्रतिस्थापन मांग की होगी।

(viii) **वर्तमान भंडार (Existing Stock)**—कई टिकाऊ वस्तुओं के मामले में वर्तमान भंडार के आकार और आयु वर्गीकरण का भंडार में वृद्धि पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भंडार जितना अधिक होगा, प्रतिस्थापन की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। साथ ही वस्तु की आयु कम होने पर सापेक्षिक रूप से प्रतिस्थापन भी पहले होगा।

(ix) **उपभोक्ता प्रवृत्ति (Consumer Attitudes)**—मांग पूर्वानुमानकर्ता को उपभोक्ताओं की प्रवृत्तियों में परिवर्तन का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इससे उसे बाजार मांगों में भविष्य की प्रवृत्तियों का पता चलेगा। इसके लिए उपभोक्ता योजनाओं का सर्वेक्षण काफी उपयोगी साबित हो सकता है। इसके अतिरिक्त, कई सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक घटक भी हैं जिनको समुचित महत्त्व दिया जाना चाहिए।

(x) **नवीन मांग और प्रतिस्थापन मांग (New Demand and Replacement Demand)**—कुल मांग को सांकेतिक रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :  $D = N + R$

जहां D = कुल मांग; N = नवीन मांग; और R प्रतिस्थापन मांग के सूचक हैं।

नवीन मांग समय में इकाई परिवर्तन के सापेक्ष में वस्तु के उपभोक्ता भंडार में परिवर्तन को दर्शाती है। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के मामले में क्रय-शक्ति, परिवारों की संख्या और विचाराधीन वस्तुओं से संबंधित कुछ अन्य घटक एक चरम सीमा (Saturation) स्तर या इष्टतम स्वामित्व स्तर निर्धारित करते हैं। अर्थात् आय के बढ़ते रहने पर भी लोगों द्वारा खरीद की जाने वाली रेफ्रिजरेटर की संख्या की एक सीमा होगी। उपभोक्ता भंडार की वास्तविक मात्रा की प्रवृत्ति इस ओर जाने की होती है। इस प्रकार, इस चरम सीमा बिन्दु और वास्तविक उपभोक्ता भंडार के बीच का अन्तर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग की वृद्धि की संभावना को दर्शाता है।

हम देखते हैं कि व्यक्ति जब किसी टिकाऊ वस्तु का उपयोग करता है तो वह कुछ समय बाद उनका उपयोग बंद कर देता है। यही प्रतिस्थापन मांग पूर्वानुमान मांग पूर्वानुमान को जन्म देती है।

प्रतिस्थापन मांग उपभोक्ता भंडार के साथ बढ़ती है और एक सीमा के बाद नवीन मांग से भी अधिक हो जाती है। अच्छी तरह स्थापित कई वस्तुओं की दशा में, विकसित देशों में औसत प्रतिस्थापन दर का अनुमान करने के लिए वस्तु की जीवन प्रत्याशा तालिका और उत्तरजीविका वक्र (survival curves) तैयार किए जाते हैं। क्रय-शक्ति बढ़ने के साथ-साथ रद्दी या त्यागने योग्य वस्तु की दर (scrapage rate) भी बढ़ जाती है और विलोमशः भी। दूसरी ओर, जब मांग उत्पादन से अधिक हो जाती है तो रद्दी माल की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की मांग के उपर्युक्त निर्धारक है। फिर भी इन वस्तुओं की मांग का पूर्वानुमान करना एक जटिल समस्या है। सामान्यतः इनकी खरीद का निर्णय तत्क्षण नहीं लिया जाता बल्कि परिवार के सदस्यों के बीच पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद लिया जाता है जिससे ढेर सारी अड़चनें पैदा होती हैं। आगे, यदि इनकी कीमतों में वृद्धि की संभावना है तो मांग तेजी से बढ़ेगी। इसके विपरीत स्थिति में मांग स्थगित कर दी जाएगी। यदि वस्तु में सुधार होने की संभावना है, तो भी मांग स्थगित कर दी जाएगी।

### 3. पूंजी या उत्पादक वस्तुएं (Capital or Producer's Goods)

पूंजी वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो उन वस्तुओं के उत्पादन में सहायक होती हैं जो उपभोक्ता की आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट करती हैं, जैसे मशीन, प्लांट। कृषि संबंधी और औद्योगिक कच्चे माल आदि उत्पादक वस्तुएं भी दो प्रकार की होती हैं :

(i) **एक बार उपयोगी की जाने वाली उत्पादक वस्तुएं (Single-use Producer's goods)**—ये वस्तुएं बार-बार उपयोग की जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, कारखाने में उपयोग किया जाने वाले कोयला, कच्ची रुई आदि।

(ii) **टिकाऊ उपयोग वाली उत्पादक वस्तुएं (Durable-use Producer's Goods)**—ये वस्तुएं एक बार में अपनी व्यवहार्यता नहीं खोती, बल्कि लम्बी अवधि तक इनका उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ मशीन, प्लांट, कारखाने का भवन, औजार, आदि।

चूंकि पूंजी वस्तुएं आगे के उत्पादन के लिए उपयोग की जाती हैं, अतः उनकी मांग व्युत्क्रम मांग होती है। अर्थात् जिन उपभोक्ता वस्तुओं के वे उत्पादित करते हैं उनकी मांग से ही संबंधित पूंजी वस्तुओं की मांग उत्पन्न होती है। पूंजी वस्तुओं की मांग सामान्यतः इन्हें उपयोग करने वाले उद्योगों के बाजार का आकार, व्यवसाय संभावनाओं, सरकारी-नीतियों आदि पर निर्भर करती हैं।

पूंजी वस्तुओं की मांग दो प्रकार की हो सकती है : नवीन मांग और प्रतिस्थापन मांग। अतः इन दोनों प्रकार की मांग का अलग-अलग पूर्वानुमान करना आवश्यक होता है।

पूंजी वस्तुओं की मांग पूर्वानुमान के लिए निम्न आंकड़े आवश्यक होते हैं :

- (i) उपयोग करने वाले उद्योगों की वृद्धि संभावनाएं अर्थात् मांग पूर्वानुमान करते समय विचाराधीन पूंजी वस्तुओं का उपयोग करने वाले विभिन्न उद्योगों में मांग प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान अवश्य किया जाना चाहिए।
- (ii) स्थापित क्षमता की प्रति इकाई पूंजी वस्तुओं के उपभोग के नियम। सामान्यतः ये नियम स्थिर होते हैं परन्तु कभी-कभी इसमें परिवर्तन भी देखने को मिलता है।
- (iii) विचाराधीन पूंजी वस्तुओं द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग का पूर्वानुमान।
- (iv) विचाराधीन पूंजी वस्तुएं उपयोग करने वाले उद्योग में अतिरिक्त क्षमता का स्तर।
- (v) पूंजी वस्तुओं का वर्तमान भंडार।
- (vi) वर्तमान भंडार का आयु विभाजन।

- (vii) अप्रचलन की दर।
- (viii) कोषों की उपलब्धता।
- (ix) पूंजी वस्तु उपयोग करने वाली फर्मों पर कोषों की लागत।
- (x) कर-उपबन्धों की प्रकृति।
- (xi) विचाराधीन पूंजी वस्तुओं का बाजार ढांचा।
- (xii) स्थानापन्न और पूरक वस्तुओं की कीमतें, आदि।

उपर्युक्त आंकड़ों के आधार पर ही विचाराधीन पूंजी वस्तुओं की मांग का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

यहां यह बात भी महत्वपूर्ण है कि व्युत्क्रम मांग होने के कारण पूंजी वस्तुओं की मांग में उपभोक्ता वस्तुओं के सापेक्ष में अधिक तेजी से और विभिन्न तरह से उतार-चढ़ाव आता है।

अतः विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग का पूर्वानुमान करते समय मांग को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए एवं मांग का पूर्वानुमान अलग-अलग किया जाना चाहिए।

## अध्याय 3

# माँग की लोच : अर्थ, मापने की विधियाँ एवं प्रबन्धकीय उपयोग

## ELASTICITY OF DEMAND : CONCEPT AND ITS MEASUREMENTS

अर्थशास्त्र में माँग की लोच का विशेष महत्त्व है। यह एक व्यवसायी को निर्णय लेने में सहायता करता है। इसका ज्ञान प्रबन्धक के लिए कई प्रकार से लाभदायक होता है। प्रबन्धक की माँग की लोच से क्या फायदे होते हैं ? इसका अध्ययन करने से पहले माँग की लोच क्या होती है ? इसके प्रकार क्या होते हैं ? उनकी व्याख्या निम्न है :-

### माँग की लोच का अर्थ (Meaning of Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की माँगों को प्रभावित करने वाले तत्वों की माँग के सर्धारक तत्व कहा जाता है। इन निर्धारक तत्वों में प्रतिशत परिवर्तन होने से माँग में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को माँग की लोच कहा जाता है।

$$\text{माँग की लोच} = \frac{x \text{ वस्तु की में } \% \text{ परिवर्तन}}{x \text{ वस्तु के निर्धारण तत्वों में } \% \text{ परिवर्तन}}$$

माँगों के निर्धारक तत्व:-

$$D_x = F(P_x, P_y, Y, Acl_{x1})$$

1.  $D_x = x$  वस्तु की माँग

2.  $P_x = x$  वस्तु की कीमत

3.  $P_y = Y$  वस्तु की कीमत Ad-x वस्तु के ऊपर विज्ञापन खर्च

इन्हीं निर्धारक तत्वों के आधार के माँग की।

लोच को निम्न प्रकार से बांटा जाता है।

1. माँगों की कीमत लोच—(Price Elasticity of Demand)
2. माँगों की आय लोच—(Income Elasticity of Demand)
3. माँगों की विज्ञापन लोच—(Advertise Elasticity of Demand)
4. माँगों की आड़ी लोच—(Gross Elasticity of Demand)

### माँग की कीमत लोच की श्रेणियाँ अथवा अंश (Degrees of Price Elasticity)

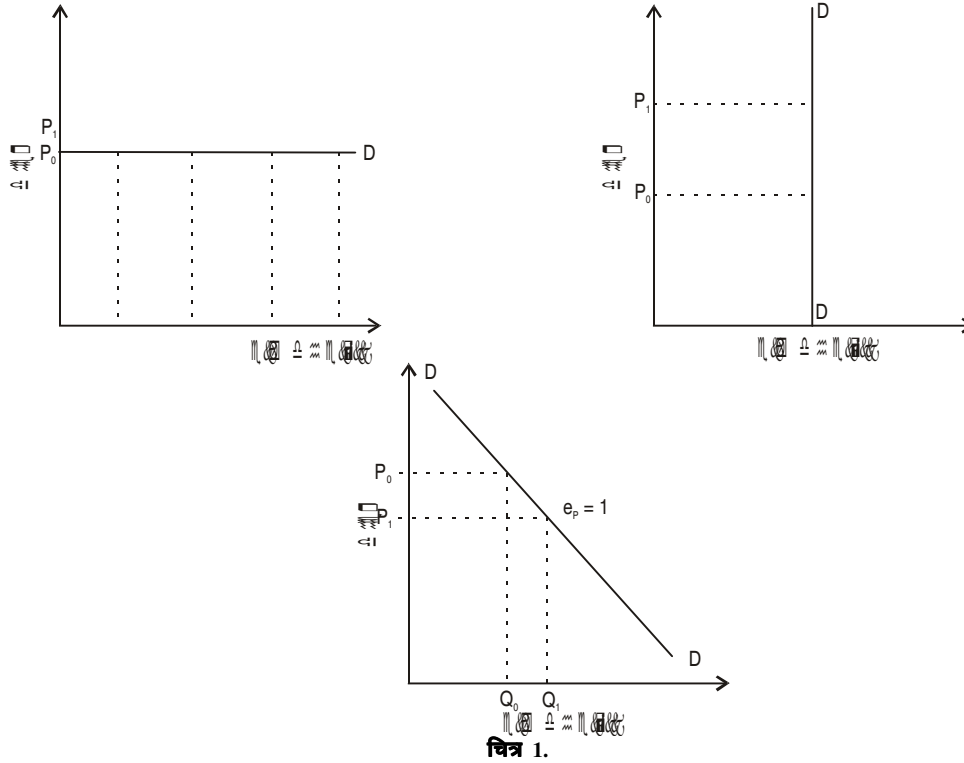
माँग की मूल्य लोच की निम्नांकित पाँच श्रेणियाँ होती हैं :

(1) **पूर्णतया लोचदार माँग (Perfectly Elastic Demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्यों में परिवर्तन न होने अथवा बहुत कम परिवर्तन होने पर वस्तु की माँगी गई मात्रा में अनन्त परिवर्तन



हो जाता है, तो ऐसी वस्तु की माँग को पूर्णतया लोचदार अथवा अत्यन्त माँग कहते हैं। ऐसी वस्तु की अधिक इकाई बेचने के लिए फर्म को प्रचलित मूल्य में कमी करने की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु प्रचलित मूल्य में बहुत थोड़ी सी भी वृद्धि करने पर वस्तु की माँग घटकर शून्य हो जाती है। गणित की भाषा में इसे  $e_p = \alpha$  द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसमें माँग रेखा आधार रेखा के समानान्तर (Horizontal) रहती है। इसे रेखाचित्र 3A से देखा जा सकता है। OP मूल्य पर माँग गई मात्रा OM से  $OM_1, \dots, n$  तक बढ़ती चली जाती है। पूर्णतया लोचदार माँग की वस्तु व्यवहार में देखने को नहीं मिलती है। यह एक काल्पनिक धारणा है।

(2) **पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly Inelastic Demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्य में अधिक परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तो ऐसी वस्तु की माँग पूर्णतया बेलोचदार होती है। पूर्णतया बेलोचदार माँग की केवल कल्पना ही की गई है, व्यवहार में इस तरह की माँग नहीं पायी जाती है। इसमें माँग रेखा आधार रेखा पर लम्ब रूप (Vertical) होती है। इसे रेखाचित्र 1B से देखा जा सकता है। वस्तु का मूल्य OP से बढ़कर  $OP_1$  होने पर भी वस्तु की माँग OM ही बनी रहती है। गणित की भाषा में इसे  $e_p = 0$  द्वारा व्यक्त किया जाता है।

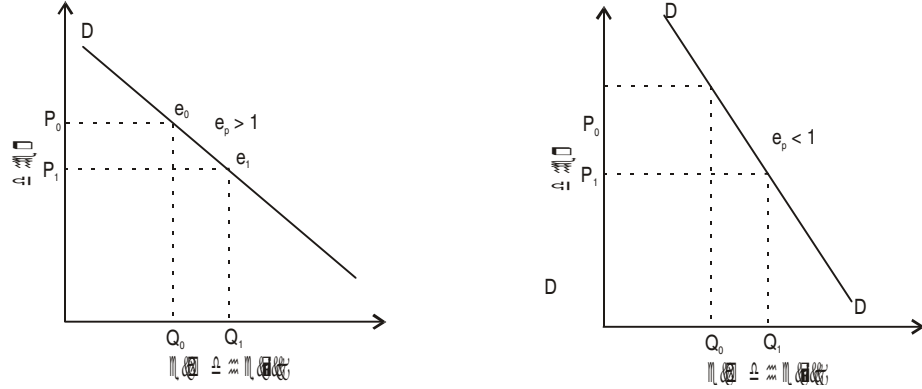


चित्र 1.

(3) **इकाई लोचदार माँग अथवा लोचदार माँग (Unit Elasticity or Elastic Demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने पर उसी अनुपात में वस्तु की माँग में परिवर्तन होता है, तो उस वस्तु की माँग को इकाई लोचदार अथवा लोचदार माँग कहते हैं। गणित की भाषा में इसे  $e_p = 1$  द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसमें माँग वक्र का आकार आयताकार हाइपर बोला (rectangular hyperbola) जैसा होता है, इसे रेखाचित्र 1C से देखा जा सकता है। जिस वस्तु की माँग इकाई लोचदार होती है, उस वस्तु के मूल्यों में यदि 10% की कमी होगी तो उसकी माँग 10% बढ़ जायेगी।

(4) **अत्यधिक लोचदार माँग (Highly Elastic Demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्य में थोड़ा-सा परिवर्तन होने पर उसकी माँग में अधिक परिवर्तन होता है, तो उस वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार माँग कहलाती है। उदाहरण के तौर पर मूल्य में 5% की कमी होने पर वस्तु

की माँग 20% बढ़ जाये, तो यहाँ वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार होगी। इसे गणित की भाषा  $e_p > 1$  के द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रायः ऐसी वस्तुएँ जिनके अनेक प्रयोग सम्भव होते हैं अथवा जिनके अनेक प्रतिस्थापन होते हैं, उनकी माँग अत्यधिक लोचदार माँग होती है। इसे रेखाचित्र 2A से देखा जा सकता है। चित्र में वस्तु के मूल्य में  $PP_1$  परिवर्तन होने पर वस्तु की माँगी गई मात्रा में  $MM_1$  परिवर्तन होता है, जो मूल्य के परिवर्तन के अनुपात से बहुत अधिक है।



चित्र 2.

(5) **बेलोचदार माँग अथवा इकाई से कम लोचदार माँग (Inelastic Demand)**—जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने पर उसकी माँग में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होते हैं, तो उसे वस्तु की माँग को बेलोचदार माँग कहते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी वस्तु के मूल्य में 20 प्रतिशत कमी होने पर उसकी माँग में 10 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है, तो वस्तु की माँग बेलोचदार अथवा इकाई से कम लोचदार कहलायेगी। गणित की भाषा में इसे  $e_p < 1$  द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसे रेखाचित्र 2B से देखा जा सकता है। रेखाचित्र में मूल्य में  $PP_1$  परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग में  $MM_1$  परिवर्तन होता है, जो मूल्य में हुए परिवर्तन की तुलना में बहुत कम है।

## माँग की मूल्य लोच को मापने की विधियाँ

(Method of Measuring Price Elasticity)

माँग की मूल्य लोच को मापने की अनेक विधियाँ हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं-

- (1) प्रतिशत विधि (The Percentage Method)
- (2) कुल व्यय विधि (Total Outlet Method)
- (3) बिन्दु विधि (Point Method)
- (4) चाप विधि (The Arc Method)

(1) **प्रतिशत विधि (The Percentage Method)**—इस विधि का प्रतिस्थापन फ्लक्स द्वारा किया गया था। इस विधि के अनुसार माँग की लोच ज्ञात करने के लिए मूल्य परिवर्तन के कारण माँग में जितने प्रतिशत परिवर्तन होता है, उसमें मूल्यों में हुए प्रतिशत परिवर्तन का भाग दे दिया जाता है। यदि ऐसा करने पर भागफल एक आता है, तो माँग की लोच इकाई के बराबर होगी, एक से अधिक आने पर माँग की लोच इकाई से अधिक तथा एक से कम आने पर माँग की लोच इकाई से कम होगी। गणित के सूत्र रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$$e_p = \frac{\text{माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$e_p = \frac{\frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}}{\frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}}$$

यदि हम इन्हें गणितीय चिन्हों में व्यक्त करें और  $\Delta$ (डेल्टा) परिवर्तन के लिए, Q मात्रा के लिए तथा P मूल्य के लिए लें, तो बीजगणितीय सूत्र निम्न होगा—

$$e_p = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P} = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

वस्तु के मूल्य तथा उसकी माँगी हुई मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है; अतः माँग की मूल्य लोच का गुणांक सदैव ऋणात्मक होता है। माँग की लोच को मापते समय इस ऋणात्मक चिन्ह की प्रायः अपेक्षा की जाती है तथा इसे दिया हुआ मान लिया जाता है।

प्रतिशत विधि को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

माना कि एक वस्तु का मूल्य 5 रुपया है तथा उसकी माँग 1,000 इकाइयों की है। प्रथम स्थिति में यदि वस्तु का मूल्य घटकर 4 रुपया हो जाये तथा उसकी माँग बढ़कर 1,100 इकाइयों हो जाये, तो वस्तु की मूल्य की लोच होगी :

$$e_p = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q} = \frac{100}{1} \times \frac{5}{1,000} = \frac{1}{2} < 1$$

अतः माँग की लोच इकाई के बराबर है।

यदि तीसरी स्थिति में वस्तु की कीमत 5 रुपये से घटकर 4.5 रुपये हो जाती है तथा माँग 1,000 इकाइयों से बढ़कर 1,200 इकाइयों हो जाती है, तो माँग की लोच होगी-

$$e_p = \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q} = \frac{200}{0.5} \times \frac{5}{1,000} = 2 < 1$$

अर्थात् माँग की लोच इकाई से अधिक है।

(2) **कुल व्यय विधि (The Total Outlay Method)**—इस विधि का प्रतिपादन प्रो० एल्फ्रेड मार्शल द्वारा किया गया था। इस विधि के अनुसार माँग की लोच ज्ञात करने के लिए मूल्य परिवर्तन से पूर्व उस वस्तु पर किये जाने वाले कुल व्यय तथा मूल्य परिवर्तन के बाद किये जाने वाले कुल व्यय की तुलना की जाती है। इस विधि के अनुसार भी माँग की लोच इकाई के बराबर ( $e_p = 1$ ), इकाई से कम ( $e_p < 1$ ) तथा इकाई से अधिक ( $e_p > 1$ ) होती है।

मार्शल के अनुसार वस्तु की माँग की मूल्य लोच उस समय इकाई के बराबर होती है जब वस्तु के मूल्य घटने अथवा बढ़ने पर भी वस्तु पर कुल व्यय की मात्रा स्थिर रहती है।

माँग की मूल्य लोच उस समय इकाई से अधिक होती है जब वस्तु के मूल्य घटने पर वस्तु पर किये जाने वाले कुल व्यय की राशि घट जाती है तथा मूल्य बढ़ने पर कुल व्यय की राशि बढ़ जाती है।

कुल व्यय विधि के अनुसार माँग की मूल्य लोच की गणना को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु पर विभिन्न स्थितियों में किया जाने वाला कुल व्यय अग्रांकित तालिका 3.1. में दिया गया है :

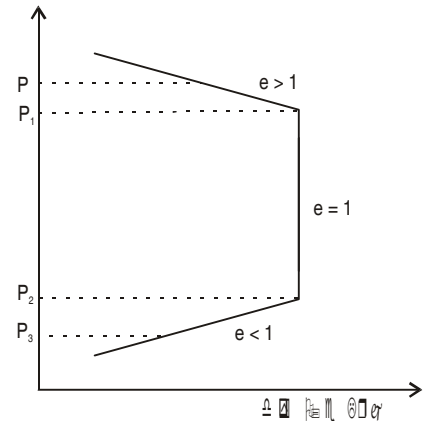
तालिका 3.1.

विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की माँग तथा कुल व्यय

	मूल्य प्रति इकाई (₹)	माँगी गई मात्रा इकाईयाँ	कुल व्यय ₹	माँग की लोच
I	10	50	600	इकाई लोच $e_p = 1$
	8	75	600	
	6	100	600	
II	10	60	600	इकाई से अधिक लोचदार $e_p > 1$
	8	100	800	
	6	150	900	
III	10	60	600	इकाई लोच $e_p < 1$
	8	70	560	
	6	80	480	

तालिका 3.1 से स्पष्ट होता है कि प्रथम स्थिति में माँग की लोच इकाई के बराबर है क्योंकि मूल्य परिवर्तन से कुल व्यय में परिवर्तन नहीं होता है। कुल व्यय की राशि वस्तु का मूल्य 10 रुपये प्रति इकाई होने पर भी 600 रुपया रहता है, 8 रुपये प्रति इकाई होने पर भी 600 रुपये तथा 6 रुपये प्रति इकाई होने पर भी 600 रुपये रहता है। दूसरी स्थिति में वस्तु की माँग की लोच इकाई से अधिक है क्योंकि मूल्य घटने पर कुल व्यय बढ़ता है तथा मूल्य बढ़ने पर कुल व्यय घटता है। जब मूल्य 10 रुपये से घटकर 8 रुपये होता है, तो कुल व्यय 600 रुपये से बढ़कर 800 रुपये हो जाता है तथा मूल्य घटकर 6 रुपया होने पर कुल व्यय बढ़कर 900 रुपया हो जाता है, जबकि मूल्य 6 रुपये से बढ़कर 8 रुपया होता है, तब कुल व्यय 900 रुपये से घटकर 800 रुपया हो जाता है। तीसरी स्थिति में माँग की लोच इकाई से कम है, क्योंकि मूल्य घटने पर कुल व्यय घटता है, तथा मूल्य बढ़ने पर कुल व्यय बढ़ जाता है। जब मूल्य के 10 रुपये घटकर 8 रुपये होने पर कुल व्यय 600 रुपये से घटकर 560 रुपये हो जाता है। इसी तरह 6 रुपया मूल्य होने पर कुल व्यय 480 रुपये है, जबकि मूल्य बढ़कर 8 रुपये होने पर कुल व्यय 480 रुपये से बढ़कर 560 हो जाता है।

कुल व्यय द्वारा माँग की लोच की माप को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र 3 में OX अक्ष पर कुल व्यय तथा OY अक्ष पर वस्तु का मूल्य व्यक्त किया गया है। इस रेखाचित्र में मूल्य की तीन श्रेणियों पर विचार करते हैं। वस्तु का मूल्य जब OP से OP<sub>1</sub> तक कम होता है। तब कुल व्यय बढ़ता है; अतः माँग की लोच इकाई से अधिक होती है। जब मूल्य OP<sub>1</sub> से घटकर OP<sub>2</sub> तक होता है तब कुल व्यय स्थिर रहता है; अतः माँग की लोच इकाई से अधिक होता है तब कुल



चित्र 3.

## अध्याय 4

# माँग पूर्वानुमान : अर्थ, उपयोग और मापने की विधियाँ

## MEANING AND METHOD OF DEMAND FORECASTING

### 1. अर्थ

#### (Meaning)

माँग पूर्वानुमान संसाधनों के आबंटन संबंधी निर्णय-निर्माण और अग्रिम आयोजन के लिए अति आवश्यक है। व्यवसाय जगत् जोखिमों और अनिश्चितताओं से भरा होता है। पूर्वानुमान का उद्देश्य प्रबंधन के सामने फैली लागत, बिक्री, कीमत निर्धारण और पूंजी निवेश से संबंधित अनिश्चितताओं को कम करना, उचित समय पर आवश्यक मात्रा उत्पादित करने के योग्य बनाना और पूर्व से ही उत्पादन के विभिन्न साधनों को भली-भांति व्यवस्थित करना है। पूर्वानुमान प्रबंधन को वस्तुओं की सीमित माँग निर्धारित करने और उसके अनुसार उत्पादन की योजना बनाने में मदद करता है। माँग का ठीक-ठीक पूर्वानुमान करने से अल्प-उत्पादन और अति-उत्पादन की समस्या नहीं रहती है और इनसे होने वाली हानियों से फर्म बच जाती है। इस प्रकार, व्यवसाय की सफलता फर्म द्वारा ठीक ढंग से माँग का पूर्वानुमान करने की उसकी योग्यता पर निर्भर करती है।

पूर्वानुमान से अभिप्राय भविष्य की दशाओं को एक क्रमबद्ध आधार पर निर्धारित करना है। अतः माँग का भविष्यकालीन दशा का वस्तुगत मूल्यांकन करना ही माँग पूर्वानुमान है।

**कोटलर** (Kotler) ने कहा, "कंपनी का पूर्वानुमान चुनी हुई विपणन योजना और माने हुए विपणन संबंधी वातावरण पर आधारित कंपनी के विक्रय का प्रत्याशित स्तर होता है।"<sup>1</sup>

कण्डिक एवं स्टिल (Cundiff and Still) के अनुसार, "विक्रय पूर्वानुमान किसी विशिष्ट अवधि के दौरान विक्रय का एक अनुमान होता है जो प्रस्तावित विपणन योजना से संबद्ध होता है और जो अनियंत्रित शक्तियों एवं प्रतियोगी शक्तियों का एक विशेष समूह मानकर चलता है।"<sup>2</sup>

उपर्युक्त परिभाषाओं से माँग पूर्वानुमान में निहित निम्न बातें स्पष्ट होता है :

1. माँग पूर्वानुमान भविष्यकालीन विक्रय का अनुमान है।
2. यह अग्रिम आयोजन का आधार है।
3. इसका संबंध एक निश्चित अवधि से होता है।
4. पूर्वानुमान मुद्रा के रूप में या वस्तु की इकाई के रूप में होता है।

1. "The company forecast is the expected of company sales based on a choosen marketing plan and assumed marketing environment."  
—Philip Kotler.

2. "Sales forecasting is an estimate of sales during a specified period which estimate is tied to a proposed marketing plan and which assumes a particular set of uncontrollable and competitive forces."  
—Cundiff and Still.

5. यह विपणन (marketing) संबंधी योजना और आर्थिक एवं अन्य तत्त्वों पर निर्भर करता है।

6. इसका आधार भूतकालीन आंकड़े एवं परिस्थितियाँ होती हैं।

इस प्रकार, पूर्वानुमान दी हुई दशाओं के अन्तर्गत भविष्यकालीन स्थिति का एक अनुमान है। पूर्वानुमान जितना अधिक वास्तविक होगा, उतना ही अधिक प्रभावशाली निर्णय लिया जा सकेगा। फिर भी, सभी फर्म अपनी बिक्री का सही-सही पूर्वानुमान नहीं लगा पाती हैं।

## 2. मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य (Objectives of Demand Forecasting)

मांग पूर्वानुमान का उद्देश्य उसके प्रकारों के साथ परिवर्तित होता है। अतः इसका विश्लेषण दो स्तरों पर किया जाता है, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन।

### 1. अल्पकालीन मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य (Objectives of Short-run Demand Forecasting)

अल्पकालीन पूर्वानुमान सामान्यतः एक वर्ष की अवधि तक का होता है, जिसमें मौसमी ढांचे (seasonal patterns) अति महत्वपूर्ण होते हैं। साथ ही इसका संबंध फर्म की वर्तमान उत्पादन क्षमता से भी होता है। अल्पकालीन मांग पूर्वानुमान के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं :

**1. उपयुक्त उत्पादन निर्धारित करना (Determine Appropriate Production)**—अति-उत्पादन और उत्पादन और अल्प-उत्पादन योजना की समस्या से निबटने के लिए एक समुचित उत्पादन योजना आवश्यकता होती है अर्थात् उत्पादन तालिकाएं प्रत्याशित बिक्री के अनुरूप बनायीं जाएं जो पूर्वानुमान मांग के अन्तर्गत ही संभव हैं।

**2. लागतों में कमी और मालसूची नियंत्रण (Cost Reduction and Inventory Control)**—इससे कच्चे माल की बड़ी मात्रा में खरीद हो सकेगी जिससे लागत में कमी आएगी। साथ ही इस अनुमान के आधार पर फर्म की भविष्यकालीन संसाधन आवश्यकताओं को निर्धारित कर मालसूची को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे लागतों में कमी भी आएगी।

**3. उपयुक्त कीमत नीति (Appropriate Price Policy)**—बाजार मांग दशाओं के अनुरूप एक समुचित कीमत नीति तैयार करना अल्पकालीन पूर्वानुमान का प्रमुख उद्देश्य है। अर्थात् जब बाजार दशाओं का कमजोर होना प्रत्याशित हो तो कीमतों में वृद्धि को टाल दिया जाय। दूसरी ओर जब बाजार के मजबूत होने की प्रत्याशा हो तो कीमतों में कमी नहीं की जाय।

**4. विज्ञापन और विक्रय प्रोत्साहन (Advertising and Sales Promotion)**—विक्रय प्रोत्साहन संबंधी विभिन्न सार्थक प्रयास करना और विज्ञापन एवं विक्रय तकनीकों में आवश्यक सुधार के विषय में निर्णय करना भी मांग पूर्वानुमान का उद्देश्य होता है।

**5. विक्रय लक्ष्य निर्धारण (Determining Sales Targets)**—यह उपयुक्त नीति के निर्माण में सहायक होता है। बेचने वालों के लिए उचित विक्रय-लक्ष्य का निर्धारण करने और नियंत्रणों को लागू करने एवं समुचित प्रेरक (incentive) योजनाओं के निर्माण में भी यह महत्वपूर्ण भी भूमिका निभाता है।

**6. अल्पकालीन पूंजी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान (Forecasting Short-term Capital Requirements)**—चूंकि नकदी की आवश्यकता बिक्री स्तर और उत्पादन क्रियाओं पर निर्भर करती है, इसलिए मांग या पूर्वानुमान फर्म को पहले से ही युक्तिसंगत शर्तों पर पर्याप्त कोषों की व्यवस्था करने में सक्षम बनाता है।

इस प्रकार एक फर्म के बजट निर्माण में अल्पकालीन पूर्वानुमान का अत्यधिक महत्त्व है।

## 2. दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य

### (Objectives of Long-run Demand Forecasting)

दीर्घकालीन पूर्वानुमान सामान्यतः पांच से बारह वर्ष की अवधि से संबंधित होता है। फर्म दीर्घकालीन पूर्वानुमान के अन्तर्गत आश्रित चरों (Dependent variables) को प्रभावित करने वाले स्वतंत्र चरों की लोच के साथ-साथ स्वतंत्र चरों में परिवर्तन का भी पूर्वानुमान करती है। यदि मांग की प्रवृत्तियों (trends) में स्थिरता की झलक हो तो दीर्घकालीन पूर्वानुमान करना आसान होता है। अन्यथा यह बहुत कठिन होता है क्योंकि प्राकृतिक आपदाएं, युद्ध, आर्थिक उतार-चढ़ाव और सामाजिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक घटकों दीर्घकाल को अत्यधिक अनिश्चित बना देती हैं। दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान के उद्देश्य निम्न हैं :

1. **प्रचालनों के पैमाने का आयोजन (Planning for Scale of Operations)**—वर्तमान उत्पादन इकाई का विस्तार या नई इकाइयों अथवा प्लांटों की स्थापना का आयोजन दीर्घकालीन पूर्वानुमान का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए विचाराधीन वस्तुओं की दीर्घकालीन संभावित मांग का विश्लेषण आवश्यक होता है। फर्म के पास समस्त मांग की वृद्धि प्रवृत्तियों और विविध वस्तुओं पर मांग के वितरण का ज्ञान जितना अधिक होगा, उसकी प्रतियोगी क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

2. **लाभदायक निवेश (Profitable Investment)**—फर्म अपना दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय इस बात का भी ध्यान रखती है कि नए निवेशों को जोखिम उठाने से पहले लाभदायक निवेशों वाले कार्यक्षेत्रों का पता लगा लिया जाय।

3. **दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की आयोजन (Planning for Long-run Financial Requirements)**—पूंजी में वृद्धि के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। अतः दीर्घकालीन बिक्री का पूर्वानुमान दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के निर्धारण में अति महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार, दीर्घकालीन पूर्वानुमान उपयुक्त पूंजी आयोजन में सहायक होता है।

4. **मानव-शक्ति आवश्यकताओं का आयोजन (Planning for Man-power Requirements)**—दीर्घकालीन पूर्वानुमान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव-शक्ति आयोजन के लिए प्रशिक्षण और व्यक्तिगत विकास करना एवं फर्म के विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करना है चूंकि ये सभी दीर्घकालीन प्रक्रियाएं हैं, इसलिए ये दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान के आधार पर निर्धारित मानव-शक्ति आवश्यकताओं के अनुमानों के अनुसार ही काफी पहले से प्रारंभ किए जा सकते हैं।

इस प्रकार, दीर्घकालीन पूर्वानुमान कच्चा माल, मानवीय घंटे, मशीनी समय और क्षमता की बर्बादी रोकने में सहायक है। साथ ही, दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय चरों में परिवर्तन, जैसे उपभोग ढांचा, आयु-वर्ग ढांचा, जनसंख्या आदि में परिवर्तन को भी ध्यान में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त किसी विशेष वस्तु का मांग पूर्वानुमान संबंधित उद्योग के मांग पूर्वानुमान में भी सहायक होता है।

## 3. मांग पूर्वानुमान के प्रकार

### (Types of Demand Forecasting)

मांग पूर्वानुमान को हम निम्न प्रकारों के बीच बांट सकते हैं जिसका विकास व्यावसायिक फर्मों की आयोजन आवश्यकताओं के कारण हुआ है।

1. **व्यष्टि और समष्टि पूर्वानुमान (Micro and Macro Forecasting)**—मांग पूर्वानुमान व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर होता है, अर्थात् यह फर्म, उद्योग या अर्थव्यवस्था स्तर पर हो सकता है। फर्म स्तर पर मांग पूर्वानुमान प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण होता है जबकि

उद्योग स्तर पर पूर्वानुमान विभिन्न व्यापार संगठनों द्वारा किए जाते हैं। चूंकि अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं की मांग व्यावसायिक दशाओं से अत्यधिक प्रभावित होती है, इसीलिए फर्म की वस्तु का मांग पूर्वानुमान सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक क्रिया के सामान्य स्तर के पूर्वानुमान से प्रारंभ होता है।

**2. प्रतिबंधित और अप्रतिबंधित पूर्वानुमान (Conditional and Unconditional Forecasting)**—प्रतिबंधित पूर्वानुमान के अन्तर्गत मांग पर कीमत, रुचियां, फैशन जैसे स्वतंत्र चरों में जाने-पहचाने या कल्पित परिवर्तनों के संभावित प्रभाव का अनुमान किया जाता है। जबकि अप्रतिबंधित पूर्वानुमान के अन्तर्गत स्वयं चरों में परिवर्तन का ही अनुमान किया जाता है। इसमें प्रतिबंधित पूर्वानुमान के सभी जोखिम विद्यमान रहते हैं।

**3. सक्रिय और निष्क्रिय पूर्वानुमान (Active and Passive Forecasting)**—जब मांग पूर्वानुमान के अन्तर्गत नियोजित कार्यवाही और कूटनीति तैयार किए जाते हैं तो यह सक्रिय पूर्वानुमान कहलाता है। अर्थात् यदि फर्म वस्तु की गुणवत्ता, प्रयास, कीमत में परिवर्तन आदि के द्वारा पूर्वानुमान मांग प्राप्त करने का प्रयास करती है तो यह सक्रिय पूर्वानुमान का सूचक होता है। दूसरी ओर, यदि फर्म आने वाले वर्ष के लिए पूर्वानुमान मांग प्राप्त करने के लिए गत वर्षों की मांग का सहारा लेती है तो यह निष्क्रिय पूर्वानुमान का उदाहरण होगा।

**4. अल्पकालीन और दीर्घकालीन पूर्वानुमान (Short-run and Long-run Forecasting)**—मांग पूर्वानुमान करते समय एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह होता है कि किसी विशेष वस्तु के लिए किस अवधि का मांग पूर्वानुमान किया जाए। इस आधार पर इसे दो भागों में बांटा जा सकता है, अल्पकालीन और दीर्घकालीन। फिर भी, अवधि का अन्तराल एक वस्तु से दूसरी वस्तु को परिवर्तित होता है।

अल्पकालीन मांग पूर्वानुमान सामान्यतः एक महीना, तीन महीने, छः महीने या अगले एक वर्ष तक की अवधि का हो सकता है। इसके लिए कौन-सी अवधि चुनी जाएगी, यह वस्तु या व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करेगी, अर्थात् यदि उस वस्तु की मांग एक महीने से दूसरे महीने को परिवर्तित हो जाती है तो ऐसी स्थिति में एक अति अल्प अवधि का पूर्वानुमान किया जाना उपयुक्त होगा। साथ ही, अल्पकालीन मांग पूर्वानुमान सामान्यतः स्थापित वस्तुओं से संबंधित होता है।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान 5, 10 या 20 वर्ष तक की अवधि का भी हो सकता है। परंतु, प्रायः 10 वर्षों के पश्चात् भविष्य इतना अनिश्चित हो जाता है कि परियोजना अत्यधिक संदिग्ध हो जाती है। नवीन वस्तु विकास के लिए दीर्घकालीन पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है। पर्याप्त समय होने के कारण मांग पूर्वानुमान के आधार पर उत्पादन क्षमता घटाने या बढ़ाने से संबंधित निर्णय भी लिया जा सकता है। परंतु दीर्घकालीन पूर्वानुमान करते समय जनसंख्या, फैशन, रुचियों और क्रेताओं के अधिमानों, वस्तु जीवन-चक्र, तकनीक आदि पर भी अवश्य विचार किया जाना चाहिए।

## 4. मांग पूर्वानुमान का क्षेत्र (Types of Demand Forecasting)

मांग पूर्वानुमान के छः मुख्य घटक हैं जो इसके क्षेत्र को निर्धारित करते हैं। इनकी चर्चा हम नीचे कर रहे हैं।

**1. पूर्वानुमान की अवधि (Period of Forecasting)**—मांग पूर्वानुमान समय के दृष्टिकोण से अल्पकालीन या दीर्घकालीन होता है, जब मांग पूर्वानुमान की अवधि अधिक से अधिक एक वर्ष की हो तो उसे अल्पकालीन पूर्वानुमान कहा जाता है। और यदि मांग पूर्वानुमान की अवधि 5, 10, 12 या 20 वर्ष हो तो उसे दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान कहते हैं।



यह मध्यमान भी हो सकता है कि जिसके अन्तर्गत पूर्वानुमान की अवधि सामान्यतः 1 वर्ष से ऊपर और पांच वर्ष से नीचे होती है। परंतु अवधियों का यह पंचांग (Calendar) वर्गीकरण सिर्फ कामचलाऊ है। वास्तव में यह वस्तु या व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, ऊनी वस्त्र की दशा में 1 वर्ष दीर्घकालीन हो सकता है जबकि हवाई जहाज की दशा में यह अल्पकालीन होगा।

अल्पकालीन मांग पूर्वानुमान वस्तुओं के लिए किए जाते हैं। क्योंकि पूर्वानुमान वर्तमान संसाधनों के अन्तर्गत ही दिन-प्रतिदिन के प्रयासों से संबंधित होते हैं, इसलिए पूर्वानुमान करते समय मौसम के अतिरिक्त, फैशन, रुचियां आदि तत्वों का भी ध्यान रखा जाता है।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान नवीन वस्तु विकास के लिए किए जाते हैं। बैटर्सबाई (Batterby) के अनुसार, "दीर्घकालीन पूर्वानुमान वह है जो प्रमुख कूटनीति निर्णयों के लिए सूचना प्रदान करता है, यह संसाधनों की सीमाओं को बढ़ाने या घटाने से संबंधित है।" प्राकृतिक आपदाएं, युद्ध, आर्थिक उतार-चढ़ाव और सामाजिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक घटकों दीर्घकालीन को अत्यधिक अनिश्चित बना देती हैं। अतः दीर्घकालीन मांग पूर्वानुमान करते समय, इनके अतिरिक्त जनसंख्या, फैशन, रुचियों और क्रेताओं के अधिमानों, वस्तु जीवन-चक्र और तकनीक आदि पर भी विचार किया जाना आवश्यक होता है।

फर्म को मध्यकालीन पूर्वानुमान से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उसे मांग की प्रवृत्ति की जानकारी प्राप्त होती है। मध्यकालीन मांग पूर्वानुमान में सांख्यिकीय पूर्वानुमान की अपेक्षा अनुभव और कुशल निर्णय अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। यह पूर्वानुमान दीर्घकालीन पूर्वानुमानों पर आधारित नियंत्रण के लिए उपयोगी होता है।

**2. पूर्वानुमान का स्तर (Level of Forecasting)**—मांग पूर्वानुमान निम्न तीन स्तरों पर हो सकता है :

**(क) समष्टि स्तर (Macro Level)**—यहां समष्टि स्तर से अभिप्राय संपूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर से है। समष्टि स्तर पूर्वानुमान राष्ट्रीय आय या व्यय, थोक बिक्री कीमतें, और औद्योगिक उत्पादन आदि के एक उपयुक्त सूचक की सहायता से किए जाते हैं। चूंकि अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं की मांग व्यवसायिक दशाओं से अत्यधिक प्रभावित होती है, इसलिए फर्म की वस्तु की मांग पूर्वानुमान संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक क्रिया का सामान्य स्तर के पूर्वानुमान से प्रारंभ होता है।

**(ख) उद्योग स्तर (Industry Level)**—उद्योग स्तर पर मांग पूर्वानुमान फर्म को यह संकेत देता है कि आगे संपूर्ण उद्योग की मांग गतिविधियों की दिशा क्या होगी? इसके आधार पर फर्म उद्योग के शेष भाग के सापेक्ष में भविष्य के लिए अपनी एक समुचित योजना बना सकेगी। ये पूर्वानुमान उपभोक्ताओं के इरादों का सर्वेक्षण और उपभोक्ता प्रवृत्तियों के विश्लेषण पर आधारित होते हैं। उद्योग स्तर पर पूर्वानुमान विभिन्न संगठनों द्वारा किए जाते हैं।

**(ग) फर्म स्तर (Firm Level)**—फर्म स्तर पर मांग पूर्वानुमान प्रबंधकीय दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण होता है। फर्म अच्छी स्थिति में है या नहीं, अथवा बाजार में इसके भाग को कैसे बढ़ाया जाय, इन समस्याओं के समाधान में इस पूर्वानुमान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विविध-वस्तु (Multi-Product) फर्म वस्तु-श्रृंखला पूर्वानुमान (Product-line Forecasting) भी करती है जो यह निर्णय लेने में मदद करती है कि फर्म के सीमित संसाधनों के आबंधन में किस वस्तु या वस्तु समूह को प्राथमिकता दी जाय। उदाहरणार्थ, महिन्द्रा एंड महिन्द्रा कंपनी यह जानना चाहेगी कि उसे अपनी सीमित संसाधनों से ट्रैक्टर का या जीप का अधिक उत्पादन करना चाहिए।

1. "A long-term forecast is one which provides information for major strategic decisions; it is concerned with extending or reducing the limit of resources."  
—Albert Battersby.

**3. पूर्वानुमान की प्रकृति (Nature of Forecasting)**—पूर्वानुमान सामान्य या विशिष्ट उद्देश्य के लिए हो सकता है। फर्म के लिए सामान्य पूर्वानुमान तो उपयोगी होता है, परंतु इसे विशिष्ट पूर्वानुमानों में बांटकर और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है, जैसे वस्तुओं की प्रकृति, विक्रय के क्षेत्र, घरेलू और विदेशी बाजार आदि के आधार पर मांग पूर्वानुमान।

**4. स्थापित और नई वस्तुओं का पूर्वानुमान (Forecasting of Established and New Products)**—स्थापित और नई वस्तुओं के पूर्वानुमान की विधियों और समस्याओं में प्रायः भिन्नता होती है। स्थापित वस्तुओं की विक्रय प्रवृत्ति और प्रतियोगी दशायें जानी-पहचानी होती हैं जबकि नई वस्तुओं के संदर्भ में ऐसी बात नहीं होती।

**5. वस्तुओं की प्रकृति (Nature of Goods)**—वस्तुओं को प्रायः दो भागों में विभाजित किया जाता है : (i) पूंजी वस्तुएं, (ii) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं एवं गैर टिकाऊ वस्तुएं। इनमें प्रत्येक के लिए मांग का पथक ढांचा होता है। उपभोक्ता मांग आय पर अधिक निर्भर करती है जबकि पूंजीगत या उत्पादक वस्तुओं की मांग व्युत्क्रम (derived) मांग होने के कारण अपेक्षाकृत तेजी से घटती बढ़ती है।

**6. अन्य घटक (Other Factors)**—मांग पूर्वानुमान के अंतर्गत वस्तु और बाजार विशेष से संबंधित कुछ विशिष्ट घटक भी होते हैं जो इसके क्षेत्र को निर्धारित करते हैं। इन पर विचार किया जाना आवश्यक होता है। मांग पूर्वानुमान करते समय प्रतियोगिता की प्रकृति, जोखिम और अनिश्चतता का प्रभाव, इसके फलस्वरूप पूर्वानुमान में अशुद्धता की संभावना आदि का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। इसके साथ ही कई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक घटक भी मांग पूर्वानुमान को प्रभावित करते हैं, जैसे वस्त्र उद्योग में क्षेत्रीय रीति-रिवाज। उपभोक्ता की भविष्य के विषय में सोच, व्यक्तिगत समृद्धि और वस्तुओं एवं ब्रांडों के विषय में उनके विचार महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक घटक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त घटक मांग पूर्वानुमान के क्षेत्र को दर्शाते हैं।

## **5. अच्छी पूर्वानुमान विधि की कसौटियां (Criteria of A Good Forecasting Technique)**

एक अच्छी पूर्वानुमान विधि की निम्न कसौटियां हैं :

**1. यथार्थता (Accuracy)**—प्रबंधन के दोनों महत्त्वपूर्ण कार्य, निर्णय-निर्माण और अग्रिम आयोजन, यथार्थ मांग के पूर्वानुमान पर आधारित होते हैं। सेवेज और स्मोल (Savage and Small) के अनुसार, "पूर्वानुमान तकनीकी के व्यावहारिक प्रयोग में, सांख्यिकीय सिद्धांत के उत्तम तत्त्वों पर केन्द्रित होने की अपेक्षा भविष्य सूचक यथार्थता अन्ततः अधिक महत्त्वपूर्ण है।" पूर्वानुमान विधि की यथार्थता पर विचार करते समय पिछले पूर्वानुमानों का परीक्षण वर्तमान उपलब्धियों और वर्तमान पूर्वानुमानों का परीक्षण, भविष्य की उपलब्धियों से किया जाना चाहिए। इस प्रकार पूर्वानुमानों की यथार्थता का माप दो तरह से किया जा सकता है : (1) पूर्वानुमान और वास्तविक उपलब्धियों के बीच विलचनों (deviations) की सीमा, और (2) दिशात्मक (directional) परिवर्तनों के पूर्वानुमानों में सफलता का स्तर।

**2. सरलता (Simplicity)**—सरलता एक अच्छी पूर्वानुमान विधि की महत्त्वपूर्ण शर्त है। पूर्वानुमान विधि ऐसी होनी चाहिए जिसे प्रबंधन आसानी से समझ सके और जिस विधि से उसका विश्वास हो। पूर्वानुमान को सरलता व्यापक बनाती है। साथ ही, भूत और वर्तमान तथा वर्तमान और भविष्य के बीच निरंतर मेल से पूर्वानुमान दीर्घकालिक होता है।

**3. व्यापकता (Comprehensibility)**—प्रबंधन उचित परिणाम तभी प्राप्त कर सकता है जब उसने प्रयोग की जाने वाली पूर्वानुमान विधि को अच्छी तरह समझा हो। जैसा कि प्रो० जोल डीन

(Joel Dean) ने कहा है, "व्यापकता पूर्वानुमान विधि की यथार्थता बढ़ाती है"। अतः पूर्वानुमान विधियों, उनकी मान्यताओं और संभावनाओं की अच्छी जानकारी आवश्यक है क्योंकि एक अच्छा मांग पूर्वानुमान तभी कहा जाएगा जब वह विचलनों और मोड़ बिन्दुओं की भी भविष्यवाणी करे ताकि पूर्वानुमान अधिक प्रभावी हो।

**4. मितव्ययिता (Economy)**—एक अच्छी पूर्वानुमान विधि में 'न्यूनतम लागत और अधिकतम लाभ' का गुण अवश्य होना चाहिए। अर्थात् पूर्वानुमान की लागत और उसके लाभ की तुलना अवश्य की जानी चाहिए। इसकी प्रचालन लागत (operational cost) कम से कम हो। यदि कोई विशेष मांग पूर्वानुमान फर्म के लिए महत्वपूर्ण नहीं है तो ऊंची लागत पर अधिक यथार्थता प्राप्त करने को कोई अर्थ नहीं है।

**5. लोचशीलता (Flexibility)**—विश्व गतिशील है। अतः मांग पूर्वानुमान विधि में भी परिवर्तनों को शामिल करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि पूर्वानुमान विधि में अनुकूलनशीलता हो, तभी वह दीर्घकालिक हो सकती है। जैसा कि कहा भी जाता है, लोचशीलता व्यापकता का पर्याय होता है।

**6. उपलब्धता (Availability)**—किसी तकनीक द्वारा निर्धारित लक्ष्य तक तभी पहुंचा जा सकता है जब तक कि उसके लिए आवश्यक आंकड़ों की उपलब्धता आसान न हो। तकनीक ऐसी होनी चाहिए जो शीघ्र और अर्थपूर्ण परिणाम उपलब्ध करा सके।

**7. सामयिकता (Timeliness)**—एक अच्छे पूर्वानुमान के लिए उसका सामयिक (समय पर) होना अनिवार्य है। अर्थात् प्रयोग की जाने वाली तकनीक ऐसी हो जो शीघ्रता से अर्थपूर्ण परिणाम उपलब्ध करा सके। यदि तकनीक के अन्तर्गत काफी समय लग रहा है तो स्वाभाविक ही है कि निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में विलम्ब होगा जिससे फर्म को अत्यधिक हानि उठानी पड़ेगी।

इस प्रकार उपर्युक्त मानदंडों को पूरा करने पर ही किसी तकनीक को अच्छी तकनीक कहा जा सकता है।

## 6. मांग पूर्वानुमान का महत्त्व (Importance of Demand Forecasting)

किसी विशेष वस्तु की मांग कब और कितनी होगी ? आधुनिक व्यवसाय की यह एक प्रमुख समस्या है। जिसकी जानकारी मांग पूर्वानुमान से ही संभव है। इस प्रकार मांग पूर्वानुमान, फर्म को समय पर भविष्य की जोखिमों और अनिश्चितताओं से सावधान करता है। इसी पूर्वानुमान पर उसका निर्णय निर्माण और पहले से आयोजन निर्भर करता है। अर्थात् व्यवसाय की सफलता ही मांग पूर्वानुमान की यथार्थता और सफलता पर निर्भर करती है।

मांग पूर्वानुमान का महत्त्व निम्न पर निर्भर करता है :

**1. उत्पादन (Production)**—फर्म को उत्पादन संबंधी निर्णय सही-सही और समय पर लेना पड़ता है जो मांग पूर्वानुमान के आधार पर ही संभव है। उत्पादन के लिए कई घटकों की सेवाओं की आवश्यकता होती है, जैसे मानव-शक्ति, वित्त आदि जिन्हें व्यवस्थित करना पड़ता है। अतः मांग पूर्वानुमान उत्पादन संबंधी निर्णय और आयोजन के लिए अति महत्वपूर्ण होता है। उत्पादन समय पर और मांग के अनुसार बिक जाता है। साथ ही फर्म के सामने अति उत्पादन और अल्प उत्पादन की कोई समस्या नहीं रहती है।

**2. सामान्य नियंत्रण (General Control)**—एक अच्छी तरह सोची-समझी लागत और लाभ बजट तैयार कर पाने की स्थिति में ही किसी व्यवसायी का फर्म पर अच्छा नियंत्रण कर सकता है। इसके लिए मांग पूर्वानुमान का सहारा आवश्यक हो जाता है।

**3. मालसूची नियंत्रण (Inventory Control)**—फर्म की सफलता के लिए उत्पादन-प्रक्रिया को विभिन्न आवश्यकताओं में मालसूचियों, कच्चे मालों, कल पुर्जों और वस्तुओं पर उचित नियंत्रण आवश्यक होता है। फर्म अच्छी स्थिति में तभी हो सकती है जब भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान ठीक-ठीक ढंग से हुआ हो जिसके लिए मांग पूर्वानुमान आवश्यक है।

**4. बिक्री प्रोत्साहन (Sales Promotion)**—मांग पूर्वानुमान बिक्री प्रोत्साहन के लिए आधार तैयार करता है जो फर्म के विकास के लिए अति आवश्यक है। फर्म सार्थक बिक्री प्रोत्साहन प्रयास तभी कर पाएगी जब उसने मांग का पूर्वानुमान ठीक-ठीक किया हो।

**5. निवेश निर्णय (Investment Decisions)**—फर्म की वृद्धि दीर्घकालीन निवेश निर्णयों पर निर्भर करती है। जबकि फर्म की वृद्धि दर और दीर्घकालिक निवेश कार्यक्रमों का निर्धारण एक समुचित मांग पूर्वानुमानों के आधार पर ही संभव है।

**6. व्यावसायिक अनिश्चितता (Business Uncertainty)**—व्यवसाय जगत जोखिमों और अनिश्चितताओं से भरा होता है। मांग पूर्वानुमान का उद्देश्य प्रबंधन के सामने फैली इन अनिश्चितताओं को कम करना, और उन्हें उचित समय पर आवश्यक मात्रा उत्पादित करने के योग्य बनाना और पहले से ही उत्पादन के विभिन्न साधनों को भली-भांति व्यवस्थित करना होता है।

**7. मौसमी वस्तुएं (Seasonal Products)**—कुछ उद्योग ऐसे भी हैं जहां मौसम प्रमुख भूमिका निभाता है, जैसे ऊनी वस्त्र, पंखा, कूलर आदि। यहां पर मांग पूर्वानुमान का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि एक ओर अल्प उत्पादन होने पर फर्म को मौसम का सर्वाधिक लाभ नहीं मिल पाएगा, जबकि दूसरी ओर अति उत्पादन होने पर उसमें लगे साधनों की बर्बादी के कारण उसे हानि होगी।

**8. अन्य घटक (Other Factors)**—इसके अतिरिक्त पूंजी प्रबंध, श्रम प्रबंध आदि क्षेत्रों में भी मांग पूर्वानुमान की महत्वपूर्ण भूमिका होता है। साथ ही, आधुनिक युग में उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है जिससे मांग पूर्वानुमान और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

**निष्कर्ष (Conclusion)**—इस प्रकार, इस गतिशील विश्व में भावी परिवर्तनों का अनुमान नहीं करना फर्म की अदूरदर्शिता को प्रकट करेगा। अतः फर्म के पास मांग पूर्वानुमान करने या न करने के बीच कोई विकल्प नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि मांग पूर्वानुमान किस विधि से किया जाए, इसे कौन करे, और उसमें कौन-कौन से संसाधन लगाए जाएं ?

## 7. मांग पूर्वानुमान की सीमाएं (Limitations of Demand Forecasting)

मांग पूर्वानुमान की निम्न सीमाएं हैं :-

**1. अनिश्चितता (Uncertainty)**—चूंकि भविष्य अनिश्चित होता है, इसलिए कोई भी पूर्वानुमान शत-प्रतिशत सही नहीं हो सकता है। प्रत्येक फर्म इसकी आवश्यकता समझती है। फिर भी, कोई फर्म सही-सही मांग पूर्वानुमान नहीं कर सकती।

**2. आंकड़ों का अभाव (Lack of Data)**—मांग पूर्वानुमान भूतकालीन आंकड़ों के आधार पर किया जाता है, जबकि हम देखते हैं कि फर्म के पास भूतकालीन विक्रय आंकड़ों का अभाव होता है। आवश्यकता के अनुसार इन आंकड़ों को एकत्रित करना एक कठिन कार्य है।

**3. अत्यधिक लागत (Heavy Cost)**—मांग पूर्वानुमान की समुचित प्रक्रिया में अत्यधिक लागत आती है जिसे वहन करना प्रत्येक फर्म के वश की बात नहीं होती। परिणामस्वरूप, पूर्वानुमान में यथार्थता का अभाव हो जाता है।

4. **फैशन (Fashion)**—फैशन में परिवर्तन विकास का स्वाभाविक लक्षण है। सभ्यता का विकास, विज्ञापन, संचार और परिवहन का विकास, मॉडलिंग आदि के कारण फैशन परिवर्तित होते रहते हैं। परंतु प्रश्न यह है कि वर्तमान फैशन कब तक रहेगा ? इसे पता लगाना अति कठिन कार्य है।

5. **विशेषज्ञों का अभाव (Scarcity of Experts)**—मांग पूर्वानुमान का काम कोई संबंधित विशेषज्ञ ही कर सकता है, जबकि ऐसे विशेषज्ञों का अभाव पाया जाता है।

6. **सामाजिक घटक (Social Factors)**—हमारा समाज तेजी से बदल रहा है। सामाजिक नियंत्रण और रीति-रिवाज बदल रहे हैं। अतः वस्तुओं की मांग बदल रही है। उदाहरणार्थ, धोती और साड़ी का स्थान पश्चिम शैली के वस्त्र ले रहे हैं। ऐसी स्थिति में यथार्थ मांग पूर्वानुमान से भिन्न होती है।

7. **मनोवैज्ञानिक घटक (Psychological Factors)**—उपभोक्ता की भविष्य के विषय में क्या सोच होगी ? वस्तुओं और ब्रांडों के विषय में उनके क्या विचार होंगे ? ये सभी महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक सीमाएं हैं। इसके अतिरिक्त, युद्ध की आशंका, आर्थिक नीति में परिवर्तन आदि से भी उनकी मनोवृत्ति में बदलाव आ जाता है। ऐसी स्थिति में यथार्थ मांग का पूर्वानुमान करना, वास्तव में, एक कठिन कार्य है।

इस प्रकार मांग पूर्वानुमान की उपर्युक्त सीमाएं हैं। फिर भी, प्रत्येक फर्म को यथासंगत यथार्थ मांग पूर्वानुमान करने की चेष्टा करनी चाहिए।

## 8. नवीन वस्तुओं के लिए मांग पूर्वानुमान (Demand Forecasting For New Products)

नवीन वस्तुएं अर्थव्यवस्था और कंपनी दोनों के लिए नवीन होती हैं। अतः वस्तु की आर्थिक और प्रतियोगी विशेषताओं का गहन अध्ययन ही हमें यथार्थ मांग पूर्वानुमान तक पहुंचा सकता है। मांग पूर्वानुमान की विधियां विशेष वस्तु की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए। प्रश्न यह है कि नवीन वस्तुओं की मांग का पूर्वानुमान कैसे किया जाय, जिनके लिए भूतकालीन आंकड़े भी उपलब्ध नहीं होते हैं। इसके लिए निम्न धाराएं अपनाई जा सकती हैं :

1. **विकासात्मक धारणा (Evolutionary Approach)**—विकासात्मक धारणा यह मानकर चलती है कि नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु का विकसित रूप है। अतः इस धारणा के अनुसार, नवीन वस्तु की मांग पूर्वानुमान करते समय पुरानी वस्तु की चालू मांग दशाओं पर अवश्य विचार करना चाहिए। उदाहरणार्थ, डीजल एम्बेसैडर कार की मांग में वृद्धि होती है, जहां पेट्रोल एम्बेसैडर कार की मांग में कमी हो जाती है। इस प्रकार यह धारणा तभी उपयोगी होगी जब नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु का निकटतम स्थानापन्न हो। इसके अन्तर्गत सबसे बड़ी समस्या यह अनुमान करना है कि नव रूपान्तरण का मांग ढांचा पुराने ढांचे की वस्तु के ढांचे से अलग कैसे होगा।

2. **स्थानापन्न मांग धारणा (Substitute Approach)**—इस धारणा के अनुसार नवीन वस्तु की मांग का विश्लेषण कुछ वर्तमान पुरानी वस्तुओं के स्थानापन्न के रूप में किया जाना चाहिए, क्योंकि अधिकांश नवीन वस्तुएं स्थानापन्न ही होती हैं। उदाहरणार्थ, रंगीन टी०वी०, श्याम-श्वेत टी०वी० की मांग को किस सीमा तक प्रभावित करेगा ? इस प्रकार, स्थानापन्न धारणा के द्वारा नवीन वस्तु का मांग पूर्वानुमान आसानी से किया जा सकता है। परंतु कभी-कभी मांग पूर्वानुमान वर्तमान पुरानी वस्तु के संभावित बाजार की त्रुटिपूर्ण ऊपरी सीमा निर्धारित करता है। आगे, कई व्यावहारिक समस्याओं के लिए प्रतिस्थापन की ऊपरी सीमा नहीं, बल्कि यह महत्त्वपूर्ण है कि नवीन वस्तु वर्तमान पुरानी वस्तु को कितनी जल्दी से विस्थापित (displaced) कर देगी। इसके

अतिरिक्त, कई नवीन वस्तुओं के विभिन्न-उपयोग होते हैं और प्रत्येक एक पथक् स्थानापन्नता की समस्या उपस्थित करता है।

**3. वृद्धि वक्र धारणा (Growth Curve Approach)**—यह धारणा नवीन वस्तुओं की मांग पूर्वानुमान का विश्लेषण स्थापित वस्तुओं के वृद्धि ढांचे के आधार पर करता है। उदाहरणार्थ, हॉकिन्स प्रेश कुकर बाजार में उपयोग किए जाते हैं। अब यदि वह नवीन वस्तु के रूप में जूसर-मिक्सर-ग्राइंडर प्रस्तुत करना चाहें तो इसके मांग पूर्वानुमान के लिए प्रेशर कुकर की औसत मांग एक आधार प्रस्तुत कर सकती है। यद्यपि यह एक अच्छी धारणा है, फिर भी उसकी व्यावहार्यता सीमित है। यह मुख्यतः मांग प्रोजेक्शन की बाद की अवस्थाओं में उपयोगी होती है।

**4. विचार मतदान धारणा (Opinion Polling Approach)**—यह विधि क्रेताओं की संभावित प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करती है। इस धारणा के अन्तर्गत नवीन वस्तुओं का मांग पूर्वानुमान अंतिम क्रेताओं से प्रत्यक्ष छान-बीन के आधार पर करना चाहिए। इसके लिए पूरे पैमाने पर नमूनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, नवीन औद्योगिक वस्तुओं के मांग पूर्वानुमान के लिए कुछ चुने हुए ग्राहकों को अपनी कंपनी के इंजीनियर के पास विशेष विवरण के साथ भेजकर आवश्यकत आंकड़े एकत्रित करने चाहिए। यद्यपि इस विधि का व्यापक प्रयोग होता है, फिर भी इसके अन्तर्गत सैम्पलिंग, वास्तविक इरादों की जांच, विविध वैकल्पिक चुनाव की जटिलता आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

**5. विक्रय अनुभव धारणा (Sales Experience Approach)**—इस धारणा के अन्तर्गत एक सैम्पल बाजार का चुनाव किया जाता है। आगे, इस बाजार में प्रत्यक्ष डाक या चुनिंदा वितरक स्त्रोतों द्वारा बिक्री के लिए नवीन वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है। सैम्पल बाजार में हुए बिक्री के आधार पर नवीन वस्तुओं का कुल मांग पूर्वानुमान किया जाता है। समस्या यह निर्धारित करने में है कि सैम्पल बाजार की अपरिपक्वता और उसकी खास विशेषताओं के लिए कौन-सी छूट प्रदान की जाय। इसके अतिरिक्त यह विधि छान-बीन की प्रक्रिया में भी देर लगाती है।

**6. प्रतिनिधिमूलक धारणा (Vicarious Approach)**—इस पूर्वानुमान का आधार विशेषज्ञ डीलरों द्वारा दी गई रिपोर्ट होती है। इन डीलरों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से नवीन वस्तु के विषय में उपभोक्ताओं की प्रतिक्रियाओं का सर्वेक्षण कर एक यथार्थ मूल्यांकन किया जाता है। चूंकि ये डीलर उपभोक्ता और उत्पादक दोनों से जुड़े होते हैं, इसलिए उन्हें उपभोक्ता की आवश्यकताओं और वैकल्पिक अवसरों के विषय में अच्छी जानकारी होती है। यद्यपि यह एक सरल विधि है, परंतु इसमें शुद्धता का अभाव पाया जाता है। इस विधि की सफलता डीलरों की यह अनुमान करने की योग्यता पर निर्भर करती है कि क्रेता क्या करने वाला है। अक्सर, ये डीलर अनमने ढंग से सूचना देते हैं अतः इन डीलरों के माध्यम से प्राप्त रिपोर्ट की फिर से एक बार जांच करनी चाहिए।

## जीवन चक्र खण्डीकरण विश्लेषण (Life Cycle Segmentation Analysis)

नवीन वस्तुओं की भविष्य मांग का पूर्वानुमान करने के लिए जीवन चक्र खण्डित विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। यह विश्लेषण वस्तु का जीवन चक्र दर्शाता है।

प्रत्येक वस्तु का एक जीवन चक्र होता है। इसके अंतर्गत पांच अवस्थायें आती हैं। प्रत्येक अवस्था के लिए अलग-अलग व्यावसायिक विधियां होती हैं। अतः यह जानना आवश्यक है कि कोई वस्तु जीवन-चक्र की किसी विशेष अवस्था में कब होगी। आगे, कुल बाजार भी खण्डों में होता है। अतः एक ही वस्तु का जीवन चक्र विभिन्न खण्डों में भिन्न-भिन्न दरों पर चलता है। इसलिए विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न विधियां अपनाई जानी चाहिए। जीवन चक्र की निम्न अवस्थाएं हैं :

**I. परिचय (Introduction)**—इस अवस्था में गुणवत्ता का बाजार प्रभाव अत्यधिक होता है। उसके बाद विज्ञापन का स्थान आता है। इस अवस्था में कीमतों और सेवाओं का प्रभाव बहुत कम होता है। अतः अधिक बिक्री के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं पर जोर देना चाहिए।

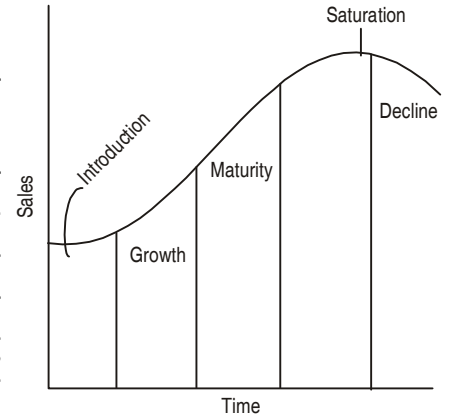
**II. बुद्धि (Growth)**—इस अवस्था में विज्ञापन और प्रचार जैसे बिक्री बढ़ाने वाले प्रयासों का प्रबल प्रभाव होता है।

**III. परिपक्वता (Maturity)**—इस अवस्था में गुणवत्ता, विज्ञापन और सेवा की अपेक्षा कीमत अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि बाजार में प्रतियोगी प्रवेश कर चुके होते हैं। अतः अब कीमत लोच अधिक होती है।

**IV. चरम सीमा (Saturation)**—इस अवस्था अंतर्गत गुणवत्ता में वस्तु विभेदीकरण, विज्ञापन, पैकेजिंग अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। चूंकि कीमत पहले ही कम हो चुकी होती है, इसलिए कीमत अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है।

**V. गिरावट (Decline)**—इस अवस्था में वस्तु का नवीन उपयोग, विज्ञापन आदि का विशेष महत्व होता है। यहां कीमत का बहुत कम प्रभाव होता है। जबकि गुणवत्ता और सेवा का इतना महत्व नहीं होता है।

इस प्रकार, वस्तु के जीवन-चक्र की उपर्युक्त अवस्थाएं होती हैं जिन्हें चित्र 1 में दर्शाया गया है। जहां समानांतर अक्ष पर समय और अनुलंब अक्ष पर वस्तु की बिक्री की मात्राओं को लिया गया है। इसमें 5 बिक्री वक्र है। यह वक्र दर्शाता है कि **प्रथम**, अवस्था में जब वस्तु का बाजार में परिचय दिया जाता है तो बिक्री धीरे-धीरे बढ़ती है। इसके पश्चात् **दूसरी और तीसरी** अवस्थाओं में वस्तु निरंतर वृद्धि करती हुई परिपक्व होकर बाजार में अपनी स्थिति को पूर्णतया स्थापित कर लेती है। **चौथी** अवस्था में यह बिक्री की चरम सीमा तक पहुंच जाती है। परंतु **अन्तिम** अवस्था में इसकी बिक्री में कमी होनी प्रारंभ हो जाती है।



चित्र 1.

जीवन चक्र खंडीकरण विश्लेषण मांग पूर्वानुमान के लिए बहुत ही उपयोगी है। बाजार के खंडीकरण द्वारा एक या दो अवस्थाओं के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त विधि का चुनाव किया जा सकता है। साथ ही यदि प्रत्येक खंड में कुल संभावना, कुल बाजार संभावना और वर्तमान खंड के परिपक्व होने की गति और सीमा की जानकारी हो तो शेष, खंडों के लिए भी उसी तरह के पूर्वानुमान किए जा सकते हैं। अतः कुल बाजार के लिए समस्त मांग पूर्वानुमान किया जा सकता है।

## निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार, नवीन वस्तुओं के मांग पूर्वानुमान की उपर्युक्त विधियां हैं जिनका प्रयोग एक दूसरे के पूरक के रूप में होना चाहिए। परंतु ये विधियां आपस में निरपेक्ष नहीं हैं। प्रायः इनमें से कई विधियों का संयोग पूरक के रूप में आवश्यक हो जाता है ताकि क्रॉस परीक्षण (cross checking) किया जा सकें। जैसा कि प्रो० जोल डीन ने कहा, "उनमें से कई का संयोग प्रायः वांछनीय होता है ताकि वे एक दूसरे के पूरक हो सकें।" इसके अतिरिक्त, नवीन वस्तुओं की मांग पूर्वानुमान के लिए स्थापित वस्तुओं की मांग पूर्वानुमान विधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

# अध्याय 5

## माँग पूर्वानुमान की विधियाँ

### DEMAND FORECASTING METHOD

कोई भी व्यक्ति जो किसी व्यवसाय में लगा हुआ है या प्रत्येक मनुष्य की अपने व्यवसायिक कार्य के लिए जोखिम तथा अनिश्चतता का सामना तो करना पड़ता है। इन जोखिम व अनिश्चितताओं के कारण ही प्रत्येक व्यवसायी को पूर्वानुमान लगाना पड़ता है। और व्यवसायिक नियोजन एवं निर्णय के लिए पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है। और व्यावसायिक पूर्वानुमानों में माँग पूर्वानुमान सबसे महत्वपूर्ण है। एक व्यवसायी द्वारा अपना काम शुरू करने से पहले यह पूर्वानुमान लगाना पड़ता है कि जो वस्तु वह तैयार कर रहा है उसकी माँग क्या होगी।

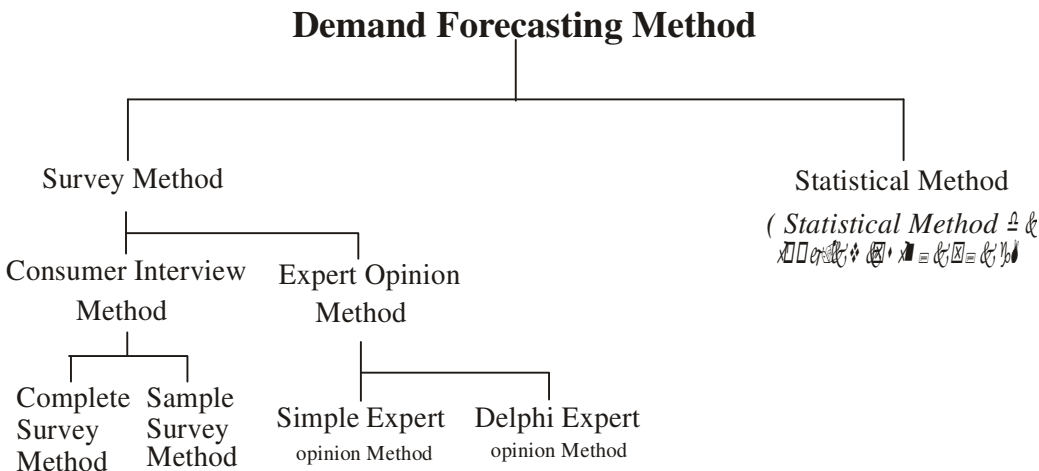
**Demand Forecasting**—माँग पूर्वानुमान से अभिप्राय है कि भविष्य में सम्भावित माँग की मात्रा तथा कीमत का अनुमान लगाना है।

एक व्यवसायी को किन-किन बातों का पूर्वानुमान होना चाहिए ताकि वह भविष्य में लाभ प्राप्त कर सके इसके लिए व्यवसायी निम्नलिखित बातों का पूर्वानुमान लगाना आवश्यक है।

1. कच्चा माल उपयुक्त मात्रा में है या नहीं।
2. मशीन मजदूर, प्रशासनिक संगठन ठीक है या नहीं।
3. विज्ञापन आदि कहाँ तक किए जाए।
4. पूंजी बजटन कैसा होना चाहिए आदि।

माँग का पूर्वानुमान लगाने के लिए हम कुछ विधियों का प्रयोग करते हैं। जिनसे यह ज्ञात किया जा सकता है कि भविष्य में लाभ होगा या नहीं माँग का पूर्वानुमान लगाने के लिए मुख्य रूप से दो विधियाँ हैं जो निम्न हैं :-

2. सेल्समैन माँग पर प्रभाव डालने वाले आर्थिक तत्त्वों से अपरिचित होते हैं इसलिए गलत अनुमान लगा सकते हैं।





- (1) Survey Method
- (2) Statistical Method

Survey Method के निम्नलिखित दो प्रकार हैं :-

- (i) Consumer Interview Method
- (ii) Expert Opinion Method

Consumer Interview Method भी दो प्रकार का होता है।

**गणना**

- (A) Complete Enumeration Method
- (B) Sample Survey Method

**(A) Complete Enumeration Method**—इस विधि के अनुसार एक व्यवसायी की उपभोक्ताओं के विषय में जानकारी प्राप्त करनी होती है और यह भी जानना पड़ता है कि उपभोक्ताओं की संख्या कितनी है। ताकि वह जो व्यवसाय शुरू कर रहे हो उसमें अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। चाहे उसे जानकारी प्राप्त करने में कितना ही व्यर्थ न खर्च करना पड़े।

इसके बाद एक व्यवसायी को मांग का पूर्वानुमान लगाना पड़ता है जो एक व्यवसाय शुरू करने से पहले सबसे जरूरी होता है।

एक व्यवसायी को हर उपभोक्ता के पास जाकर यह पूछना होता है कि हमारी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर आपकी मांगे क्या होगी। इस प्रकार व्यवसायी कुल मांग का पता करता है। जैसे

$$DM = (d_1 + d_2 + d_3 + d_4 + \dots + d_n)$$

इस प्रकार एक व्यवसायी सभी उपभोक्ताओं की मांगों को जोड़कर कुल मांग का पूर्वानुमान लगाता है। ताकि उसके व्यवसाय में लाभ हो।

**विशेषताएं :-**

1. बिल्कुल सही जानकारी मिलती है।
2. सही निर्णय लेने में सहायक होती है।
3. प्रत्येक उपभोक्ता की जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक पैसे की जरूरत होती है।
4. कीमत तय करने में आसानी होती है।
5. मांग का पूर्वानुमान सही लगाया जा सकता है।

**आलोचनाएं :-**

1. **अधिक खर्च** : इस विधि के द्वारा जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक धन की जरूरत होती है। केवल मांग के पूर्वानुमान के लिए अधिक धन खर्च करना उपयुक्त नहीं है।
2. समय के साथ उपभोक्ताओं का Trend बदलता है। स्वभाव, फैशन, रुचि आदि भी बदलते रहते हैं।
3. समय बहुत लगता है।
4. बड़े-बड़े शहरों में असम्भव है।
5. सभी उपभोक्ताओं का पता नहीं चलता और न ही उपभोक्ता सही जानकारी देता है।
6. आर्थिक विधि नहीं है।

**(B) Sample Survey Method** : इस विधि के द्वारा एक व्यवसायी को यह जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है कि उनकी वस्तु की मांग क्या है और कितने उपभोक्ता उस वस्तु को खरीदना चाहते

## UNIT—II

### अध्याय 6

## लागत की विभिन्न धारणायें

### VARIOUS CONCEPT OF COST

#### 1. प्रस्तावना

#### (Introduction)

फर्म की लागत उसकी पूर्ति को निर्धारित करती है। पूर्ति और मांग द्वारा कीमत निर्धारित होती है। कीमत निर्धारण की प्रक्रिया और पूर्ति की शक्तियों को समझने के लिए हमें लागत की प्रकृति को समझना होगा। इस अध्याय में हम लागतों की कुछ महत्त्वपूर्ण धारणाओं, लागतों के परम्परागत और आधुनिक सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

#### 2. लागतों की धारणाएं

#### (Concepts of Costs)

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में फर्म की लागतों में निम्नलिखित धारणाओं का अध्ययन किया जाता है।

#### 1. उत्पादन लागतें (Production Costs)

उत्पादन की प्रक्रिया में कई स्थिर और परिवर्तनशील साधन लगाने पड़ते हैं। इन साधनों को किसी कीमत पर प्राप्त किया जा सकता है। उत्पादन के इन साधनों पर किए गए व्यय को ही उत्पादन की लागतें कहते हैं।

फर्म द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन के साधनों पर किया गया कुल व्यय मुद्रा लागतें (Money Costs) कहलाता है इसके अन्तर्गत निम्नलिखित खर्चें शामिल होते हैं : (i) कच्चे माल की लागत; (ii) मजदूरी; (iii) मशीनों और उपकरणों पर व्यय; (iv) बिजली व ईंधन पर व्यय; (v) मशीनों, मकानों और ऐसी अन्य पूंजीगत वस्तुओं की घिसावट; (vi) पूंजी पर ब्याज; (vii) उद्यमियों का सामान्य लाभ; (viii) कर; (ix) बीमा प्रीमियम; (x) पैकिंग; और (xii) परिवहन आदि पर व्यय।

कुल मुद्रा लागतें दो प्रकार की होती हैं : स्पष्ट (Explicit) और निहित (Implicit); जिनकी व्याख्या निम्नलिखित है :-

#### स्पष्ट लागतें (Explicit Costs)

स्पष्ट लागतें व वास्तविक खर्चें हैं जो एक फर्म बाहरी व्यक्तियों से वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदने के लिए करती हैं। प्रो० स्लोमैन के शब्दों में "साधनों के बाहरी पूर्तिकर्ताओं को किए जाने वाले भुगतानों को स्पष्ट लागतें कहते हैं।" इनमें मजदूरी और वेतन, कच्चा माल, बिजली, ईंधन, विज्ञापन, परिवहन, कर, ब्याज, किराया आदि पर व्यय शामिल होते हैं। इनको लेखा या खाता लागतें (Accounting or Book Costs), वास्तविक लागतें (Real Costs) या निरपेक्ष लागतें (Absolute Costs) भी कहते हैं।

## निहित लागतें (Implicit Costs)

निहित लागतें उद्यमी द्वारा अपने संसाधनों और सेवाओं का आरोपित मूल्य है। \*प्रो० सलवाटोर के अनुसार, "अपनी उत्पादन प्रक्रिया में फर्म द्वारा किए गए स्वामित्व साधनों का मूल्य निहित लागतें हैं।" दूसरे शब्दों में, एक उद्यमी द्वारा स्वयं लागत नए (Self-employed) और स्वयं-स्वामित्व (self owned) संसाधन अपने सबसे बढ़िया वैकल्पिक प्रयोग में जो कमा सकते हैं, वे उसकी निहित लागतें हैं। इस प्रकार निहित लागत का संबंध किस विकल्प के त्याग से है (It involves a sacrifice of some alternative)। उदाहरणार्थ, एक उद्यमी वास्तव में जो मजदूरी देता है, कच्चे माल के लिए व्यय करता है, दूसरों से रुपया उधार लेने पर ब्याज देता है, बिल्डिंग का किराया देता है, स्पष्ट लागतें हैं। परन्तु यदि वह अपनी पूंजी, अपनी बिल्डिंग और अपनी सेवाएं आदि अपनी फर्म में लगाता है तो उनके आरोपित मूल्य (imputed values) निहित लागतें होंगी। ऐसा इसलिए कि यदि वह इन्हें अपनी फर्म में न लगाकर किसी अन्य वैकल्पिक प्रयोग (alternative use) से जो वेतन, ब्याज, किराया आदि प्राप्त कर सकता था, वही उसकी फर्म की निहित लागतें हैं। ये लागतें किसी बाहरी पक्ष को मुद्रा के प्रत्यक्ष भुगतान से संबंधित नहीं हैं। (These costs do not involve a direct payment to outside party)। इनका संबंध साधनों द्वारा उनके श्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से अर्जित की जा सकने वाली कीमत या आय से है। (They involve what factors could earn as price or income in their best alternative use)। निहित लागतें निम्न होती हैं :

- (i) स्वयं उद्यमी द्वारा किए गए श्रम की मजदूरी;
  - (ii) उसकी अपनी पूंजी व्यवसाय में लगाकर अलग से ब्याज न लेना;
  - (iii) अपनी जमीन का किराया नहीं लेना;
  - (iv) उद्यमी का सामान्य लाभ;
  - (v) मूल्य घटाव;
- ये स्वयं प्राप्त होने वाले भुगतान होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट लागतें लाभ और हानि के खाते की गणना में महत्वपूर्ण होती हैं। जबकि आर्थिक निर्णय निर्माण के लिए फर्म स्पष्ट लागतों के साथ-साथ निहित लागतों पर भी विचार करती है।

## 2. ऐतिहासिक और प्रतिस्थापन लागतें (Historical and Replacement Costs)

किसी परिसंपत्ति की ऐतिहासिक लागत उस परिसंपत्ति को मूल रूप से प्राप्त करते समय आने वाली वास्तविक लागत है। जबकि प्रतिस्थापन लागत वह लागत है जो उस परिसंपत्ति को खरीदते समय उठाने पड़ेगी। इन दोनों धारणाओं में अन्तर समय अन्तराल में कीमत परिवर्तनों के कारण होता है। जैसे विस्फीतिकारी स्थितियों में प्रतिस्थापन लागत संबंधित ऐतिहासिक लागत से अधिक होगी जबकि विस्फीतिकारी स्थितियों में इसके विपरीत स्थिति होगी। प्रबंधकीय निर्णय-निर्माण में ऐतिहासिक लागत की अपेक्षा प्रतिस्थापन लागत अधिक उपयुक्त होती है। उदाहरणार्थ, मान लिया कि किसी आटा मिल के पास 200 टन गेहूँ की माल-सूची है, जो उसने 10,000 रु० प्रतिटन के हिसाब से खरीदी है। अब गेहूँ की कीमत बढ़कर 12,000 रु० प्रतिटन हो गई है। यहां संवाल यह है कि फर्म को अब आटे की कीमत निर्धारित करते समय लागत की कौन-सी धारणा को आधार मानना चाहिए-10,000 रु० प्रति टन की ऐतिहासिक लागत को या 12,000 रु० प्रतिटन की प्रतिस्थापन लागत को? स्पष्ट है कि फर्म प्रतिस्थापन (वर्तमान) लागत को ही अपनाएगी क्योंकि यदि फर्म अपने पुराने भंडार के स्थान पर गेहूँ खरीदना चाहे तो उसे वर्तमान कीमत (12000 रु० प्रति टन) पर ही खरीदना

पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि प्रस्तावित प्रोजेक्ट पर गेहूँ के उपयोग के संबंध में फर्म का विचार बदल जाए तो वह गेहूँ को नई कीमत पर ही बेचेगा। अतः यहां आआ के कीमत-निर्धारण में प्रतिस्थापन लागत ही प्रासंगिक है। यद्यपि कर उद्देश्य के लिए गेहूँ की लागत अभी भी 10,000 रु० प्रतिटन है।

उल्लेखनीय है कि प्रतिस्थापन लागत की जानकारी बाजार में उचित जांच-पड़ताल के बिना नहीं हो सकती। ऐसी स्थितियों में प्रबंधन को उनके मूल्य का सही अनुमान लगाना होगा।

इस प्रकार फर्म को निर्णय लेते समय ऐतिहासिक लागतों हो परिवर्तित कीमत स्तरों के साथ समायोजन करने का प्रयास करना चाहिए।

### 3. भूतकालीन और भविष्यकालीन लागतें (Past and Future Costs)

भूतकालीन लागतें बीते समय में फर्म द्वारा उठाई गई वास्तविक लागतें होती हैं जो प्रायः वित्तीय लेखों में शामिल होती हैं। भूतकालीन लागतों को भविष्य की संभावित लागतों के लिए अनुमान का सर्वश्रेष्ठ आधार माना जाता है। यदि भूतकालीन लागतों को अधिक माना जाता है तो प्रबंधन अधिक लागतों के लिए उत्तरदायी कारकों का पता लगाने का प्रयास करता है और यदि ऐसा कोई कारक है तो वह उसके प्रभाव को कम करता है।

दूसरी ओर, भविष्यकालीन लागतें आने वाले दिनों में उठाई जाने वाली संभावित लागतें होती हैं। उल्लेखनीय है कि सिर्फ भविष्यकालीन लागतें ही प्रबंधकीय नियंत्रण में होती हैं। इन लागतों का सिर्फ अनुमान किया जाता है। यदि प्रबंधन देखता है कि भविष्यकालीन लागतें बहुत अधिक होने वाली हैं तो वह या तो उन्हें कम करने या उन लागतों को पूरा करने के साधन जुटाने की योजना बनाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रबंधक का ध्यान सदैव भविष्य की ओर होता है। इसलिए भूतकालीन लागतों की बजाय भविष्यकालीन लागतों का अनुमान करना उनके लिए आवश्यक होता है। प्रबंधन कई कारणों से भविष्यकालीन लागतों का पूर्वानुमान करता है; जैसे-लागत नियंत्रण, कीमत-निर्धारण, भविष्यकालीन लाभ और हानि विवरणों का प्रोजेक्शन (Projection) करने, पूंजी बजट संबंधी निर्णयों, नयी वस्तु के संबंधी निर्णयों तथा विस्तारक प्रोग्राम आदि के लिए।

### 4. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागतें (Direct and Indirect costs)

प्रत्यक्ष या पथक्करणीय (separable) या पता लगाने योग्य (traceable) लागतें वे लागतें होती हैं जिनको किसी पथक् अंतिम उत्पाद, विभाग या प्रक्रिया के साथ आसानी से संबद्ध किया जा सके। अर्थात् जिन लागतों की प्रत्यक्ष या सामान्य लागतों को फर्म के प्रचालन की किसी इकाई के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, अप्रत्यक्ष लागतें वे हैं जो किसी विशेष प्लांट, विभाग या प्रक्रिया से सम्बद्ध नहीं होती तथा जिन्हें किसी वस्तु विशेष पर भी प्रत्यक्ष रूप से वितरित नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, किसी बहु-उत्पाद फर्म का प्रबंधन या विद्युत लागत, अप्रत्यक्ष या सामान्य लागत है क्योंकि इसका उत्पादों के बीच विभाजन नहीं हो सकता जबकि कच्चे माल की लागत को उत्पाद-दर-उत्पाद पथक् किया जा सकता है। अतः यह प्रत्यक्ष लागत है। कोई विशेष लागत प्रत्यक्ष है या अप्रत्यक्ष—यह विचाराधीन लागत निर्धारण इकाई पर निर्भर करता है।

आधुनिक फर्म प्रायः बहु-उत्पाद वाली फर्म होती हैं। उद्यमी-निर्धारण उद्देश्य से प्रत्येक उत्पाद क्षेत्र की कुल लागत जानना चाहता है ताकि वह लागत को कम-से-कम और उत्पादन या लाभ को अधिक-से-अधिक कर सकें। इसलिए प्रबंधन अप्रत्यक्ष या सामान्य लागतों को विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों में वितरित करना चाहता है। परन्तु इसके लिए कोई आसान तरीका नहीं है। व्यवहार में, कई फर्म

अप्रत्यक्ष लागतों को प्रायः प्रत्येक उत्पादन क्षेत्र द्वारा संभावित उपयोग या उनके आवर्त (turnover) के आधार पर वितरित करती है। अतः लागतों का पता चलाने की योग्यता (traceability) किसी विशेष उत्पादन क्षेत्र में लागत को बढ़ाने या घटाने, कीमत-निर्धारण, प्रक्रियाओं में परिवर्तन, विभिन्न विभागों की काम की प्रकृति और क्षमता में परिवर्तन, विपणन आदि से संबंधित निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

## 5. अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागतें (Short-Run and Long-Run Costs)

अल्पकालीन अवधि वह अवधि होती है जिसमें उत्पादन के कम-से-कम एक साधन की पूर्ति स्थिर हो। इस अवधि में फर्म अपनी मशीनों, उपकरणों और उत्पादन के पैमानों को परिवर्तित नहीं कर सकती। बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम करवाकर ही बढ़ा सकती है। अर्थात् अल्पकालीन लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित होती हैं जबकि स्थापित (fixed) प्लांट और पूंजी उपकरण अपरिवर्तित रहें।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन लागतें वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित होती हैं जबकि प्लांट और उपकरण सहित उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील हों। दीर्घकाल में उत्पादन के स्थिर साधन नहीं होते हैं, इसलिए स्थिर लागतें भी नहीं होती हैं। फर्म अपने प्लांट का आकार या पैमाना बदल सकती है और कम अथवा अधिक साधन लगा सकती है। इस तरह दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। अतः सभी लागतें परिवर्तनशील हैं।

प्रबंधकीय निर्णय-निर्माण में दोनों प्रकार की लागतें महत्वपूर्ण हैं। चूंकि अल्पकाल में फर्म को एक दिए हुए प्लांट के आकार में अन्तर्गत ही इष्टतम उत्पादन करना होता है, इसलिए इसके लिए अल्पकालीन लागत की जानकारी आवश्यक होती है। जबकि दीर्घकालीन लागत की जानकारी व्यवसायी को अपने उद्देश्य के लिए इष्टतम पैमाने या फर्म के इष्टतम आकार के आयोजन में लाभप्रद होती है। अतः नए उद्यम की स्थापना के साथ-साथ वर्तमान उद्यम का विस्तार, दोनों में दीर्घकालीन लागत महत्वपूर्ण होती है।

## 6. नियंत्रणीय और अनियंत्रणीय लागतें

(Controllable and Non-Controllable Costs)

लागत की नियंत्रणीयता, विचारधीन दायित्व के स्तरों पर निर्भर करती है। नियंत्रणीय लागतें वे हैं जो व्यावसायिक प्रबंधक द्वारा नियन्त्रित और नियमित की जा सकती हों। जैसे कच्चे माल की लागतें, प्रत्यक्ष श्रम लागतें आदि।

दूसरी ओर, अनियन्त्रित लागतें वे होती हैं जिन पर व्यावसायिक प्रशासकों का कोई नियंत्रण या नियमन नहीं होता जैसे कच्चे माल की लागतें, प्रत्यक्ष लागतें आदि।

यह भी उल्लेखनीय है कि कोई लागत जो दायित्व के एक स्तर पर अनियन्त्रणीय है, किसी दूसरे स्तर पर नियंत्रणीय हो सकती है। परन्तु ऐसा सामान्यतः दायित्व के उच्च स्तर पर होता है। दूसरी बात यह कि किसी-किसी लागत की नियंत्रणीयता दो या अधिक व्यावसायिक प्रशासकों के अधीन होती है जैसे कच्चे माल की लागत जहां कीमत चुकाना, क्रय विभाग की जिम्मेदार होती हैं जबकि उसके उपयोग का दायित्व उत्पादन निरीक्षण का होता है। फिर भी, अधिकांश लागतें नियंत्रणीय होती हैं जबकि आबंटित लागत अनियंत्रणीय होती है क्योंकि यह आबंटन के लिए अपनाए जाने वाले फार्मूले के साथ परिवर्तित होती है। साथ ही यह प्रशासकों से स्वतंत्र होता है।

यह अन्तर, विशेषकर व्यय और व्यावसायिक प्रशासकों की कुशलता के मूल्यांकन में उपयोगी होता है।

## 7. अत्यावश्यक और स्थगन योग्य लागतें (Urgent and Postponable Costs)

जो लागतें फर्म के प्रचालनों को कायम रखने के लिए आवश्यक होती हैं, **अत्यावश्यक लागतें कहलाती हैं**, जैसे ईंधन, श्रम और कच्चे माल की लागतें।

दूसरी ओर, जिन लागतों को स्थगित कर देने से फर्म के प्रचालनों पर कम-से-कम कुछ समय के लिए भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे **स्थगन योग्य लागतें कहलाती हैं**, जैसे भवन और मशीन संबंधी रख-रखाव लागतें।

लागत का यह अन्तर युद्ध और स्फीति के दिनों में अधिक उपयोगी होता है।

## 8. बचाने योग्य और अपरिहार्य लागतें (Escapable and Unavoidable Costs)

बचाने योग्य लागतें वे हैं जो व्यवसाय की क्रियाओं में संकुचन के द्वारा कम की जा सकती हैं। यहां लागतों पर शुद्ध प्रभाव महत्वपूर्ण है। परन्तु अप्रत्यक्ष प्रभावों का अनुमान लगाना कठिन है जैसे घाटे में चल रही व्यावसायिक इकाई को बन्द कर देने से लागत तो घट जाएगी परन्तु इससे संबंधित अन्य व्यय जैसे यातायात व्यय आदि में वृद्धि हो जाएगी। दूसरी ओर, **अपरिहार्य लागतें** वे लागतें हैं जो उत्पादन के स्तर में परिवर्तन से परिवर्तित नहीं होती बल्कि वे अनिवार्य होती हैं, जैसे स्थिर लागतें।

## 9. वृद्धिशील और डूबी हुई लागतें (Incremental and Sunk Costs)

व्यावसायिक क्रिया की प्रकृति या स्तर में परिवर्तन के कारण होने वाली अतिरिक्त लागत **वृद्धिशील लागत कहलाती है**। ये अतिरिक्त लागतें कई कारणों से हो सकती हैं जैसे उत्पादन क्षेत्रों में परिवर्तन, नई वस्तु की प्रस्तुति, पुरानी या बेकार मशीनों के बदले नई मशीनें, उत्पादन की पुरानी तकनीकों के बदले नई तकनीकें, वितरण तंत्र में परिवर्तन आदि।

दूसरी ओर, **डूबी-हुई लागतें** वे लागतें हैं जिनमें व्यावसायिक क्रिया की प्रकृति या स्तर में परिवर्तन होने से कोई परिवर्तन नहीं होता। मौलिक रूप से ये **ऐतिहासिक लागतें** होती हैं। इसलिए ये भविष्य के व्यावसायिक निर्णयों के संदर्भ में प्रासंगिक नहीं होती। भूतकालीन व्यय का परिशोधन अर्थात् मूल्यहास (Depreciation) डूबी हुई लागत का उदाहरण है।

यद्यपि कोई लागत वृद्धिशील है या डूबी हुई, यह व्यावसायिक क्रिया की दशाओं पर निर्भर करता है। अतः एक विशेष लागत जो एक स्थिति में डूबी हुई लागत है, किसी दूसरी स्थिति में वृद्धिशील लागत हो सकती है।

इस प्रकार प्रबंधकीय निर्णय-निर्माण में सिर्फ वृद्धिशील लागतें ही प्रासंगिक हैं।

## 10. वृद्धिशील और सीमान्त लागतें (Incremental and Marginal Costs)

सीमान्त लागत और वृद्धिशील लागत में घनिष्ठ संबंध है। परन्तु दोनों में अन्तर भी है। वास्तव में, वृद्धिशील लागत का सीमान्त लागत की अपेक्षा व्यापक अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

**सीमान्त लागत**, उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने की लागत की होती है, जबकि **वृद्धिशील लागत** को व्यावसायिक क्रिया में किसी परिवर्तन से लागत में होने वाले परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है। अर्थात् वृद्धिशील लागत उत्पादन की सीमान्त मात्रा से संबंधित कुल अतिरिक्त लागत होती है।

चूंकि व्यवहार में, आगतों की पूर्ण विभाज्यता नहीं होने के कारण उसे प्रत्येक इकाई के रूप में अलग-अलग प्रयोग करना संभव नहीं होता, इसलिए वृद्धिशील लागत की धारणा व्यावसायिक जगत में अति महत्वपूर्ण है।

## 11. व्यावसायिक लागतें और पूर्ण लागतें (Business Costs and Full Costs)

व्यावसायिक लागतें वे लागतें हैं जिनमें प्लांट और उपकरण पर मूल्यहास का लेखीय लागत के साथ-साथ फर्म द्वारा किए गए भुगतान और संविदात्मक दायित्व शामिल होते हैं। दूसरी ओर पूर्ण लागत के अन्तर्गत अवसर लागत और सामान्य लाभ भी शामिल होते हैं। किसी वस्तु की अवसर लागत वह दूसरा सबसे अच्छा विकल्प है जिसका उन्हीं साधनों से या उनके समान उतनी ही मुद्रा लागत के साधनों के समूह से उसकी अपेक्षा उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रकार अवसर लागत छिने हुए अवसर या वैकल्पिक त्याग की लागत है। सामान्य लाभ वर्तमान व्यवसाय को चलाने के लिए न्यूनतम आवश्यक आय है। ये लागतें फर्म के लाभ और हानि की गणना तथा आय-कर और अन्य वैचारिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं।

## 12. सामूहिक उत्पादक लागतें (Common Production Costs)

कुछ ऐसे भी उद्यम हैं जहां एक ही सामूहिक उत्पादन प्रक्रिया और एक ही कच्चे माल से भिन्न-भिन्न तरह के दो या अधिक उत्पाद तैयार होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी सूती वस्त्र के कारखाने में एक ही प्रकार की रुई से पुरुष, महिलाओं और बच्चों के लिए कई रूप और रंग के कपड़े तैयार किए जाते हैं। किन्तु ऐसे उत्पाद प्रबंधन के लिए कई महत्वपूर्ण समस्याएं पैदा करते हैं। क्योंकि पथक उत्पाद के रूप में उनकी पहचान सामूहिक परिष्करण की समाप्ति पर ही की जा सकती है, जिसे सामान्यतः विच्छेद बिन्दु (Split off point) कहा जाता है। इस विच्छेद बिन्दु तक उठाई गई लागतें ही सामूहिक लागतें कहलाती हैं। इन लागतों की पहचान पथक उत्पादों के रूप में प्रत्यक्ष या तार्किक ढंग से नहीं की जा सकती है।

प्रबंधकों के लिए निम्न विषयों पर निर्णय लेते समय ऐसी लागतों की पहचान आवश्यक होती है, जैसे वर्तमान उत्पादों में सुधार और उनका रूपान्तरण करने, नई वस्तु को प्रस्तुत करने, किसी वस्तु का उत्पादन रोकना आदि।

## 13. संयुक्त लागतें (Joint Costs)

जब एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होने से दूसरी वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होती है तो उन उत्पादों और उनकी लागतों को सामान्यतः संयुक्त उत्पाद और संयुक्त लागत कहा जाता है। परन्तु लेखाकार और अर्थशास्त्री संयुक्त लागतों की व्याख्या अलग-अलग तरह से करते हैं। एक लेखाकार के लिए 'संयुक्त' शब्द से आशय उन स्थितियों से है जहां माल के परिष्करण (Processing) से अपने आप दो या अधिक भिन्न वस्तुएं उत्पादित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, जब कोयले से गैस उत्पादित की जाती है तो कोक और अन्य उत्पाद भी स्वतः उत्पादित हो जाते हैं एवं कायले की खरीद कीमत इनकी संयुक्त लागत होगी। इसी तरह सरसों तेल और खल, गेहूँ और चारा, रुई तथा बिनौला आदि इसके उदाहरण हैं। दूसरी स्थिति ऐसी भी हो सकती है जहां भवन, उपकरण, कर्मचारी गण जैसे कुछ सुविधाएं कई भिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लगे होंगे। लेखाकार इन लागतों को संयुक्त लागतों के अन्तर्गत शामिल नहीं करते बल्कि वे इन्हें अप्रत्यक्ष लागतें मानते हैं। किन्तु अर्थशास्त्रियों के लिए ये दोनों लागतें संयुक्त लागतें हैं।

## 14. बंदी लागतें और परित्यक्तता लागतें

(Shutdown Costs and Abandonment Costs)

बंदी लागतों से अभिप्राय उन लागतों से है जो प्लांट प्रचालन के बन्द होने की स्थिति में उठाई जाती हैं। इन्हें फर्म अपने प्रचालनों (Operations) को अस्थाई रूप से रोकने की स्थिति में उठाती है और यदि प्रचालन फिर शुरू कर दिए जाए तो इन लागतों से बचा जा सकता है। इन लागतों

के अन्तर्गत सभी प्रकार की स्थिर लागतें, प्लांट और उपकरण की सुरक्षा संबंधी लागतें एवं खुले में पड़ी संपत्ति के लिए छावनी के निर्माण पर लागतें, प्लांट का प्रचालन दुबारा शुरू होने पर वर्कर्स की पुनः नियुक्ति और प्रशिक्षण संबंधी लागतें आदि आती है।

दूसरी ओर, परित्यक्तता लागतें वे हैं जो प्लांट को उपयोग से पूर्णतया हटा लेने के लिए उठाई जाती हैं। ये लागतें परिसंपत्तियों के निपटारे की समस्या से संबंधित होती हैं। उदाहरणार्थ, दिल्ली में ट्राम सेवाओं की समाप्ति से संबंधित लागतें।

प्रबंधकों के लिए यह विभेद उस समय महत्त्वपूर्ण होता है जब उसे वर्तमान प्लांट को कायम रखने या उसके प्रचालनों को स्थगित करने या उसे पूर्णतया बन्द कर देने में से किसी एक निर्णय को लेना पड़ता है।

### 15. लेखांकन और आर्थिक लागतें (Accounting and Economic Costs)

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मुद्रा लागतें (money costs) कहते हैं। इसमें श्रम की मजदूरी और वेतन; कच्चे माल की लागत; मशीनों और उपकरणों का खर्च; मशीनों के मूल्य ह्रास और घिसने ओर न चलने का व्यय; बिल्डिंग तथा अन्य पूंजी-पदार्थ और बिल्डिंग का किराया; उधार ली हुई पूंजी का ब्याज; बिजली, ईंधन, यातायात और विज्ञापन; तथा बीमे का खर्च और सब प्रकार के कर शामिल है। ये लेखांकन लागतें हैं जो एक उद्यमी उत्पादन कि विभिन्न साधनों को भुगतान करने के लिए ध्यान में रखता है। ये मुद्रा लागतें सुनिश्चित लागतें (explicit costs) कहलाती हैं जो एक लेखाकार फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज करता है। लेकिन एक अन्य प्रकार की भी आर्थिक लागतें होती हैं जिन्हें अंतर्निहित लागतें (Imputed costs) कहते हैं। उद्योग के अपने स्रोतों और सेवाओं का आरोपित मूल्य (imputed value) अंतर्निहित लागत है। प्रबंधकर्ता-मालिका का वेतन, जो वेतन न लेकर सामान्य लाभ से ही संतुष्ट है; यदि बिल्डिंग उद्योगपति की अपनी हो, तो उसका अनुमानित किराया; और मार्केट की ब्याज दर पर उद्योगपति की अपनी लगाई हुई पूंजी का ब्याज, लागत में आते हैं। अतः आर्थिक लागतों में लेखांकन लागतें जमा अंतर्निहित लागतें शामिल होती हैं, अर्थात् सुनिश्चित तथा अंतर्निहित दोनों प्रकार की लागतें।

लेखांकन लागतें करारोपण संबंधी आवश्यकताओं के प्रबंधन, तथा फर्म के लाभ या हानि की गणना में उपयोगी होती हैं। दूसरी ओर, चूंकि आर्थिक लागतें भविष्य से संबंधित होती हैं इसलिए आर्थिक लागतें प्रबंधकीय निर्णय-निर्माण में काफी उपयोगी होती हैं।

### 16. वास्तविक लागत और अवसर लागत (Actual Cost and Opportunity Cost)

**वास्तविक लागत**, फर्म का वास्तविक वित्तीय होता है। अर्थात् वास्तविक वित्तीय व्यय होता है। अर्थात् वास्तविक लागत किसी वस्तु या सेवा को प्राप्त करने या उत्पादित करने के लिए किया गया वास्तविक व्यय है। कच्चे माल की लागतें, मजदूरी और ब्याज का भुगतान यात्रा और यातायात, मशीनों की लागतें आदि इस लागत के अन्तर्गत आते हैं। ये लागतें प्रायः फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज होती हैं।

दूसरी ओर, **अवसर लागत** वह लागत होती है जो एक की बजाय दूसरी वस्तु को लेने के अवसर छिन जाने या वैकल्पिक त्याग में अथवा एक के स्थान पर दूसरी साधन-सेवा का प्रयोग करने में आती है। क्योंकि स्रोत दुर्लभ है; इसलिए एक साथ सब वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। अतः यदि एक वस्तु के उत्पादन में उन्हें प्रयोग करना है, तो अन्य प्रयोगों से उनको हटा लेना होगा। इस प्रकार एक की लागत दूसरी की लागत का वैकल्पिक त्याग है। गेहूं उगाने के लिए भूमि के प्रयोग की लागत उस वैकल्पिक फसल का मूल्य है जो उस पर लगाई जा सकती थी। श्रम की वास्तविक लागत वह है जो उसे किसी अन्य रोजगार में मिल सकती थी।



पूँजीपति के लिए पूँजी की लागत वह ब्याज है जो उसे कहीं ओर मिल सकता था। प्रबंधकर्ता की सामान्य कमाई वह है जो उद्योगपति को किसी संयुक्त स्टॉक कम्पनी के प्रबन्धक के रूप में मिल सकती थी। इस प्रकार अवसर लागत छिने हुए अवसर या वैकल्पिक त्याग की लागत है। वास्तविक लागत और अवसर लागत के बीच के अंतर को आर्थिक लगान या आर्थिक लाभ कहा जाता है।

**अवसर लागत का महत्त्व (Importance of Opportunity Cost)**—प्रबंधनकीय निर्णय निर्माण में, प्रायः किसी वस्तु की वास्तविक लागत की नहीं, वरन् उसकी अवसर लागत पर विचार करने की आवश्यकता महसूस करती है अवसर लागत की धारणा का प्रबंधन के कई क्षेत्रों में विशेष महत्त्व है, जैसे :

(i) **निर्णय-निर्माण और कुशल संसाधन आबंटन (Decision-Making and Efficient Resource Allocation)** में लागत की धारणा उत्पादक द्वारा विवेकशील निर्णय-निर्माण के लिए अति आवश्यक है। माना कि किसी उत्पादक को यह निर्णय करना है कि उसे अपने दिए हुए संसाधनों से श्याम-श्वेत टी०वी० का उत्पादन करना चाहिए या रंगीन टी०वी० का—तो वह दोनों प्रकार की टी०वी० के उत्पादन की अवसर लागतों को मापकर और इन वस्तुओं को चालू बाजार कीमतों के साथ तुलना करके ही विवेकशील निर्णय तक पहुंच सकता है। इससे संसाधनों का कुशल आबंटन भी संभव होगा। किसी भी संसाधन का उपयोग सदैव उसी व्यवसाय में होगा जहां उसे उच्चतम अवसर लागत प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ, यदि कोई बी०ए० पास व्यक्ति स्कूल में 3,000 रु० प्राप्त कर रहा है और क्लर्क के रूप में 5,000 रु० प्राप्त कर सकता है, तो वह स्कूल छोड़कर क्लर्क की नौकरी प्रारंभ कर देगा।

(ii) **वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों के निर्धारण में (Determination of Relative Prices of Goods)**—यदि साधनों का एक ही ग्रुप या तो एक रंगीन टी०वी० या चार श्याम-श्वेत टी०वी० उत्पादित कर सकता है तो एक रंगीन टी०वी० की कीमत को एक श्याम-श्वेत टी०वी० की कीमत से कम-से-कम चौगुणा की कीमत के बराबर रखा जाएगा। अतः अवसर लागत की धारणा विभिन्न वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों के निर्धारण में उपयोगी होती है।

(iii) **किसी साधन का सामान्य पारिश्रमिक के निर्धारण में (Determination of Normal Remuneration to a Factor)**—अवसर लागत किसी उत्पादन साधन के सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग के लिए उसका मूल्य निर्धारित करता है। माना कि किसी प्रबंधक को प्रबंधन विद्यालय में व्याख्याता के रूप में 10,000 रु० वेतन देना होगा।

अतः स्पष्ट है कि प्रबंधन में अवसर लागत की धारणा का विशेष महत्त्व है।

## 17. निजी ओर सामाजिक लागतें (Private and Social Costs)

**निजी लागतें** एक फर्म द्वारा एक वस्तु या सेवा के उत्पादन पर किया गया खर्च है। इनमें सुनिश्चित और अंतर्निहित दोनों प्रकार की लागतें शामिल होती हैं। कुछ ऐसी भी अन्य लागतें हैं जो फर्म के कार्यकरण के कारण उत्पन्न होती हैं लेकिन सामान्यतः ये न तो व्यावसायिक निर्णयों के अन्तर्गत आती हैं और न ही ऐसी लागतें फर्मों द्वारा स्पष्टतया चुकाई जाती हैं। कुछ ऐसी लागतें समाज द्वारा चुकाई जाती हैं, अर्थात् एक फर्म की उत्पादन क्रियाएं, दूसरों के लिए आर्थिक लाभ अथवा हानि ला सकती हैं। उदाहरणार्थ, स्टील, रबड़ और रसायन जैसे वस्तुओं का उत्पादन वातावरण को प्रदूषित करता है जिससे **सामाजिक लागतें** होती हैं। ये लागतें फर्म के कार्यकरण द्वारा उत्पन्न समाज पर गौण प्रभाव (side effect) है। उदाहरणार्थ, वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण, यातायात का भीड़-भाड़, जहरीली गैसों और पटाखे की फर्मों में आकस्मिक दुर्घटना आदि। यद्यपि प्रबंधकीय निर्णयों में सामाजिक लागतों की प्रासंगिकता नहीं है, फिर भी फर्म का सामाजिक उत्तरदायित्व होता है। दूसरी ओर, शिक्षा, सफाई, पार्क आदि की सेवाओं का निर्माण सामाजिक लाभ लाता है। उदाहरणार्थ, शिक्षा को ही लीजिए, जो न कि केवल प्राप्तकर्ताओं को ऊंची आय और अन्य संतुष्टियाँ

प्रदान करती है बल्कि समाज को अधिक प्रबुद्ध (enlightened) शहरी भी प्रदान करती है। यदि हम उत्पादन को निजी लागतों और वातावरणीय प्रदूषण जैसी दूसरों पर हानियों को इकट्ठा जोड़ दें तो हमें सामाजिक लागतें प्राप्त होंगी।

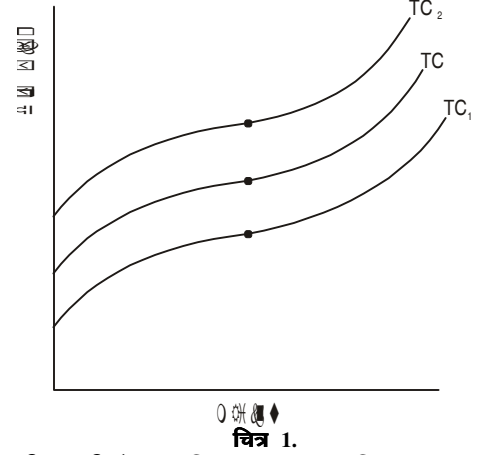
### 3. लागत फलन (The Cost Function)

लागत फलन कुल लागत और उसे निर्धारित करने वाले तत्वों के बीच फलनात्मक संबंध को व्यक्त करता है। प्रायः वे तत्व जो एक फर्म के उत्पादन की कुल लागत (TC) को निर्धारित करते हैं, वे हैं : उत्पादन (Q), प्रौद्योगिकी का स्तर (T), साधनों की कीमतों ( $P_p$ ) और स्थिर साधन (F)। इस प्रकार लागत फलन बन जाता है,

$$TC = f(Q, T, P_p, F)$$

ऐसे विस्तृत लागत फलन के लिए बहु-आयामी चित्रों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें खींचना बहुत कठिन है।

लागत फलन के विश्लेषण को सरल बनाने के लिए कुछ मान्यताएं ली जाती हैं। यह मान लिया जाता है फर्म केवल एक अकेली समरूप वस्तु (q) का कुछ उत्पादन के साधनों की सहायता से उत्पादन करती है। अल्पकाल में फर्म का उत्पादन स्तर चाहे कुछ भी हो, इनमें से कुछ साधन स्थिर मात्राओं में लगाए जाते हैं। इसलिए वे दिए हुए मान लिए जाते हैं। बाकी के साधन परिवर्तनशील हैं जिनकी पूर्ति का ज्ञान है और वे स्थिर मार्केट कीमतों पर उपलब्ध हैं। आगे, वस्तु के उत्पादन के लिए जो प्रौद्योगिकी प्रयोग



चित्र 1.

की जाती है उसका ज्ञान होता है और वह स्थिर मान ली जाती है। अन्तिम, यह मान लिया जाता है कि फर्म परिवर्तनशील साधनों को इस प्रकार समायोजित (adjust) करती है कि वस्तु q का दिया हुआ उत्पादन Q, न्यूनतम लागत C पर प्राप्त होता है। इस प्रकार कुल लागत फलन ऐसे व्यक्त किया जाता है,

$$TC = f(Q)$$

जिसका मतलब है कि कुल लागत (TC) उत्पादन (Q) का फलन (f) है, अन्य साधनों की स्थिर मानते हुए।

लागत फलन को चित्र में एक कुल लागत (TC) वक्र द्वारा दिखाया जाता है। उत्पादन को समानांतर अक्ष पर और कुल लागत को अनुलंब अक्ष पर लेकर TC वक्र खींचा जाता है, जैसा चित्र 1 में दिखाया गया है। यह एक निरंतर वक्र है जिसकी आकृति यह दर्शाती है कि उत्पादन के बढ़ने के साथ कुल लागत भी बढ़ती है। कुल लागत फलन और TC वक्र दी हुई शर्तों के अन्तर्गत, उत्पादन के साथ कुल लागत का संबंध बतलाते हैं। परन्तु यदि दी हुई शर्तों में से कोई एक जैसे उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन होता है, तो लागत फलन बदल जाता है उदाहरणार्थ, यदि उत्पादन की तकनीक में सुधार होता है, तो एक दी हुई उत्पादन की मात्रा के लिए उत्पादन की लागत पहले से कम होगी जो नए लागत वक्र को  $TC_1$  को पुराने वक्र TC के नीचे सरका देगी, जैसा चित्र 1 में दिखाया गया है। दूसरी ओर, यदि साधनों की कीमतों बढ़ जाती है, तो उत्पादन लागत में वृद्धि होगी, जो लागत वक्र TC की ऊपर की ओर  $TC_2$  पर सरका देगी, जैसा चित्र 1 में है।

लागत फलन उत्पादन फलन पर निर्भर करता है। अतः लागत फलन अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में पाया जाता है। इनकी विस्तार से चर्चा हम आगे कर रहे हैं।

# अध्याय 7

## लागत सिद्धान्त

### THEORY OF COST

लागत-उत्पादन संबंध की परंपरागत और आधुनिक लागतों के सिद्धांतों द्वारा अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत विश्लेषण के अन्तर्गत व्याख्या की जाती है। इनका आगे सविस्तार अध्ययन करते हैं।

#### लागतों का परंपरागत सिद्धांत (The Traditional Theory of Costs)

लागतों का परंपरागत सिद्धांत अल्पकाल और दीर्घकाल में लागत वक्रों के व्यवहार का विश्लेषण करता है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों वक्र U आकार के होते हैं परन्तु दीर्घकालीन वक्र, अल्पकालीन वक्रों की अपेक्षा चपटे होते हैं।

#### 5. फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र (Short Run Cost Curves of The Firm)

अल्पकालीन वह समय होता है जिसमें फर्म अपनी मशीनों, उपकरण और उत्पादन के पैमाने को परिवर्तित नहीं कर सकती। बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए, फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम करवाकर ही बढ़ा सकती है। ऐसी अवधि में उत्पादन के कुछ साधन स्थिर और कुछ परिवर्तनशील होने के कारण, फर्म की कुल लागतें कुछ स्थिर और कुछ परिवर्तनशील लागतें होती हैं।

#### कुल लागतें (Total Costs)

कुल लागतें एक वस्तु की निश्चित मात्रा को उत्पादित करने में एक फर्म के कुल खर्च हैं। वे कुल स्थिर लागतों (TVC) का जोड़ हैं। प्रो० सलवाटोर (Salvatore) के शब्दों में, "कुल लागतें कुल स्थिर लागतों जमा कुल परिवर्तनशील लागतों का जोड़ हैं।" अर्थात्  $TC = TFC + TVC$ । उसमें लगान, ब्याज, मजदूरी, कर, कच्चा माल, बिजली, पानी, विज्ञापन आदि के खर्च शामिल होते हैं।

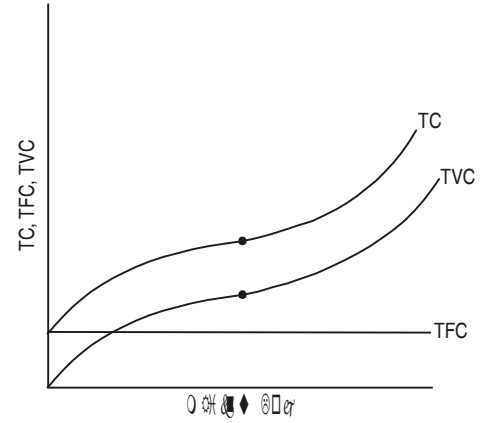
**(क) कुल स्थिर लागतें (Total Fixed Costs or TFC)—ये उत्पादन की वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती। वे उत्पादन के स्तर से स्वतंत्र होती हैं।\*** वास्तव में, फर्म को ये लागतें उठानी ही पड़ती है, यदि फर्म थोड़े समय के लिए उत्पादन बंद भी कर देती है। इनमें भूमि और बिल्डिंग किराए पर लेने, उधार ली गई मुद्रा पर ब्याज, इंश्योरेंस, सम्पत्ति कर, मूल्य ह्रास, स्थायी स्टाफ की मजदूरी और वेतन, आदि भुगतान शामिल होते हैं। इन्हें **ऊपरी लागतें (Overhead Costs)** भी कहते हैं। डा० मार्शल (Marshall) इन्हें उत्पादन की पूरक लागतें (Supplementary Costs) कहते हैं।

**(ख) कुल परिवर्तनशील लागतें (Total Variable Costs or TVC)—ये वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ सीधे तौर से बदलती हैं।\*\*** वे उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती है और उत्पादन के कम होने के साथ कम होती है तथा उत्पादन के बिल्कुल बन्द होने पर वे समाप्त हो जाती है।

उनमें कच्चे माल, बिजली, पानी, कर, अस्थायी श्रम लगाना, विज्ञापन आदि के खर्चे शामिल होते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष लागतें (Direct Costs) भी कहते हैं। डा० मार्शल इन्हें उत्पादन की प्रमुख लागतें (Prime Costs) कहते हैं।

तालिका 1 और चित्र 1 में TFC, TVC और TC के संबंध को दर्शाया गया है। TC जोड़ है TFC और TVC का। TFC को उत्पादन के सभी स्तरों पर स्थिर 30 रु० लिया गया है। जब उत्पादन शून्य होता है तो TVC भी शून्य है तथा उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ ये बढ़ती जाती है। जब तक फर्म कम परिवर्तनशील साधन प्रयोग करती है, TVC घटती दर से बढ़ती है, जैसे 10 रु० से 16 रु० से 21 रु०, परन्तु उत्पादन की चौथी इकाई के बाद घटते प्रतिफल के नियम के कारण वे तीव्रगति के साथ बढ़ती है, जैसे 21 रु० से 28 रु० से 40 रु० आदि।

इन तीनों लागतों से संबंधित लागत वक्रों को चित्र 1 में दिखाया गया है। TFC वक्र को उत्पादन अक्ष के समानांतर दिखाया गया है क्योंकि कुल स्थिर लागतें प्रत्येक उत्पादन स्तर पर समान रहती है जैसे 30 रु०। TVC वक्र उल्टा S-आकार का होता है और मूल्य 0 से आरंभ होता है, क्योंकि जब उत्पादन शून्य है तो कुल परिवर्तनशील लागतें शून्य होती हैं। उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती है। जब तक फर्म स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनशील साधन कम प्रयोग करती है, कुल परिवर्तनशील लागतें घटती दर से बढ़ती है।



चित्र 1.

तालिका 1 : कुल लागतें (Total Costs)

कुल उत्पादन इकाइयां (TO)	कुल स्थिर लागत (TFC)	कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)	कुल लागत (TC) (4)
(1)	(2)	(3)	(2 + 3)
0	30	0	30
1	30	10	40
2	30	16	40
3	30	21	51
4	30	28	58
5	30	40	70
6	30	54	84
7	30	75	105

परन्तु एक बिन्दु के बाद स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनशील साधनों के अधिक प्रयोग से, वे तीव्रता से बढ़ती हैं। ऐसा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के लागू होने से होता है। क्योंकि TFC वक्र समानांतर सीधी रेखा है, इसीलिए TVC वक्र के साथ TC वक्र समान अनुलंब अंतर पर चलता है। TC एक निरंतर वक्र है जो यह दर्शाता है कि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ कुल लागतें बढ़ती हैं।

## अध्याय 8

### उत्पादन फलन

#### COST OUTPUT RELATIONS

#### Derivation of cost function from production function

**उत्पादक फलन**—उत्पादक फलन उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन की मात्रा के भौतिक संबंध को बताता है। उत्पादन की मात्रा उत्पादन के साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है। जब उत्पादन के साधनों में परिवर्तन करते हैं तो इसके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होता है। उत्पादन फलन हमें बताता है कि यदि उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता है तो उसके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा में कितना तथा किस प्रकार से परिवर्तन होगा।

According to Prof. Kautsyanis—“उत्पादन फलन एक विशुद्ध तकनीकी सम्बन्ध है जो उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन की मात्रा के संबंध को प्रकट करता है। जैसे

$$Q = f(L, K, N, R, V, Y)$$

$$Q = \text{उत्पादन की मात्रा, } L = \text{श्रम, } K = \text{पूंजी, } N = \text{भूमि, } R = \text{कच्चा माल}$$

$$V = \text{पैमाने के प्रतिफल, } Y = \text{कार्य कुशलता।}$$

इस प्रकार उत्पादन की मात्रा उत्पादन के साधनों पर निर्भर करती है लेकिन भूमि, कच्चा माल, पैमाने के प्रतिफल आदि सभी स्थिर साधन है। इसलिए परम्परावादी अर्थशास्त्र सिद्धान्त के अन्तर्गत उत्पादक फलन को निम्न प्रकार से दर्शाया गया है।

$Q = f(L, K)$  अतः उत्पादन की मात्रा श्रम व पूंजी का फलन है क्योंकि ये परिवर्तनशील साधन है।

**Derivation of Cost function from Production function**—किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए विभिन्न उत्पादन के साधनों का प्रयोग किया जाता है तथा इन साधनों को उनके प्रयोग के बदले में पुरस्कार या पारिश्रमिक दिया जाता है, जिनको उत्पादन की लागतें कहा जाता है। इस प्रकार उत्पादन लागतें व्युत्पन्न हैं जो कि उत्पादन फलन में निहित तकनीकी सम्बन्धों द्वारा ज्ञात की जाती है।

किसी भी लागत को ज्ञात करने के लिए हम निम्नलिखित मान्यताओं को लेते हैं :—

- (1) उत्पादन फलन दिया हुआ है।
- (2) पैमाने के समान प्रतिफल लागू होते हैं।
- (3) साधनों की लागत दी हुई है। जैसे

$$W = \text{Rs. 2 per hour}$$

$$r = 2 \text{ Rs. per hour}$$

एक फर्म के पास उत्पादन की विभिन्न तकनीकें तथा साधन होते हैं लेकिन एक फर्म वहाँ पर उत्पादन करेगी या उस तकनीक का प्रयोग करेगी जहाँ पर कम से कम लागत हो।

मात्रा	P <sub>1</sub>	P <sub>2</sub>	P <sub>3</sub>	P <sub>4</sub>	P <sub>5</sub>
Labour	2	3	4	5	6
Capital	6	4.5	4.0	3.7	3.5

उपरलिखित तालिका में उन L तथा K की मात्राओं की दर्शाया गया है जो किसी भी फर्म को एक इकाई स्थगित करने के लिए चाहिए। चूंकि हम जानते हैं कि

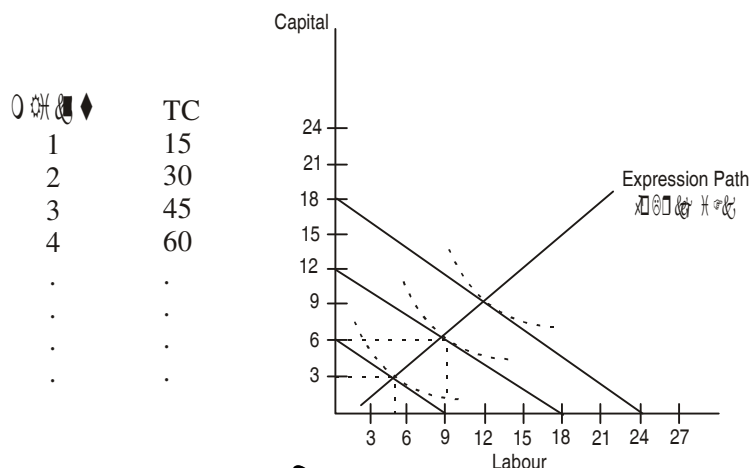
$W = 2$  Rs. Per hour,  $r = 2$  Rs. per hour.

तो हम लागत को साधन कीमतों द्वारा ज्ञात कर सकते हैं जो निम्न तालिका में है :-

मात्रा	P <sub>1</sub>	P <sub>2</sub>	P <sub>3</sub>	P <sub>4</sub>	P <sub>5</sub>
Labour	4	6	8	10	12
Capital	12	9	8	7.4	7
Total Cost	16	15	16	17.4	19

इस तालिका से स्पष्ट है कि एक फर्म न्यूनतम लागत वाले संयोग को चुनती है तालिका में P<sub>2</sub> न्यूनतम लागत संयोग है जो फर्म चुनेगी और हमारी मान्यता के अनुसार पैमाने के समान प्रतिफल लागू होते हैं। अतः उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर P<sub>2</sub> संयोग का ही प्रयोग होगा। ज्यों-ज्यों उत्पादन मात्रा बढ़ेगी, त्यों-त्यों लागत भी बढ़ेगी लेकिन समान दर से क्योंकि हमने मान्यता ली है कि पैमाने के समान प्रतिफल लागू होते हैं। इस प्रकार हम ज्ञात कर सकते हैं कि एक निश्चित उत्पादन मात्रा पर कुल कितनी लागत आएगी।

अब हम एक तालिका द्वारा ज्ञात करेंगे कि उत्पादन की एक निश्चित मात्रा उत्पादित करने के लिए कुल लागत क्या होगी।



चित्र 1.

इस प्रकार कम से कम या न्यूनतम लागत संयोग को प्राप्त किया गया है। रेखाचित्र (ii) में OQ को मिलाने से एक विस्तार पथ आता है और विस्तार पथ के विभिन्न बिन्दुओं (a, b, c, d, e, f) की सहायता से कुल लागत ज्ञात की जा सकती है जिसको रेखाचित्र (i) में दिखाया गया है। रेखाचित्र (i) में TC वक्र एक सीधी रेखा है व बढ़ती हुई है जो यह दर्शाती है कि उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ लागत भी बढ़ती है लेकिन समान दर से। इसी प्रकार रेखाचित्र (iii) से स्पष्ट है कि उत्पादन बढ़ने या कम होने पर MC तथा AC पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे समान रहती है।

## अध्याय 9

# लाभ—हानि विश्लेषण

## (BREAK—EVEN ANALYSIS)

### 1. अर्थ

#### (MEANING)

लाभ-हानि विश्लेषण कुल लागत और कुल आगम के बीच संतुलन की व्याख्या करता है। इसके अन्तर्गत फर्म की बिक्री की मात्रा संबंधित उसकी लागत और आगम का अध्ययन किया जाता है। लाभ-हानि बिन्दु फर्म की बिक्री का वह स्तर है जिस पर कुल आगम, कुल लागत के बराबर होता है और शुद्ध आय शून्य होती है। यह एक विश्लेषणात्मक तकनीक है जिसका प्रयोग विक्रय मात्रा एवं उत्पादन के उस स्तर की पहचान करने के लिए किया जाता है जहां फर्म लाभ-हानि (break-even) की स्थिति में होती है अर्थात् आगम सभी लागतों को पूरा कर सकता है। लाभ-हानि विश्लेषण उत्पादन की स्थिर और परिवर्तनशील लागत, उत्पादन की मात्रा, उत्पादन की मूल्य, विक्रय मूल्य और लाभ के बीच संबंध स्थापित करता है। इसीलिए इसे लागत-कीमत प्राजेक्ट विश्लेषण भी कहते हैं।

### 2. लाभ—हानि विश्लेषण के उद्देश्य

#### (OBJECTIVES OF BREAK—EVEN ANALYSIS)

लाभ-हानि विश्लेषण का उद्देश्य केवल लाभ-हानि बिन्दु निर्धारित करना ही नहीं है, बल्कि फर्म के प्रचलनों (operations) के व्यावहारिक क्षेत्र (range) के भीतर लागत, कीमत और मात्रा के बीच संबंधों की जानकारी विकसित करना है। लाभ-हानि विश्लेषण का प्रयोग निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है:

1. **व्यावहारिक दिशानिर्देशन (Business Guidance)**—प्रबंधन अपनी प्लांट क्षमता का विस्तार या सकुंचन के विषय में आयोजन करने के लिए लाभ-हानि विश्लेषण पर आधारित निष्कर्ष का पालन करता है। गार्डनर के अनुसार 'लाभ—हानि चार्ट फर्म के व्यावहारिक नियंत्रण में दिशा-निर्देशन में दिशा-निर्देशन के लिए एक श्रेष्ठ उपकरण फलक (Panel) है'।

2. **लाभ आयोजन (Profit Planing)**—इस विश्लेषण का उद्देश्य फर्म को अर्जित होने वाले लाभ-स्तर के विषय में आयोजन करने में मदद करना है। लाभ का यह पूर्वानुमान भविष्य के लिए आगम और लागतों के प्रक्षेपणों (Projections) पर आधारित होता है।

3. **सुरक्षा की सीमा (Margin of Safety)**—लाभ-हानि विश्लेषण का प्रयोग सुरक्षा की सीमा (safety margin) निर्धारित करने के उद्देश्य से भी किया जाता है जो यह दर्शाता है कि फर्म बिना हानि उठाए बिक्री में कितनी कमी सहन कर सकती है।

4. **वस्तु आयोजन (Product Planning)**—लाभ-हानि विश्लेषण का उद्देश्य फर्म को उसके अनुमानित आगम और लागतों पर आधारित वस्तु के आयोजन में मदद करना भी है। यह किसी नई वस्तु श्रंखला (Product Line) को जोड़ने या चालू वस्तु श्रंखला को हटाने के प्रबंधकीय निर्णय में सहायक हो सकता है।

**5. कीमत और लागत में परिवर्तन (Change in Price and Cost)**—प्रबंधक के सामने प्रायः यह समस्या होती है कि कीमत कम की जाए या नहीं। लाभ—हानि विश्लेषण का प्रयोग फर्म के लाभों पर कीमत और लागत में परिवर्तनों के प्रभावों के विश्लेषण के लिए भी किया जाता है।

**6. उत्पादन निर्णय (Production Decision)**—लाभ—हानि विश्लेषण का एक उद्देश्य यह भी है कि फर्म अपनी बिक्री मात्रा बढ़ाने के लिए अनेमानित लाभ—हानि बिन्दु के अन्दर वस्तु के लिए सर्वाधिक प्रोत्साहक तकनीकों के संबंध में उचित निर्णय कर सके।

**7. वितरण संबंधी निर्णय (Distribution Decision)**—लाभ—हानि विश्लेषण का प्रयोग वितरण संबंधी निर्णय प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। फर्म इसके आधार पर सर्वोत्तम संभव वितरण प्रणाली के संबंध में निर्णय ले सकती है, जैसे किसी नगर या प्रदेश में कई वितरकों या अकेले वितरक का होना, जिससे उसकी बिक्री बढ़े।

**8. कीमत निर्णय (Price Decision)**—फर्म लाभ कमाने के लिए लाभ—हानि विश्लेषण द्वारा अपने संभावित आगम और लागतों के आधार पर निर्धारित होने वाली विक्रय कीमत के संबंध में निर्णय ले सकती है।

**9. लक्ष्य लाभ (Target Profit)**—लाभ—हानि विश्लेषण का उद्देश्य, लक्ष्य लाभ तथा बिक्री मात्रा निर्धारित करना भी है। यह फर्म को उत्पादन की न्यूनतम औसत परिवर्तनशील लागतों से लाभ के लिए लक्ष्य बिक्री मात्रा निर्धारित करने में सहायता करता है।

**10. लाभांश निर्णय (Dividend Decision)**—फर्म जब लाभ—हानि बिन्दु के पश्चात् में लाभ कमाना प्रारंभ करती है तब ही वह अपने शेयरधारकों को भुगतान किए जाने वाले लाभांश की मात्रा के बारे में निर्णय लेती है। इस प्रकार, फर्म अपने शेयर धारकों के लाभांश के भुगतान से संबंधित निर्णय लाभ—हानि बिन्दु के आधार पर ही करती है।

**11. उत्पादन क्षमता संबंधी निर्णय (Production Capacity Decision)**—लाभ—हानि विश्लेषण का उद्देश्य यह निर्धारित करना भी है कि अतिरिक्त उपकरण लगाकर उत्पादन क्षमता का विस्तार किया जाए या नहीं। इसके लिए यह विश्लेषण अति उपयोगी है।

### 3. लाभ—हानि विश्लेषण

#### (BREAK—EVEN ANALYSIS)

##### अर्थ (Meaning)

लाभ—हानि विश्लेषण उत्पादन की मात्रा से संबंधित उत्पादन लागत और आगम के बीच संबंध दर्शाता है। यह संबंध लाभ—हानि बिन्दु द्वारा निर्धारित होता है। अर्थात् लाभ—हानि बिन्दु (BEP) उत्पादन का एक विशेष स्तर या बिक्री की एक विशेष मात्रा है जहां फर्म की कुल आगम और कुल लागत बराबर होते हैं। यह शून्य लाभ का बिन्दु है। इस बिन्दु को न—लाभ, न हानि या लाभ—हानि का बिन्दु भी कहते हैं। इस बिन्दु से नीचे की बिक्री हानि दर्शाती है और इस बिन्दु से ऊपर की बिक्री फर्म के लाभ को दर्शाती है।

##### इसकी मान्यताएं (Its Assumptions)

लाभ—हानि विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

- (1) लागत फलन और आगम फलन रेखीय होते हैं।
- (2) कुल लागत, स्थिर और परिवर्तनशील लागतों में विभाजित होती है।
- (3) स्थिर लागत स्थिर होती है।
- (4) परिवर्तनशील लागत उत्पादन के साथ आनेपातिक रूप से परिवर्तित होती है।



(5) वस्तु की उत्पादित और बिक्री की गई इकाइयों की संख्या समरूप होती है। इसका अर्थ है कि प्रारंभिक स्टॉक (opening stock) और अंतिम स्टॉक (closing stock) नहीं होता एवं माल-सूची (inventory) में कोई जोड़ या घटाव नहीं होता है।

(6) विक्रय कीमत स्थिर होती है।

(7) साधन कीमतें स्थिर होती है।

(8) लागत केवल उत्पादित की गई मात्रा से प्रभावित होती है।

(9) आगम उत्पादन की भौतिक मात्रा के साथ पूर्ण रूप से परिवर्तनीय होता है।

(10) तकनीक और उत्पादकता में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

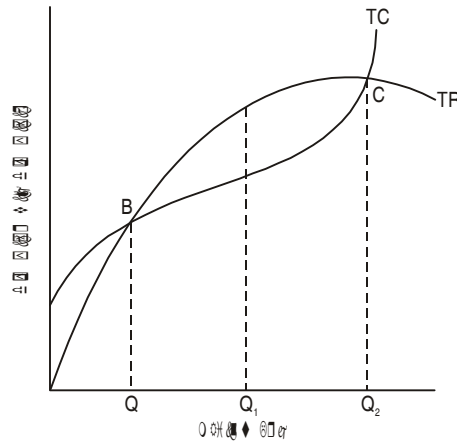
(11) केवल एक वस्तु होती है। विविध वस्तुओं की स्थिति में वस्तु-मिश्र (product—mix) स्थिर होता है।

## लाभ-हानि बिन्दु का निर्धारण (Determination of Break—Even point)

### 1. आरेखीय विधि या लाभ-हानि चार्ट

(The Graphical Method or Break—Even Chart—BEC)

लाभ-हानि विश्लेषण सामान्यतः लाभ-हानि चार्ट द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। लाभ-हानि चार्ट आरेखीय रूप से उत्पादन की मात्रा से संबंध अर्थात् लाभ-उत्पादन संबंध को प्रकट करता है।



चित्र 1.

चित्र 1 लाभ-हानि चार्ट है जहां क्षैतिज अक्ष पर उत्पादन के स्तर और अनुलंब अक्ष पर आगम एवं लागत को दर्शाया गया है। चित्र में कुल आगम वक्र (TR) आगे नीचे की ओर उन्नतोदर (concave) अर्थात् विलोमित (inverted) U—आकार का है जो यह दर्शाता है कि फर्म वस्तु की अरिखित इकाइयों को केवल प्रतिफल के नियम का परिणाम है। TR और TC वक्रों का मिलन बिन्दु B पर होता है और C लाभ-हानि बिन्दु है। अर्थात् यह उत्पादन-स्तर OQ और OQ<sub>2</sub> स्तर पर न-लाभ और न-हानि का बिन्दु है। चित्र 1 में उत्पादन के किसी विशेष स्तर पर TR और TC के बीच की अनुलंब दूरी फर्म की लाभ या हानि को दर्शाती है। OQ से OQ<sub>2</sub> से अधिक उत्पादन होने पर फर्म को हानि होगी। जबकि लाभ-हानि बिन्दु B और C के बीच अर्थात् OQ और OQ<sub>2</sub> के बीच उत्पादन होने पर फर्म को लाभ होगा। इन बिन्दुओं के बीच TR और TC की दूरी जहां सबसे अधिक होगी, वहां फर्म को सर्वाधिक लाभ होगा। OQ<sub>1</sub> चित्र में उत्पादन-स्तर PT पर सर्वाधिक लाभ हो रहा है।

## अध्याय 10

# व्यवहार में कीमत-निर्धारण की विधियाँ

## (METHODS OF PRICE DETERMINATION IN PRACTICE)

### 1. प्रस्तावना (Introduction)

कीमत-निर्धारण व्यावसायिक फर्मों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है। इन्हें आगम (revenue) प्राप्त करने के लिए उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें निर्धारित करनी पड़ती हैं। चूंकि कीमत का प्रभाव वस्तु की मांग, पूर्ति, बिक्री और फर्म के लाभ पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है, इसलिए फर्म द्वारा वस्तु की कीमत निर्धारित करने के लिए ऐसी नियोजित नीति अपनाई जानी चाहिए जिससे वस्तु की बिक्री और आगम संबंधी उसका लक्ष्य पूरा हो सके। किसी वस्तु की कम या अधिक कीमत का निर्धारण कई घटकों एवं शर्तों पर निर्भर करता है जिनकी चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं।

### 2. कीमत निर्धारण नीतियों को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Pricing Policies)

कीमत निर्धारण नीतियों को प्रभावित करने वाले घटक निम्न हैं :

1. **वस्तु की लागत (Cost of the Product)**—किसी वस्तु की लागत, उसकी कीमत निर्धारण नीति को अत्यधिक प्रभावित करती है। सामान्यतः वस्तु की लागत कीमत के निम्नतम स्तर को निर्धारित करती है। कोई भी व्यवसायी अपनी लागत से कम कर वस्तु का विक्रय नहीं करता। यदि व्यवसायी समविच्छेद बिन्दु (Break-Even Point), जहाँ कुल लागत एवं कुल प्राप्त विक्रय कीमत के बराबर होते हैं, से कम कीमत वसूल करता है तो उसे हानि होगी।

2. **वस्तु की मांग (Demand for the Product)**—वस्तु की मांग कीमत निर्धारण नीति को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण घटक है। वस्तु की मांग उसकी कीमत की अधिकतम सीमा को निश्चित करती है। किसी फर्म की कीमत निर्धारण नीति वस्तु की मांग की लोच पर निर्भर करती है। यदि उत्पादक की वस्तु की मांग बेलोच है तो वस्तु का मूल्य अधिक-से-अधिक रखकर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है। दूसरी ओर, यदि मांग लोचशील है तो कीमत में वृद्धि करने की बजाय कीमत में कमी करने की नीति फर्म के लिए लाभप्रद होगी। परन्तु, सभी स्थितियों में वस्तु की मांग कीमत-लोच नहीं होगी। विशेषकर, टिकाऊ वस्तुओं जैसे, कार, टी०वी०, फ्रिज आदि की मांग आय लोच होती है। इसलिए जब उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो ऐसी फर्म अपनी वस्तुओं की कीमतें ऊँची कर सकती है।

3. **उपभोक्ताओं का व्यवहार (Behaviour of Consumers)**—प्रबंधन कीमत निर्धारित करते समय उपभोक्ताओं के व्यवहार को भी ध्यान में रखता है। एक उपभोक्ता से दूसरे उपभोक्ता के बीच कीमत में परिवर्तन के प्रति उनकी संवेदनशीलता में अन्तर होता है। प्रत्येक स्थिति में मांग का नियम लागू नहीं होगा। विज्ञापन एवं बिक्री प्रोत्साहन प्रयासों से उपभोक्ता का अधिमान बदला जा सकता है और मांग एवं कीमत को बढ़ाया जा सकता है।

**4. प्रतियोगिता (Competition)**—किसी वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय प्रबंधन को उसकी होने वाली प्रतियोगिता पर अवश्य विचार करना चाहिए। कीमत नीति की प्रकृति बाजार में चालू प्रतियोगिता की कोटि (degree) पर निर्भर करती है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत, उद्योग द्वारा निर्धारित होती है। फर्म अपनी कीमत नहीं निर्धारित करती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में फर्म अपनी कीमत नीति निर्धारित करती है। यदि वस्तु की प्रतियोगिता कम है तो कीमत अधिक रखी जा सकती है और विलोमशः।

**5. उत्पादक के उद्देश्य (Objectives of the Producer)**—कीमत नीति फर्म के सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन होती है। फर्म के ये उद्देश्य हो सकते हैं : बाजार शेर में वृद्धि, अधिकतम लाभ, कीमत स्थिरता, बिक्री अथवा निवेश पर निश्चित प्रतिशत लाभ, प्रतियोगिता कम करना आदि। फर्म का जैसा उद्देश्य होगा, उसकी कीमत-निर्धारण नीति इस उद्देश्य के अनुसार ही होगी।

**6. वस्तु की विशेषताएं (Characteristics of the Product)**—विचारधीन वस्तु की विशेषताएं भी उसकी कीमत-निर्धारण नीति को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ, यदि वस्तु नई हो तो प्रारंभ में उसकी कीमत कम हानी चाहिए फिर बाद में उसकी कीमत बढ़ाई जानी चाहिए। यदि वस्तु नाशवान हो तो उसकी कीमत इस तरह निर्धारित की जानी चाहिए जिससे उसकी बिक्री शीघ्र हो जाए। इसी तरह स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतें कम रखनी जानी चाहिए।

**7. वितरण मार्ग (Distribution Channel)**—वस्तु के वितरण मार्ग की प्रकृति का भी प्रभाव कीमत-निर्धारण नीति पर पड़ता है। यदि वितरण मार्ग छोटा है तो वस्तु की कीमत कम रखी जा सकती है और यदि वितरण मार्ग लंबा है अर्थात् उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कई मध्यस्थ हैं तो उन सभी मध्यस्थों को उचित लाभ देते हुए कीमत अधिक रखनी होगी।

**8. क्रेताओं की प्रकृति (Nature of the Buyers)**—यदि क्रेता उत्पादक है तो वस्तु की प्रतियोगिता कीमत रखनी पड़ेगी क्योंकि उसे बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। दूसरी ओर, यदि क्रेता उपभोक्ता है तो वस्तु की कीमत अधिक रखी जा सकती है क्योंकि उसे प्रायः बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। इसी प्रकार थोक क्रेता से कम कीमत और खुदरा क्रेता से अधिक कीमत ली जा सकती है।

**9. व्यावसायिक प्रथा (Business Customers)**—कीमत निर्धारण करते समय उस व्यवसाय की प्रथाओं पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, वेतनमान में टिकाऊ वस्तु उद्योगों में गारंटी देने की प्रथा प्रचलित है। अतः ऐसे उद्योग के अन्तर्गत कीमत निर्धारित करते समय विचाराधीन वस्तु की कीमत में सेवा मूल्य भी जोड़ लेना चाहिए।

**10. सरकारी नीति (Government Policy)**—फर्म की कीमत-निर्धारण नीति सरकारी नीतियों द्वारा भी प्रभावित होती है। सरकार जनहित में कीमत नियंत्रण की नीति अपनाकर व्यवसायियों की एकाधिकार शक्ति और उनके बीच सांठ-गांठ की बुराइयों को रोकती है। भारत में सरकार वस्तु की बढ़ती कीमतों से उसकी पूर्ति पर आवश्यक वस्तु अधिनियम, औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, भारत सुरक्षा नियम आदि के माध्यम से नियंत्रण करती है।

### 3. कीमत निर्धारण नीति के उद्देश्य (Objectives of Pricing Policy)

साधारणतः फर्म का संपूर्ण उद्देश्य ही कीमत निर्धारण नीति को निर्देशित करता है। कीमत निर्धारित करते समय फर्म के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं :

**1. लाभ अधिकतमीकरण (Profit Maximisation)**—संपूर्ण वस्तु-श्रृंखला के लाभों को अधिकतम करना फर्म का प्रमुख उद्देश्य होता है। वह अपने निवेश पर लक्ष्य प्रतिफल पहले ही निश्चित कर लेती है।

2. **कीमत स्थिरता (Price Stability)**—किसी समयावधि के दौरान अपनी वस्तुओं की कीमतों को किसी विशेष स्तर तक स्थिर रखना फर्म का एक प्रमुख उद्देश्य होता है

3. **प्रतियोगिता रोकन (Preventing Competition)**—कीमत नीति निर्धारण के समय प्रबंधन का एक उद्देश्य यह भी होता है कि बाजार में अपना शेयर बढ़ाकर बाजार-नेतृत्व प्राप्त किया जाए। अल्पाधिकार की स्थिति में यह एक सामान्य बात है।

4. **प्रतियोगिता रोकन (Preventing Competition)**—प्रबंधन का एक उद्देश्य वस्तु-श्रंखला को प्रतियोगिता से बचना भी है। वह उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश को हतोत्साहित करना चाहता है। इस नीति के अन्तर्गत वह कम-से-कम कीमत रखने का प्रयास करता है।

5. **बाजार-विस्तार (Market Expansion)**—प्रबंधन का उद्देश्य नये बाजारों में प्रवेश करना भी होता है। इसके लिए वह अपनी वस्तुओं की सापेक्षिक रूप से कम कीमत रखता है।

6. **शीघ्र पुर्नलाभ (Early Expansion)**—कई फर्में इस उद्देश्य से भी अपनी कीमतें निर्धारित करती हैं कि उन्हें अपने निवेश पर शीघ्र-से-शीघ्र नकदी वसूली हो जाए क्योंकि भविष्य अनिश्चित है।

7. **नियमित आय (Regular Income)**—नियमित आय अर्जित करना भी फर्म का एक उद्देश्य होता है। इसलिए वह इसी उद्देश्य के अनुसार अपनी कीमत निर्धारित करती है।

8. **वस्तु-श्रंखला प्रोत्साहन (Product Line Promotion)**—फर्म कई स्थितियों में अपनी वस्तु-श्रंखला प्रोत्साहन के लिए भी कीमत निर्धारित करती है। वह अपनी लोकप्रिय वस्तु की कीमत कम रखती है लेकिन उसके साथ वस्तु-श्रंखला की कोई कम लोकप्रिय वस्तु भी खरीदनी पड़ती है जिससे फर्म की वह कम लोकप्रिय वस्तु भी बाजार में आ जाती है।

9. **समाज सेवा (Social Service)**—मूल्य निर्धारित करते समय फर्म का उद्देश्य समाज-कल्याण भी हो सकता है जिसके अन्तर्गत वह अपनी वस्तुओं को लागत-मूल्यों पर ही बेच देती है।

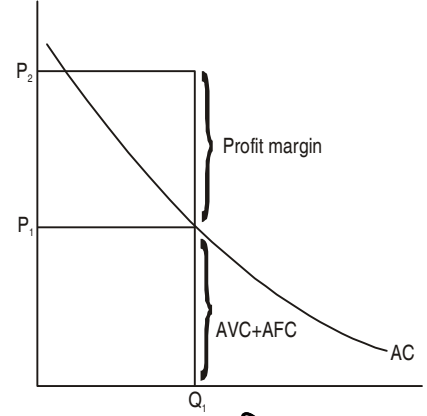
## 4. कीमत निर्धारण की विधियाँ (Pricing Methods)

कीमत निर्धारण की निम्न विधियाँ प्रमुख हैं :

### 1. लागत-जमा या पूर्ण लागत कीमत-निर्धारण (Cost-plus or Full-cost Pricing)

कीमत-निर्धारण की सर्वाधिक प्रचलित विधि लागत जमा विधि है। पूर्ण लागत जमा विधि है। पूर्ण लागत, पूर्ण औसत लागत है। जिसमें औसत प्रत्यक्ष (परिवर्तनशील) लागतें (AVC) जमा औसत ऊपरी लागतें (AFC) जमा और लाभ के लिए सामान्य राशि (normal margin)। इस प्रकार, कीमत,  $P = AVC + AFC + \text{Profit margin}$  (सामान्य: 10%)। हाल और हिच (1939) के अनुसार फर्मों को पूर्ण लागत कीमत निर्धारण नीति का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करने के कुछ कारण हैं : (i) उत्पादकों में मौन अथवा खुला कपटपूर्ण समझौता; (ii) उपभोक्ता को प्राथमिकताएं जानने में असफलता; (iii) कीमत में परिवर्तन में प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया; (iv) निष्पक्षता का नैतिक दृढ़ विश्वास; और (v) मूल्यों के घटने अथवा बढ़ने के प्रभावों की अनिश्चितता। ये सभी कारण अल्पाधिकार वाले उत्पादकों को पूर्ण लागत कीमत के अलावा अन्य कीमत का निर्धारण करने से रोकते हैं।

लागत-जमा विधि को चित्र 1 की सहायता से समझाया है चित्र में औसत स्थिर लागत (AFC) = OP औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) = PP<sub>1</sub> और AC कुल औसत लागत वक्र है। फर्म द्वारा OQ<sub>1</sub> उत्पादन करने पर उत्पादन करने पर औसत स्थिर लागत OP औसत परिवर्तनशील लागत PP<sub>1</sub> और लाभ राशि P<sub>1</sub>P<sub>2</sub> है। इस प्रकार, OQ<sub>1</sub> उत्पादन-मात्रा के लिए कुल औसत लागत OP<sub>1</sub> में लाभ राशि P<sub>1</sub>P<sub>2</sub> को जोड़कर OP<sub>2</sub> कीमत पर केवल OQ मात्रा ही बिकती है तो लाभ की प्राप्ति नहीं होगी केवल औसत लागत ही पूरी होगी। यदि बिक्री OQ से कम होती है तो फर्म को हानि होगी।



चित्र 1.

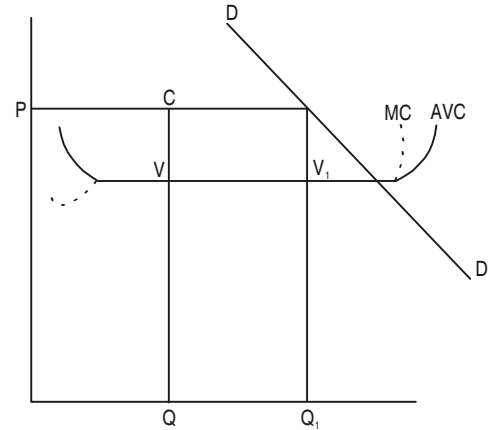
इस प्रकार, फर्म पूर्ण लागत नियम के आधार पर अपनी कीमत निश्चित करती है और मार्केट जितनी मांग करती है, उस कीमत पर बेचती है। हाल और हिच ने यह देखा कि बावजूद मांग और लागतों में परिवर्तनों के अल्पाधिकार मार्केट में कीमतें स्थिर होती हैं। उन्होंने कीमतों की स्थिरता को विकसित मांग वक्र के प्रयोग द्वारा समझाया।

परन्तु उत्पादन का स्तर कैसे निर्धारित होता है ? यह निम्न तीन में से किसी भी एक ढंग से निर्धारित होता है :

- (क) क्षमता उत्पादन की प्रतिशतता के रूप में, अथवा
- (ख) पिछली उत्पादन अवधि में बेचे गए उत्पादन के रूप में; अथवा
- (ग) न्यूनतम या औसत उत्पादन के रूप में जो भविष्य में फर्म बेचने की संभावना रखती है।

यदि फर्म नयी है अथवा एक वर्तमान फर्म है जो एक नई वस्तु को प्रारंभ करती है, तो इन तीनों में से पहली और तीसरी व्याख्या संगत होगी। ऐसे हालात में यह संभव है कि पहली लगभग प्लांट की क्षमता संभावित भविष्य की बिक्रियों पर निर्भर करेगी।

पूर्ण लागत कीमत निर्धारण की प्रो० एंड्रयूज द्वारा व्याख्या चित्र 2 में दर्शायी गई है जहां AC औसत प्रत्यक्ष अथवा परिवर्तनशील लागत वक्र है जो उत्पादन के एक विस्तृत रेंज में समानांतर सीधी रेखा है। MC इसके अनुरूप सीमांत लागत वक्र है। मान लीजिए फर्म उत्पादन का OQ स्तर चुनती है। उत्पादन के इस स्तर पर, QC फर्म की पूर्ण लागत है जो QV औसत प्रत्यक्ष लागत जमा लागत-निर्धारण सीमा (costing margin) VC से बनी है। इसलिए फर्म की बिक्री कीमत OP = QC। फर्म यही कीमत OP लेती रहेगी, लेकिन वह अपनी वस्तु की मांग पर निर्भर करते



चित्र 2.

हुए अधिक बेच सकती है, जैसा कि DD मांग वक्र द्वारा दिखाया गया है। ऐसी स्थिति में, वह OQ<sub>1</sub> वस्तु की मात्रा बेचेगी। यह कीमत मांग में परिवर्तन के कारण बदली नहीं जाएगी, बल्कि केवल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष साधनों में परिवर्तनों के कारण परिवर्तित की जाएगी।

### गुण (Merits)

इस विधि के निम्न गुण हैं :

1. यह विधि सरल और सहज है।

2. यह विधि निर्णय-निर्माण की लागत को कम करती है।
3. उपभोक्ता के दृष्टिकोण से इस विधि द्वारा कीमत-निर्धारण न्यायसंगत है।
4. यहां कीमत नेतृत्व फर्म के पास ही होता है।
5. चूंकि फर्म के सामने विचाराधीन वस्तु की मांग दशा अनिश्चित होती है, इसलिए भी लागत जमा कीमत-निर्धारण अधिक उपयुक्त है।
6. यह विधि फर्म के लाभ अधिकतमीकरण उद्देश्य को पूरा करती है।

#### दोष (Demerits)

मैक्लप, राबिन्सन, काहन तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण लागत कीमत निर्धारण विधि की निम्नलिखित आधार पर कड़ी आलोचनाएं की हैं :

**1. मांग पक्ष का उपेक्षा (Ignores Demand-side)**—यह विधि कीमत-निर्धारित करते समय बाजार मांग की अपेक्षा करती है, जबकि वस्तु की लागत और उस वस्तु के लिए उपभोक्ता कितना भुगतान करेगा, इसमें कोई आवश्यक संबंध नहीं है।

**2. फर्म स्थिर कीमतों का अनुसरण नहीं करती (Firms do not Follow Rigid Prices)**—पूर्ण लागत कीमत-निर्धारण विधि की स्थिर कीमत से जुड़े रहने के कारण आलोचना की गई है। फर्म प्रायः मन्दी के दौरान अपनी स्टॉक को बेचने के लिए कीमतों में कमी कर देती है और तेजी के दिनों में लागत बढ़ने पर वे कीमतों में वृद्धि कर देती है। अतः फर्म प्रायः स्थिर कीमत नीति की अपेक्षा स्वतन्त्र मूल्य नीति का अनुसरण करती है।

**3. लाभ सीमा अस्पष्ट धारणा (Profit Margin Value Concept)**—इस विधि में यह स्पष्ट नहीं है कि 'लागत-निर्धारण सीमा' का निर्धारण कैसे होता है तथा फर्म द्वारा इसका पूर्ण लागत में कैसे दाम लगाया जाता है ? फर्म अपनी वस्तु की लागत और मांग पर निर्भर करते हुए उचित लाभ सीमा के रूप में कम या अधिक दाम ले सकती है।

**4. कमजोर आनुभविक आधार (Weak Empirical Basis)**—पूर्ण लागत सिद्धांत का प्रयोगसिद्ध आधार पर दो कारणों से कमजोर हैं : (i) वह 30 फर्म जिन्होंने इस सिद्धान्त को अपनाया था, उनमें से केवल 12 ने इस सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया। (ii) अधिकतर फर्म लोच के औचित्य के बारे में इतनी स्पष्ट नहीं थी और बहुत-सी फर्मों ने मांग की लोचशीलता का अनुमान लगाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया।

**5. पूर्ण लागत कीमत निर्धारण नियम कड़ाई से नहीं अपनाया जाता (Full Cost Principle not Strictly Followed)**—इसके अलावा इंग्लैंड और अमेरिका में उद्योगों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया के प्रयोगसिद्ध अध्ययनों से पता चलता है कि कीमतों का अनुमान लगाने की विधि फर्मों द्वारा औसत लागत श्रेणी के अनुमानों से शुरू होती है। परन्तु फर्मों द्वारा अनुसरण की जानी वाली सही विधियां पूर्ण लागत के सिद्धांत को कड़ाई से नहीं अपनाती।

**6. नाशवान वस्तु पर लागू नहीं (Not Applicable to Perishable Goods)**—इस विधि का प्रयोग नाशवान वस्तुओं के कीमत-निर्धारण के संदर्भ में नहीं किया जा सकता।

**7. फर्म सीमांत नियम को अपनाती हैं (Firms follow Marginal Principle)**—इयरले (Earley) ने फर्मों में पूर्ण लागत सिद्धांत के प्रति व्यापक अविश्वास देखा। उसने बताया कि फर्मों ने सीमांत-लेखांकन और लागत-सम्बन्धी सिद्धांत का अनुसरण किया है और इनमें से अधिकांश फर्मों ने कीमत-निर्धारण, विपणन और नयी वस्तु की नीति अपनाई उसने इस फर्मों के कीमत-निर्धारण सम्बन्धी सिद्धांत को 'उड़ता हुआ सीमांतवाद' कहा है।

इन आलोचनाओं के बावजूद पूर्ण लागत कीमत निर्धारण सिद्धांत वास्तविक व्यावसायिक फर्मों के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया यह पहला प्रयास था।

## 2. प्रतिफल की दर अथवा लक्ष्य कीमत निर्धारण

### (Rate of Return or Target Pricing)

यह विधि लागत-जमा कीमत-निर्धारण विधि का संशोधित रूप है। इसके अन्तर्गत (a) कीमत का निर्धारण निवेश पर एक निश्चित प्रतिफल की दर से बराबर होता है; अथवा (b) लाभ, कुल बिक्री का एक निश्चित प्रतिशत के रूप में कायम रखकर लिया जाता है; या (c) लागतों के ऊपर एक निश्चित प्रतिशत को कायम रखते हुए किया जाता है।

इस विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम कुल लक्ष्य लाभ को ज्ञात किया जाता है। जिसके लिए निम्न सूत्र है :

$$\text{लक्ष्य लाभ} = C_R$$

जहां  $C$  = निवेश की गई पूंजी और  $R$  = प्रतिफल की लक्ष्य दर है।

अब लक्ष्य लाभ के लिए लागत पर अतिरिक्त राशि ज्ञात करने के लिए कुल लक्ष्य लाभ को उत्पादन के बजटीय स्तर से विभाजित किया जाता है। सूत्र के अनुसार,

$$M = \frac{C_R}{Q_b}$$

जहां  $M$  = अतिरिक्त राशि;  $C_b$  = उत्पादन का बजटीय स्तर और  $C_R$  = लक्ष्य लाभ है।

**आलोचनाएं (Criticism)**—इस विधि की आलोचनाएं निम्न आधार पर की गई हैं :

1. इस विधि द्वारा कीमत-निर्धारित करते समय बाजार मांग की उपेक्षा होती है।
2. यह विधि प्रतियोगी शक्तियों पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं करती है।
3. यह विधि नाशवान वस्तु उद्योगों में लागू नहीं होती।
4. फर्मों मंदी के दौरान कीमतों में कमी और तेजी के दौरान कीमतों में वृद्धि करती हैं। इस प्रकार, वे प्रायः स्थिर कीमत नीति की अपेक्षा स्वतंत्र कीमत नीति का अनुसरण करती हैं।
5. उचित लाभ सीमा या लागत-निर्धारण सीमा, जैसा **एंड्रयूज** ने भी कहा है, अस्पष्ट है।

## 3. सीमान्त या वृद्धिगत लागत-कीमत-निर्धारण

### (Marginal or Incremental Cost Pricing)

सीमान्त अथवा वृद्धिगत लागत कीमत-निर्धारण विधि लागत-जमा कीमत-निर्धारण विधि का संशोधित रूप है। लागत-जमा कीमत-निर्धारण और लक्ष्य कीमत-निर्धारण औसत कुल लागत पर आधारित है एवं सीमान्त लागत कीमत-निर्धारण विधि का आधार सीमान्त लागत है। कई स्थितियों में फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण नहीं, बल्कि अधिकतम समाज कल्याण होता है। ऐसी स्थिति में और जैसा कि हम पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में भी विश्लेषण करते हैं, बाजार शक्तियों के कारण कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है। अर्थात् इस विधि के अन्तर्गत वस्तु की सीमान्त लागत को आधार मानते हुए इसमें लाभ-राशि को जोड़कर उस वस्तु की कीमत निर्धारण की जाती है।

### गुण (Merits)

इस विधि के मुख्य गुण निम्न हैं :

1. यह विधि सर्वाधिक न्यायसंगत है क्योंकि इसका उद्देश्य अधिकतम समाज कल्याण है।
2. इस विधि द्वारा कीमत-निर्धारण से बिक्री, लाभ और उत्पादन बढ़ता है एवं उत्पादन साधनों की कीमतें कम होती हैं।

3. यह विधि वस्तु के जीवन-चक्र संबंधी कीमत-निर्धारण के लिए विशेष उपयोगी है।
4. यह विधि लागत-स्तरों और लागत संबंधों से संबंधित भविष्य की जानकारी को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है।
5. विशेषकर विविध वस्तु, विविध प्रक्रिया और विविध बाजार वाली फर्मों की दशा में यह विधि अधिक उपयुक्त है। ऐसी स्थितियों में लागत-जमा कीमत-निर्धारण बिल्कुल निरर्थक है क्योंकि विभिन्न वस्तुओं, प्रक्रियाओं और बाजारों का लागतों का प्रभाव समान रूप से नहीं होता है।

#### **दोष (Demerits)**

इन गुणों के बावजूद सीमान्त लागत निर्धारण विधि के निम्न दोष हैं :

1. यह विधि अधिक जटिल है। कई स्थितियों में लेखापाल इस विधि का प्रयोग करने में सक्षम नहीं होते हैं।
2. इस विधि का प्रयोग केवल अल्पकाल में अस्थायी रूप से हो सकता है। इससे दीर्घकालीन स्थायी कीमत नीति निर्धारित नहीं की जा सकती।
3. मंदी की स्थिति में फर्मों द्वारा सीमान्त लागत कीमत-निर्धारण विधि अपनाने से गला-काट प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न होगी।

#### **4. चालू-दर कीमत-निर्धारण (Going Rate Pricing)**

इस विधि द्वारा कीमत-निर्धारण का आधार लागत नहीं, बल्कि बाजार की स्थिति होता है। इसे बाजार निर्धारित या प्रतियोगिता उत्पन्न करने वाली कीमत निर्धारण नीति भी कहते हैं। इस विधि के अन्तर्गत यद्यपि फर्म अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित कर सकती है परन्तु वह ऐसा नहीं करती है। वह अपनी कीमत नीति को उद्योग या बाजार में चालू सामान्य कीमत-निर्धारण ढांचे के अनुसार समायोजित करती है। इस विधि द्वारा पूर्णतः प्रतियोगी उद्योग में वस्तु की कीमत फर्मों पर बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। कीमत-निर्धारण की यह विधि पूर्ण प्रतियोगिता के साथ-साथ अल्पाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में भी प्रयोग की जाती है। चालू दर कीमत-निर्धारण विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब—(a) वस्तु की लागतों का माप करना कठिन हो, या (b) फर्म बाजार में कीमत प्रतिद्वन्द्विता से तंग आ गई हो, या (c) बाजार में किसी प्रभावशाली फर्म का कीमत-नेतृत्व हो।

#### **गुण (Merits)**

इस विधि के निम्न गुण हैं :

- (1) यह विधि अति सरल है क्योंकि इसमें प्रतियोगी वस्तु की जो कीमत होती है, वही कीमत फर्म द्वारा अपना ली जाती है।
- (2) यह विधि कीमत-निर्धारण की सर्वाधिक सुरक्षित विधि है, क्योंकि यह अन्य प्रतियोगी फर्मों द्वारा सिद्ध होती है।
- (3) यह विधि अल्पाधिकारात्मक बाजार को कीमत प्रतियोगिता से बचाती है।
- (4) यह विधि लागतों को ठीक-ठीक गणना करने की अपेक्षा कम कठिन और कम खर्चीली है।

#### **दोष (Demerits)**

इन गुणों के बावजूद इस विधि के निम्न दोष हैं :

- (1) इस विधि के अन्तर्गत फर्म अपने नेता की पूरी जानकारी के लिए ही उसका अनुसरण करती है।



(2) इसके अन्तर्गत कीमत का प्राथमिक निर्धारक न तो लागत है और न ही मांग। अतः यह एक जटिल विधि है।

(3) विशेषकर उन उद्योगों में जहां फ़र्म भिन्न-भिन्न वस्तुएँ उत्पादित करती है, प्रबंधन का विवेकाधिकार अनुचित रूप से बढ़ जाता है।

(4) इस विधि द्वारा कीमत-निर्धारण की सबसे बड़ी कमी है कि यह फ़र्म द्वारा लाभ अधिकतमीकरण की कोई गारंटी नहीं देती है।

(5) इस विधि को अपनाने से उद्योग स्थिर हो जाएगा एवं उद्योग में नई फ़र्म आकर्षित होंगी।

## 5. विभेदी कीमत-निर्धारण (Differential Pricing)

यह कीमत-निर्धारण की एक महत्वपूर्ण विधि है, यद्यपि यह कई वर्षों से विवादास्पद रही है। इसके अन्तर्गत विभिन्न बाजारों में वस्तु की विभिन्न कीमतें ला जाती है। के० के० सेओ के अनुसार, "इसे एक ऐसी पद्धति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक विक्रेता द्वारा समान लागत में अन्तर पर विचार किए बिना समान वस्तु के लिए एक ही क्रेता से या विभिन्न क्रेताओं से विभिन्न कीमतें ली जाती है।" विभेदी कीमत-निर्धारण की कई निम्न शर्तें हैं जो इसके लिए आधार तैयार करती हैं :

1. **समय विभेदक (Time Differentials)**—किसी वस्तु की मांग पर समय तत्व का प्रभाव भी होता है। वस्तु की मांग अल्पकालीन अन्तरों पर भी परिवर्तित हो सकती है। अर्थात् कीमत-निर्धारण में समय विभेदक इस तथ्य पर आधारित है कि क्रेताओं की मांग लोच समय के अन्तर पर परिवर्तित होती है। समय विभेदक निम्न दो प्रकार के होते हैं :

(i) **क्लॉक-समय विभेदक (Clock-Time Differentials)**—जब क्रेताओं की मांग लोच एक दिन में ही परिवर्तित हो जाती है तो एक दिन के भीतर समयों में एक ही वस्तु या सेवा की भिन्न-भिन्न कीमतें ली जा सकती है। उदाहरणार्थ, लंबी दूरी के टेलिफोन कॉल पर दिन और रात्रि दरों के बीच अन्तर।

(ii) **कैलेंडर समय विभेदक (Calendar Time Differentials)**—इसके अन्तर्गत कीमत विभेदक एक दिन के भीतर लोच अन्तरों पर नहीं, बल्कि एक दिन से अधिक समयों के बीच लोच अन्तरों पर आधारित होता है, जैसे होटल उद्योग में सीजन के दौरान ऊंची दर वसूल की जाती है जबकि जाड़े में ये दरें घटा दी जाती है।

2. **गुणवत्ता विभेदक (Quality Differentials)**—वस्तु की गुणवत्ता मांग लोच महत्वपूर्ण निर्धारक होती है। अतः विक्रेता वस्तु की गुणवत्ता में अन्तर कर उसकी कीमत में अन्तर कर सकता है।

3. **मात्रा विभेदक (Quantity Differentials)**—इसके अन्तर्गत विक्रेता खरीद की मात्रा के आधार पर कीमत में भेद कर सकता है। इसके निम्न तीन मुख्य रूप हैं :

(i) **संचयी बट्टा (Cumulative Discount)**—संचयी बट्टा किसी विशेष क्रेता द्वारा किसी विशेष समय अवधि में खरीदी गयी कुल मात्रा पर आधारित होता है।

(ii) **मात्रा बट्टा (Functional Discount)**—यह ऐसी कीमत छूट होती है जो किसी एक समय में खरीदी गई और किसी एक स्थान पर सुपुर्द की गई मात्रा के आधार पर दी जाती है। यह मात्रा जितनी अधिक होगी, छूट भी उतनी ही अधिक होगी।

(iii) **कार्यात्मक बट्टा (Functional Discount)**—इसे सामान्यतः वितरण बट्टा भी कहा जाता है। इस प्रकार की कीमत छूट, वितरकों को वस्तुओं के वितरण में उनकी स्थिति के अनुसार

दी जाती है। अर्थात् यह छूट उत्पादकों द्वारा क्रेताओं के व्यापार वर्गीकरण अर्थात् थोक विक्रेता, फुटकर या खुदरा विक्रेता आदि के अनुसार दी जाती है।

**4. वस्तु प्रयोग विभेदक (Product Use Differential)**—यह कीमत छूट क्रेताओं को उनके द्वारा वस्तुओं के प्रयोग के अनुसार दी जाती है। उदाहरणार्थ, बिजली विभाग आवासीय और व्यावसायिक कॉलों के लिए अलग-अलग दर निर्धारित करता है।

## 6. फुटकर कीमत-निर्धारण (Retail Pricing)

फुटकर विक्रेता वस्तु की कीमत-निर्धारण करते समय उस वस्तु को खरीदने की लागत के ऊपर उस बिक्री करने की लागत को जोड़ देता है। इनकी लागत और विक्रय कीमत के अन्तर को सकल लाभ अन्तर (gross profit margin) कहते हैं। सकल लाभ अन्तर से उसकी विक्रय लागतों को घटाने से शुद्ध लाभ अन्तर (net profit margin) प्राप्त किया जा सकता है। गफ और हिल के अनुसार, 'फुटकर विक्रेताओं के लिए कीमत-निर्धारण की सामान्य विधि यह है कि उत्पादकों द्वारा वस्तुओं की अनुशंसित बिक्री कीमत को बताया जाए और फिर उसमें से व्यापार बट्टा सकल लाभ मार्जिन के बराबर होगा। फुटकर विक्रेताओं द्वारा कीमत-निर्धारण और उत्पादकों द्वारा कीमत-निर्धारण के बीच के अन्तर को हम निम्न रूप से स्पष्ट करेंगे :

1. फुटकर विक्रेताओं की मुख्य लागतें स्पष्ट और स्थिर होती हैं जबकि उत्पादकों द्वारा कीमत निर्धारण भविष्य की अस्पष्ट अनुमानित लागतों पर आधारित होता है।

2. फुटकर विक्रेता वस्तु को सीधे उपभोक्ता को बेचते हैं जिन्हें बाजार की अधिक जानकारी नहीं होती। दूसरी ओर उत्पादक सामान्यतः अन्य व्यवसायियों को बेचते हैं जिन्हें बाजार की पूरी जानकारी होती है।

3. उत्पादक वस्तु की कीमत-निर्धारित करते समय लागत, मांग और प्रतियोगी दशाओं पर विचार करता है, जबकि फुटकर विक्रेता अपनी वस्तुओं की कीमत बीजक (invoice) लागत के आधार पर निर्धारित करते हैं।

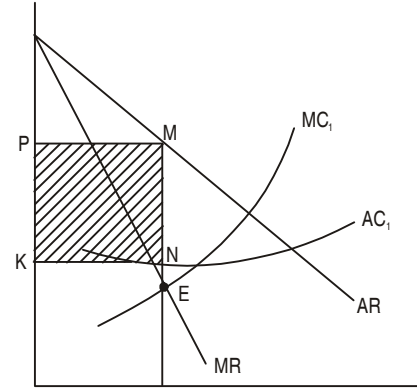
4. फुटकर विक्रेता कई संबंधित वस्तुओं को बेचते हैं। वे अलोकप्रिय वस्तुओं को बेचने के उद्देश्य से प्रायः लोकप्रिय वस्तुओं की कीमत कम रखते हैं जबकि उत्पादकों के साथ ऐसी स्थिति नहीं होती है।

## 7. अग्रणी कीमत-निर्धारण अथवा नई वस्तु की कीमत-निर्धारण (Pioneer Pricing or New Product Pricing)

यहां नई वस्तु से हमारा अभिप्राय वैसी वस्तु से है जो बाजार में उपलब्ध किसी अन्य वस्तुओं से क्रियात्मक रूप से असमान हो। ऐसी वस्तु की कीमत-निर्धारित करते समय समस्या यह है कि (i) उत्पादित होने वाली नई वस्तु की मांग क्या होगी ? (ii) यदि वस्तु की निकट स्थानापन्न है तो स्थानापन्नता की अनुमानित वास्तविक कोटि (degree) क्या होगी ? (iii) वस्तु की विनिर्माण और विपणन लागत क्या होगी ? इसके अतिरिक्त, यह बात भी महत्वपूर्ण होती है कि उत्पादन की मात्रा और तकनीकी ज्ञान में परिवर्तन के साथ लागत ढांचा भी परिवर्तित हो जाता है। साथ ही, नई वस्तु लाने के पीछे फर्म का क्या उद्देश्य है। इन समस्याओं के बीच नई वस्तु की कीमत-निर्धारित करते समय निम्न दो प्रकार की नीतियों को अपनाया जा सकता है :

(1) **मलाई उतारने वाली कीमत नीति (Skimming Price Policy)**—इस नीति के अन्तर्गत नई वस्तु का बाजार में प्रवेश करते समय उत्पादक उस वस्तु की अपेक्षाकृत ऊंची कीमत निर्धारित करता है और बिक्री प्रोत्साहन पर भारी खर्च करता है ताकि बाजार में मलाई उतारी जा सके। वह यह मानकर चलता है कि दीर्घकाल में जब वस्तु की प्रभावी मांग कम होनी शुरू हो जाएगी तो उसका लाभ भी कम हो जाएगा।

इस नीति को चित्र 3 द्वारा दर्शाया गया है। चित्र 3 में नई वस्तु का निर्माता प्रारंभ में अधिक कीमत OP रखता है तथा उसकी OQ मात्रा बेचता है। इस प्रकार वह KPMN असामान्य लाभ प्राप्त करता है। इस कीमत नीति में उत्पादक द्वारा उपभोक्ता की वस्तु के प्रति इच्छा की तीव्रता के आधार पर उनमें भेद किया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि कम्प्यूटर, टी०वी०, इलैक्ट्रॉनिक कैलकुलेटर आदि की प्रारंभिक कीमत काफी ऊंची थी जो अब वर्ष-प्रतिवर्ष घटती जा रही है।



चित्र 3.

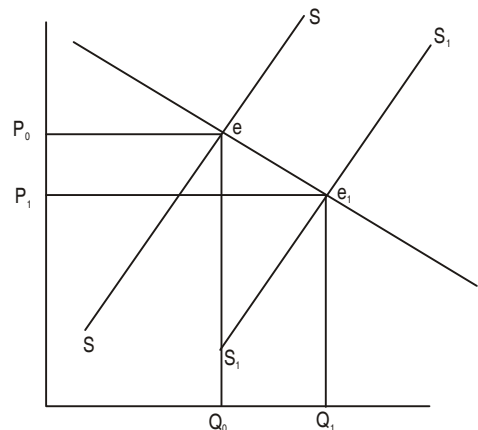
### इसकी उपयोगिता (Its Usefulness)—

इस कीमत नीति के निम्न औचित्य या उपयोगिताएं हैं :

1. किसी वस्तु की मांग प्रारंभिक दिनों में बाद के दिनों की अपेक्षा कम कीमत लोच होती है क्योंकि अग्रणी (pioneer) उपभोक्ता प्रारंभ में ऊंची कीमत पर भी वस्तु को खरीदेंगे। इसलिए फर्म को नई वस्तु के लिए मलाई उतारने वाली कीमत नीति अपनानी चाहिए।
2. इस कीमत नीति का एक लाभ यह भी है कि वस्तु की ऊंची कीमत से उसकी गुणवत्ता वाली छवि बनती है और बिक्री बढ़ती है।
3. इस नीति से वस्तु की लागत जल्दी पूरी हो जाती है। अतः यह एक सुरक्षित कीमत नीति है।
4. यदि वस्तु का जीवन-काल छोटा हो तो यह कीमत-नीति और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।
5. यह कीमत नीति विभिन्न लोचों के आधार पर बाजार को विभाजित करके कीमत-निर्धारित करने का अवसर प्रदान करती है।

(2) **प्रवेश कीमत नीति (Penetration Price Policy)**—यह एक ऐसी कीमत-नीति है जिसके अन्तर्गत बड़े बाजारों में शीघ्र प्रवेश करने के लिए प्रारंभ में वस्तु की कीमत निम्न स्तर पर रखी जाती है। इन बाजारों में क्रेता वस्तु की नवीनता के लिए ऊंची कीमत नहीं देना चाहता। अतः रखकर बिक्री की मात्रा में वृद्धि और वस्तु की इकाई लागत में कमी करना चाहती है। अर्थात् फर्म द्वारा नीची कीमत नीति अपनाने का उद्देश्य अल्पकालीन लाभ नहीं बल्कि प्रतियोगिता का हतोत्साहित कर दीर्घकालीन लाभ कमाना होता है।

चित्र 4 में बाजार कीमत  $OP_0$  और मांगी गई मात्रा OQ है। अब नई वस्तु का उत्पादक बाजार कीमत से कम कीमत अर्थात्  $OP_1$  निश्चित करता है और  $OQ_1$  अधिक मात्रा बेचता है। स्पष्टतः इसका विस्तृत संभावित बाजार होता है।



चित्र 4.

### इसकी उपयोगिता (Its Usefulness)—

इस कीमत नीति के निम्न औचित्य या उपयोगिताएं हैं :

1. स्वाभाविक है कि यदि वस्तु की कीमत नीची होगी तो बिक्री बढ़ेगी और इकाई लागत कम होगी। अतः इस कीमत नीति का व्यावहारिक महत्व है।

2. यह कीमत-नीति विशेषकर ऐसी बाजार दशा में अधिक उपयोगी है जहां अल्पकालीन कीमत लोच अधिक होती है।
3. यदि उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश की संभावना है तो फर्म बाजार में एक बड़े भाग पर अधिकार करने के लिए यह कीमत-नीति अति उपयोगी है।
4. यदि वस्तु सामूहिक उपभोग की हो तो यह कीमत-नीति फर्म के लिए अधिक उपयोगी है।
5. यह कीमत नीति उस वस्तु के संदर्भ में और भी अधिक उपयोगी है जिसका कोई पेटेन्ट संरक्षण नहीं हो।

### निष्कर्ष (Conclusion)

परन्तु यह कीमत नीति उस वस्तु के संदर्भ में अच्छी नहीं है जिसका बाजार छोटा रहने की संभावना हो। साथ ही इसके अन्तर्गत निवेश की गई पूंजी दीर्घ अवधि में वापस आती है। अतः इस बात की जोखिम बनी रहती है कि बाद के प्रवेशकर्ता तत्कालीन बेहतर उत्पादन तकनीकों का प्रयोग कर अग्रणी फर्म की वास्तविक लागत से कम कीमत पर बेचना न शुरू कर दें।

निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि उद्योग में नये प्रतियोगियों के संभावित प्रवेश की संभावना को रोकने के लिए नीची प्रवेश कीमत नीति अपनायी जानी चाहिए। परन्तु फर्म के लिए एक उचित कीमत नीति इस बात पर निर्भर करेगी कि वह किन विशेष परिस्थितियों में काम कर रही है। फर्म को स्थानापन्न वस्तु की कीमतों पर आवश्यक विचार करना चाहिए। यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमतें भी ऊंची है या ये दूर की स्थानापन्न है तो फर्म के लिए मलाई उतारने वाली कीमत नीति उचित होगी। अन्यथा, सामान्य स्थिति में फर्म द्वारा वस्तु को विशाल बाजार की पहुंच के अन्दर लाने के लिए नीची प्रवेश कीमत नीति अपनानी चाहिए। ऐसी स्थिति में कीमत-संवेदनशीलता (price sensitive) क्रेता उस वस्तु को खरीदेंगे जिससे बिक्री बढ़ेगी और फर्म को बड़े पैमाने की मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी।

## 5. वस्तु-श्रंखला कीमत-निर्धारण (Product-Line Pricing)

कई फर्म विविध वस्तुएं उत्पादित करती हैं जिससे फर्म की एक वस्तु-श्रंखला तैयार होती है। ये वस्तुएं एक-दूसरे से स्थानापन्न अथवा पूरक के रूप से संबंधित होती हैं। फर्म की वस्तु-श्रंखला कीमत-निर्धारित करते समय मांग की प्रतिलोच पर विचार करना अति आवश्यक होता है। हम नीचे स्थानापन्न और पूरक वस्तुओं की कीमत-निर्धारण की चर्चा अलग-अलग कर रहे हैं।

**स्थानापन्न वस्तुओं का कीमत-निर्धारण (Pricing of Substitute Products)**—फर्म अपनी वस्तु-श्रंखला में स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन विभिन्न मांग लोच वाले मांग क्षेत्रों को अलग करने के उद्देश्य से करती है, ताकि अपने संपूर्ण लाभ को अधिकतम किया जा सके। उदाहरणार्थ, मारुति उद्योग लि० मारुति 800, मारुति जेन, आल्टो, स्टीम, ब्लेनो आदि का उत्पादन करती है। ये स्थानापन्न वस्तुएं उपभोक्ताओं की अभिरुचियों, अधिमानों और विभिन्न आय वर्ग के लोगों को ध्यान में रखते हुए उत्पादित की जाती हैं। वस्तु-श्रंखला को ऐसी वस्तुएं अन्य फर्मों की समान वस्तुओं के साथ प्रतियोगिता करती हैं। साथ ही वे फर्म के भीतर भी एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं क्योंकि वे समान आवश्यकताएं पूरा करती हैं।

स्थानापन्न वस्तुओं के लिए वस्तु-श्रंखला कीमत-निर्धारण की सामान्यतः दो विधियां हैं :

**पहली विधि मूल्य-बढ़ाव कीमत-निर्धारण (Milk-up Pricing)** की है। उत्पादक इसके अन्तर्गत अपनी संपूर्ण वस्तु-श्रंखला के लिए एक ही विधि द्वारा कीमत निर्धारित करता है। साथ ही, श्रंखला की सभी समान वस्तुओं के लिए समान लाभ राशि (margin) प्रयोग की जाती है। इसमें वस्तुओं की कीमत लागतों के अनुपात में निर्धारित की जाती है।

**दूसरी विधि** के अन्तर्गत वस्तु की कीमत लागतों के स्तर के साथ लाभ-राशि की मात्रा को परिवर्तित कर निर्धारित की जाती है। इसलिए वस्तु की लागत जितनी अधिक होगी, लाभ की राशि उतनी ही अधिक होगी और स्वाभाविक है, कीमत भी उतनी ही अधिक होगी। ऑटोमोबाइल उद्योग में कीमत-निर्धारण इस विधि का एक उदाहरण हो सकता है।

यद्यपि ये दोनों विधियां मांग, प्रतियोगी दशाओं और श्रंखला की प्रत्येक वस्तु की बाजार परिपक्वता की कोटि में अन्तर पर कोई विचार नहीं करती, साथ ही लेखा विधि द्वारा संयुक्त लागतों को विभाजित करना भी न्यायसंगत नहीं है।

इस प्रकार, वस्तु-श्रंखला में स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत ऐसी होनी चाहिए जिससे फर्म द्वारा बाजार क्षेत्रों के बीच मांग लोचों के भेद का लाभ उठाया जा सके और अधिकतम अंशदान राशि (contribution margin) की प्राप्ति हो।

**संयुक्त वस्तुओं अथवा पूरक वस्तुओं की कीमत-निर्धारण (Pricing of Joint Products or Complementary Products)**—जिन वस्तुओं की संयुक्त मांग होती है, वे वस्तुएं पूरक कहलाती हैं। एक वस्तु की कीमत गिरने से दूसरी वस्तु की मांग बढ़ जाती है, और विलोमशः भी। फर्म अपनी वस्तु-श्रंखला में पूरक वस्तुओं का उत्पादन इसलिए करती है ताकि इन वस्तुओं की मांग की प्रति लोच (cross elasticity) का लाभ उठाया जा सके। उत्पादक, वस्तु-श्रंखला की किसी वस्तु को हानि पर बेचकर भी लाभ की स्थिति में हो सकता है, यदि पूरक वस्तु और औसत से अधिक लाभ राशि पर बिक जाती है। पूरक वस्तुओं के कीमत-निर्धारण की सामान्यतः तीन नीतियां हैं जो निम्न हैं :

**1. हानि अग्रणी (Loss Leaders)**—इस कीमत-नीति के अन्तर्गत, वस्तु बीजक (Invoice) लागत से कम पर या प्रचलित कीमत से बहुत नीची कीमत पर बेच दी जाती है और इसका विज्ञापन द्वारा प्रचार किया जाता है। इस कीमत का विज्ञापन द्वारा प्रचार किया जाता है। इस कीमत नीति का प्रयोग अधिकांशतः परचून विक्रय में होता है। इस कीमत नीति का उद्देश्य ग्राहकों को अन्य वस्तुएं खरीदने के लिए आकर्षित करना और उनकी रुचि पैदा करना है जिससे मांग वक्र दाईं ओर सरक जाए।

यदि वस्तु की कीमत बीजक लागत से कम रखने के कारण हुई हानि से पूरक वस्तुओं से प्राप्त अप्रत्यक्ष लाभ अधिक हो जाए तो विचाराधीन वस्तु या हानि अग्रणी पर प्रत्यक्ष हानि का कोई महत्त्व नहीं होगा। साथ ही यह नीति अपनाते समय फर्म की संभावना होती है। कि वर्तमान हानि भविष्य की बिक्री और लाभ को प्रोत्साहित करेगी।

अतः कीमत नीति को हानि अग्रणी कहना उचित नहीं है। वास्तव में, एक कुशल प्रबंधन हानि अग्रणी वस्तुओं का सही चुनाव और कीमत-निर्धारण कर अपना लाभ बढ़ा सकता है।

**2. बिक्री सम्बद्ध (Tie-in Sales)**—इस कीमत-नीति में ग्राहकों को उनकी अधिमानित वस्तुओं की खरीद के साथ बिकने वाली अन्य वस्तुओं की खरीद को जोड़ दिया जाता है जिससे विक्रेता ग्राहक को एक संयुक्त वस्तु प्रस्तुत करता है। आजकल कई पैकेज वाली वस्तुओं के साथ "एक खरीदो और एक मुफ्त पाओ" का प्रस्ताव है जो बिक्री सम्बद्ध कीमत-नीति का उदाहरण है।

**3. द्विभागीय शुल्क (Two-Part Tariff)**—इस कीमत-नीति के अन्तर्गत क्रेता संयुक्त वस्तु के लिए दो कीमतें देता है। इसके स्थिर भाग के लिए उपयोगिता से असम्बद्ध एक निश्चित कीमत और दूसरे भाग जैसे सेवाओं के परिवर्तित प्रवाह के लिए एक अलग कीमत ली जाती है। उदाहरणार्थ, बिजली विभाग द्वारा बिजली तार एवं मीटर के लिए एक निश्चित कीमत और बिजली प्रयोग के अनुसार उसके यूनिट की अलग कीमत ली जाती है।

इस प्रकार, वस्तु-श्रंखला कीमत-निर्धारण का प्रमुख उद्देश्य श्रंखला की सभी वस्तुओं की कीमतों का एक उपयुक्त ढांचा तैयार करना है जिससे समग्र रूप में सर्वाधिक लाभ की प्राप्ति हो।

## 6. स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण (Transfer Pricing)

बड़ी फर्म अपने कार्य प्रायः कई विभागों में बांटकर करती हैं। इसमें एक विभाग की वस्तु दूसरे विभाग द्वारा प्रयोग की जाती है। इस स्थिति में फर्मों के सामने यह समस्या होती है कि एक विभाग या उपविभाग से दूसरे विभाग को स्थानान्तरित वस्तु के लिए उचित कीमत क्या होनी चाहिए? अर्थात् स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण से अभिप्राय संगठन के भीतर परस्पर निर्भर इकाइयों या विभागों के बीच स्थानान्तरित वस्तुओं या सेवाओं की कीमत-निर्धारण से है। यह संगठन में लाभ कमाने वाले विभागों की आर्थिक उपलब्धि का माप करने का कार्य करता है।

**उद्देश्य**—स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण करते समय फर्म के निम्न उद्देश्य होते हैं :

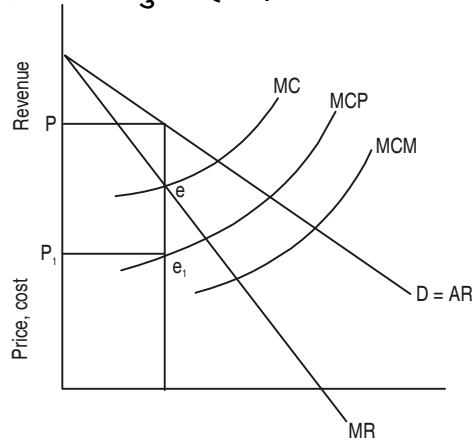
1. फर्म का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि उसका लक्ष्य और संबंधित विभाग का लक्ष्य एक ही हो।
2. स्थानान्तरित वस्तु की एक ऐसी कीमत निर्धारित की जाए जिससे प्रत्येक विभाग की लाभप्रदता सुनिश्चित हो।
3. कीमत ऐसी होनी चाहिए जो किसी विशेष विभाग की अपेक्षा संपूर्ण कंपनी के लाभों के अधिकतमीकरण को प्रोत्साहित करें।

स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण करते समय कई भिन्न-भिन्न स्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

### 1. स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण : बाह्य बाजार की अनुपस्थिति (Transfer Pricing : Absence of an External Market)

यदि किसी मध्यवर्ती (intermediate) वस्तु का कोई बाह्य बाजार नहीं हो तो इस स्थिति में स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण उत्पादक की सीमान्त लागत के अनुसार होगा।

मान लिया कि फर्म के दो स्वतंत्र विभाग हैं: उत्पादन विभाग और विपणन विभाग। उत्पादन विभाग एक वस्तु का उत्पादन करता है जो उसी फर्म के विपणन विभाग को बेच देता है। जिस कीमत पर बेचता है उसे ही स्थानान्तरण कीमत कहते हैं। आगे, विपणन विभाग उस वस्तु की पैकेजिंग कर अंतिम वस्तु का रूप देता है और बाहर लोगों को बेच देता है। हम यह भी मान लेते हैं कि उत्पादन विभाग द्वारा निर्मित उस वस्तु का फर्म के बाहर कोई बाजार नहीं है। अर्थात् विपणन विभाग उस वस्तु की पूर्ति के लिए



चित्र 5.

उत्पादन विभाग पर और उत्पादन विभाग पर और उत्पादन विभाग उस वस्तु की मांग के लिए विपणन विभाग पर पूर्णतः निर्भर है। अतः उत्पादन विभाग द्वारा निर्मित वस्तु की संपूर्ण मात्रा विपणन विभाग द्वारा बिक्री की गई मात्रा के बराबर होनी चाहिए।

चित्र 5 में  $MC_p$  और  $MC_M$  क्रमशः उत्पादन विभाग और विपणन विभाग के लागत वक्र हैं और  $MC$  फर्म का लागत वक्र है।  $MC$  वक्र  $MC_p$  और  $MC_M$  का जोड़ है। अंतिम वस्तु के लिए फर्म का मांग वक्र  $D_F$  और सीमान्त आगम वक्र  $MR$  है। इस प्रकार, फर्म  $OQ$  मात्रा का उत्पादन करने

से अधिकतम लाभ की स्थिति में होगी क्योंकि E बिन्दु पर सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आगम (MR) के बराबर है। इस उत्पादन-मात्रा को बेचने के लिए उसकी कीमत OP होनी चाहिए।

अब प्रश्न है कि उत्पादन विभाग को अपनी वस्तु के लिए विपणन विभाग से कितनी कीमत लेने चाहिए ? स्थानापन्न कीमत उत्पादन विभाग की सीमान्त आगम के बराबर होती है। स्थानान्तरण कीमत एक बार निश्चित होने पर सदैव स्थिर होती है क्योंकि उत्पादन विभाग का मांग वक्र क्षैतिज होता है जिस पर उत्पादन विभाग की सीमान्त आगम और स्थानान्तरण कीमत बराबर होती है। अर्थात्  $D = MR_p = P_1$ । उत्पादन विभाग को मध्यवर्ती वस्तु के लिए सर्वाधिक लाभ वहां होगा जहां स्थानान्तरण कीमत ( $P_1$ ) जो उसकी सीमान्त आगम ( $MR_p$ ) भी है, उसकी सीमान्त लागत ( $MC_p$ ) के बराबर होगी। यह स्थिति  $E_1$  बिन्दु पर होती है जहां  $MC_p$  वक्र  $D = MR_p = P_1$  को नीचे से काटता है।

## 2. स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण : बाह्य बाजार की उपस्थिति

(Transfer Pricing : Presence of an External Market)

यदि मध्यवर्ती वस्तु का बाह्य बाजार हो तो उत्पादन विभाग विपणन विभाग की जरूरतों से अधिक वस्तु भी उत्पादित कर सकता है और अतिरिक्त वस्तु को बाह्य बाजार में बेच सकता है। दूसरी ओर, वह विपणन विभाग की जरूरतों से कम उत्पादन भी कर सकता है और विपणन विभाग अपनी बाकी बची जरूरतों को बाह्य बाजार से पूरा कर सकता है। इस प्रकार वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अधिक स्वतंत्र होता है।

अब हम पूर्ण प्रतियोगी बाजार में स्थानान्तरण कीमत के निर्धारण का अध्ययन करेंगे।

(1) स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण : पूर्ण प्रतियोगी बाह्य बाजार में (Transfer Pricing : In a Perfectly Competitive External Market)—पूर्ण प्रतियोगी बाह्य बाजार की दशा में जहां मध्यवर्ती वस्तु फर्म के बाहर पूर्ण प्रतियोगी बाजार से खरीदी या बेची जा सकती है, उत्पादन विभाग द्वारा उत्पादित की गई मात्रा विपणन विभाग के लिए आवश्यक मात्रा के बराबर नहीं भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में मध्यवर्ती वस्तु की स्थानान्तरण कीमत उस वस्तु की बाजार कीमत होती है। साथ ही, फर्म सर्वाधिक लाभ की स्थिति में तभी हो सकती है जब उसके सभी विभाग अपने संबंधित साथ ही, फर्म सर्वाधिक लाभ की स्थिति में तभी हो सकती है जब उसके सभी विभाग अपने संबंधित  $MC = MC$  बिन्दुओं पर कार्य कर रहे हों। इन स्थितियों में स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण की व्याख्या हम निम्न रेखाचित्र की सहायता से करते हैं।

### चित्र 6.

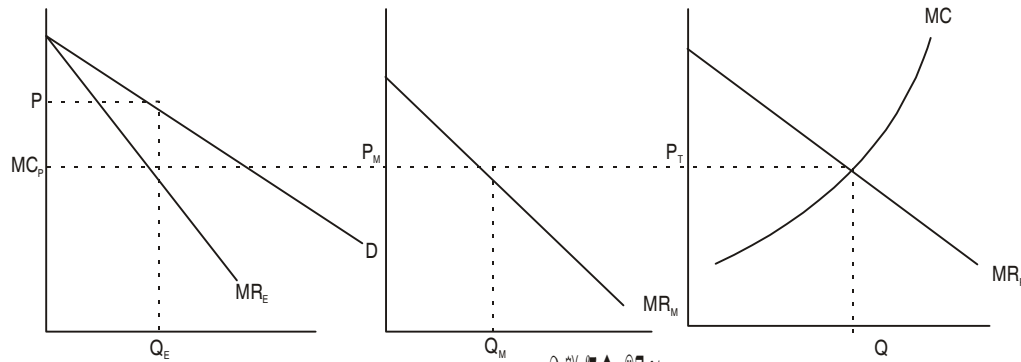
चित्र 6 में D वक्र मध्यवर्ती वस्तु का मांग है जो क्षैतिज रेखा के रूप में है। यह वक्र उत्पादन विभाग की सीमान्त आगम ( $MR_p$ ), औसत आगम ( $AR_p$ ) और कीमत (P) को भी दर्शाता है। चित्र

के अनुसार,  $OQ_2$  उत्पादन विभाग को सर्वाधिक लाभ प्राप्त होगा, क्योंकि यहां सीमान्त उत्पादन लागत,  $MC_P$  सीमान्त आगम  $MR_P$  के बराबर है जो  $OP_1$  कीमत स्तर को निर्धारित करती है यह संतुलन स्थिति बिन्दु E पर है जहां  $MCP$  वक्र  $D = AR_P = MR_P$  को नीचे से काटता है।

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म के संपूर्ण लाभ को अधिकतम करने के लिए भी स्थानापन्न कीमत को  $OP_1$  स्तर पर रखना उपयुक्त होगा। इसी कीमत पर उत्पादन विभाग, विपणन विभाग को या बाहरी ग्राहकों को अपनी मध्यवर्ती वस्तु बेचेगा और विपणन विभाग भी उत्पादन विभाग को मध्यवर्ती वस्तु के लिए  $OP_1$  कीमत ही देगा।

विपणन विभाग को सीमान्त लागत वक्र  $MC_M$  है जो सीमान्त विपणन लागत और स्थानान्तरण कीमत  $P_1$  का जोड़ है। अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए विपणन विभाग को उत्पादन की  $OQ_1$  मात्रा खरीदनी होगी जहां उसकी सीमान्त लागत  $MC_M$  बिन्दु  $E_1$  पर सीमान्त आगम  $MR_M$  के बराबर है। चित्र के अनुसार उत्पादन विभाग के लिए सर्वाधिक लाभप्रद मात्रा  $OQ_2$  होगी और विपणन विभाग के लिए सर्वाधिक लाभप्रद मात्रा  $OQ_1$  होगी। सीमान्त आगम  $MR_M$  के बराबर है। चित्र के अनुसार उत्पादन विभाग के लिए सर्वाधिक लाभप्रद मात्रा  $OQ_2$  होगी और विपणन विभाग के लिए सर्वाधिक लाभप्रद मात्रा  $OQ_1$  होगी। अतः उत्पादन विभाग अपने उत्पादन का  $OQ_2 - OQ_1$  भाग बाह्य बाजार में बेचेगा।

(2) **स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण : अपूर्ण प्रतियोगी बाह्य बाजार में (Transfer Pricing: In a Imperfectly Competitive External Market)**—यहां हम उस बाजार स्थिति में स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण की चर्चा करते हैं जहां उत्पादन विभाग अपनी वस्तु को विपणन विभाग के साथ-साथ एक अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में बेचता है। ऐसी स्थिति में विभिन्न बाजारों में कीमत विभेद की एक महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न होती है यहां उत्पादन विभाग को अधिकतम लाभ तब होगा जब प्रत्येक बाजार में सीमान्त आगम कुल बाजार के सीमान्त आगम के बराबर होगा। अर्थात् विपणन विभाग के लिए स्थानान्तरण कीमत, उत्पादन विभाग की सीमान्त लागत के बराबर होनी चाहिए। अपूर्ण प्रतियोगी बाह्य बाजार की स्थिति में स्थानान्तरण कीमत-निर्धारण को चित्र 7 में किया गया है।



चित्र 7.

चित्र का भाग (A) अपूर्ण प्रतियोगी बाह्य बाजार से संबंधित है जिसमें  $D$  वक्र उसका मांग वक्र और  $MR_E$  वक्र उसका सीमान्त आगम वक्र है। भाग (B) विपणन विभाग से संबंधित है जिसमें  $MR_M$  वक्र विपणन विभाग का शुद्ध (net) सीमान्त आगम वक्र है। अर्थात्  $MR_M = (PT = MC_P)$ । यहां स्थानान्तरण कीमत ( $P_T$ ) उत्पादन विभाग की सीमान्त लागत ( $MC_P$ ) के बराबर है। भाग (C) उत्पादन विभाग से संबंधित है। इसका सीमान्त आगम  $MR_P$  फर्म के भीतर विपणन विभाग का सीमान्त आगम ( $MR_M$ ) और बाह्य बाजार का सीमान्त आगम ( $MR_E$ ) का योग है। उत्पादन विभाग का इष्टतम उत्पादन स्तर  $OQ$  है जहां  $E$  बिन्दु पर सीमान्त आगम वक्र  $MR_P$  सीमान्त लागत वक्र



MC के बराबर है और स्थानान्तरण कीमत  $OP_T$  है।  $OP_T$  स्थानान्तरण कीमत पर विपणन विभाग उत्पादन की  $OQ_M$  इकाइयां खरीदेगा और उत्पादन की  $OQ_E$  इकाइयां बाह्य बाजार में OP कीमत पर बेच सकेगा।

## 7. कीमत पूर्वानुमान (Price Forecasting)

कीमत पूर्वानुमान से हमारा अभिप्राय आगे आने वाली किसी समय अवधि में कच्चे माल और उत्पादन के अन्य साधनों एवं फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बाजार कीमतों के पूर्वानुमान से है। फर्म के सामने सदैव कच्चे माल और अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमतों में महत्वपूर्ण परिवर्तन का जोखिम बना रहता है। कीमत परिवर्तन सामान्य आर्थिक उतार-चढ़ाव के कारण हो सकता है। परन्तु कई वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन सामान्य कीमत-स्तर में स्थिरता होने के बावजूद भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में फर्म को लाभ अधिकतम करने के लिए भविष्य की कीमतों का पूर्वानुमान करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि यदि फर्म कच्चे माल या उत्पादन के अन्य साधनों की कीमतों में संभावित परिवर्तन का पूर्वानुमान नहीं कर पाती है तो वह भविष्य में वस्तु की परिवर्तित लागत के साथ उसकी कीमत का समायोजन नहीं कर पाएगी और फर्म को हानि होगी।

### कीमत पूर्वानुमान को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Price Forecasting)

फर्म को एक सफल कीमत पूर्वानुमान के लिए विचाराधीन वस्तु के कीमत पूर्वानुमान को प्रभावित करने वाले घटकों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है जिनकी चर्चा नीचे की जा रही है :

1. **वस्तु की प्रकृति और उसका बाजार (Nature of Commodity and its Market)**—किन्हीं दो वस्तुओं की अपेक्षा पूर्ति में एक दिए हुए परिवर्तन से कीमत में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होगा।

2. **पूर्ति में परिवर्तन (Change in Supply)**—यदि किसी वस्तु की मांग परिवर्तित होती है तो उसकी कीमत में परिवर्तन प्रायः सामान्यतः उसकी पूर्ति की दशा पर निर्भर करेगा। अतः कीमत पूर्वानुमान करते समय इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि विचाराधीन वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन शीघ्रता से या धीरे-धीरे या किसी निश्चित अवधि के उपरांत करना संभव होगा।

3. **संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन (Changes in the Price of Related Commodity)**—वस्तु की कीमत में परिवर्तन उससे संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन पर भी निर्भर करती है। निर्मित वस्तुओं की कीमतें उनसे संबंधित कच्चे माल की चालू कीमतों पर निर्भर करती हैं। अतः वस्तु के उचित कीमत पूर्वानुमान के लिए संबंधित कच्चे माल की कीमत का पूर्वानुमान आवश्यक है।

4. **मांग और पूर्ति का सापेक्षिक प्रभाव (Relative Influence of Demand and Supply)**—कीमत पूर्वानुमान करते समय मांग और पूर्ति पर पड़ने वाले सापेक्षिक प्रभावों का विश्लेषण करना आवश्यक है। कृषि उत्पादों की मांग प्रायः स्थिर होती जबकि पूर्ति बदलती रहती है। अतः ऐसी वस्तुओं का कीमत पूर्वानुमान करते समय उसके पूर्ति-पक्ष पर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूसरी ओर, निर्मित वस्तुओं की कीमत पर पूर्ति की अपेक्षा मांग का प्रभाव अधिक होता है। अतः ऐसी वस्तुओं के कीमत पूर्वानुमान में मांग विश्लेषण पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

5. **भूतकालीन मांग (Past Demand)**—सामान्यतः वस्तु की पिछली मांग उसकी भविष्य में होने वाली मांग का विश्वसनीय संकेतक होता है। अतः वस्तु की पिछली मांग के आधार पर उसकी भविष्य की मांग का अनुमान कर उस वस्तु का कीमत पूर्वानुमान किया जा सकता है।

**6. उपभोक्ता की क्रय-शक्ति (Purchasing Power of the Consumer)**—उपभोक्ता वस्तुओं की मांग, राष्ट्रीय आय का स्तर और उसका समुचित वितरण अर्थात् उपभोक्ता की क्रय शक्ति पर अत्यधिक निर्भर करती है। इसी प्रकार, उत्पादक वस्तुओं की मांग फर्म की तरलता स्थिति और पूंजी बाजार की दशाओं पर निर्भर करती है। अतः कीमत पूर्वानुमान के समय संबंधित घटकों पर विचार करना अति आवश्यक है।

**7. वस्तु को खरीदने की तत्परता (Promptness of Buying the Products)**—संभव है कि क्रेता के पास पर्याप्त क्रय-शक्ति हो परन्तु उसमें विचाराधीन वस्तु खरीदने की तत्परता हो। यदि भविष्य में इस वस्तु की कीमत बढ़ने की संभावना हो तो उपभोक्ता अपेक्षाकृत ऊँची कीमत पर भी वस्तु को खरीदना चाहेंगे। दूसरी ओर, यदि वस्तु की कीमत भविष्य में कम होने की संभावना हो तो वे अपेक्षाकृत कम कीमत पर भी उसे नहीं खरीदेंगे। अतः कीमत पूर्वानुमान में मांग से संबंधित यह तत्व अति महत्वपूर्ण है।

**8. वस्तु की प्रकृति (Nature of the Product)**—कीमत पूर्वानुमान के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि विचाराधीन वस्तु मुख्य वस्तु है या गौण वस्तु। यदि वस्तु गौण वस्तु है तो कीमत में उतार-चढ़ाव, मुख्य वस्तु की तुलना में अधिक होगा। क्योंकि गौण वस्तु की पूर्ति उसकी मांग के अनुसार नहीं बल्कि संबंधित मुख्य वस्तु के अनुसार होती है। अतः गौण वस्तु का कीमत पूर्वानुमान करते समय संबंधित मुख्य वस्तु का संभावित उत्पादन ही महत्वपूर्ण होगा। साथ ही, गौण वस्तु के संदर्भ में उत्पादन की लागत पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती।

**9. सरकारी हस्तक्षेप (Government Intervention)**—सही कीमत पूर्वानुमान के लिए वस्तु की पूर्ति और कीमत पर सरकारी या गैर-आर्थिक नियंत्रण भी एक महत्वपूर्ण घटक है। ये नियंत्रण सामान्यतः अस्थायी प्रकृति के ही होते हैं, जिनके अनुसार ही कीमत का पूर्वानुमान किया जाना चाहिए।

**10. प्रतियोगिता (Competition)**—कीमत पूर्वानुमान के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि वस्तु के उत्पादकों के बीच प्रतियोगिता की क्या दशा है? उदाहरणार्थ, बाजार में किसी प्रभावी उत्पादक की संभावित कीमत नीति अन्य उत्पादकों द्वारा कीमत पूर्वानुमान का एक महत्वपूर्ण घटक होगा। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत में उतार-चढ़ाव कम होगा जबकि कड़ी कीमत प्रतियोगिता की दशा में कीमत में अत्यधिक परिवर्तन होता रहता है।

**11. क्रेता-संगठन (Buyer's Organisation)**—यदि बाजार में क्रेता-संगठन मजबूत है तो वह कीमत में होने वाली वृद्धि को रोकेंगे और कीमत में कमी करना चाहेगा। परन्तु ऐसा प्रबल क्रेता-संगठन दुर्लभ होता है।

**12. बाजार की दशा (Market Condition)**—किसी वस्तु का कीमत पूर्वानुमान उसकी घरेलू या अंतर्राष्ट्रीय बाजार की दशा पर भी निर्भर करता है। सामान्यतः अधिकांश महत्वपूर्ण कच्चे माल की कीमतें विश्व बाजार में निर्धारित होती हैं। साथ ही वे वस्तुएं जिनका विनिर्माण और बिक्री घरेलू बाजार में होती है, वे भी अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों से काफी प्रभावित होती हैं। ये प्रभाव कच्चे मालों और मुद्रा बाजारों के माध्यम से देखने को मिलती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी घटक किसी वस्तु के कीमत पूर्वानुमान को प्रभावित करते हैं।

### [Average Cost Pricing Theory (Hall and Hitch)]

1939 में के Hall and Hitch के द्वारा किए गए अध्ययन के परिणाम प्रकाशित हुए जिसमें उन्होंने 38 फर्मों का अध्ययन किया और यह फर्में सफलतापूर्वक चलाई जा रही थी। Average Cost Pricing Principle को हम Mark-up Pricing भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी पदार्थ का मूल्य उसकी औसत लागत के आधार पर निश्चित किया जाता है। Hall and Hitch

ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार फर्म अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत परितर्वर्तनशील लागत, Overhead Cost तथा सामान्य लाभ हो जोड़कर निर्धारित करती है। उनके अनुसार फर्म सामान्य लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

$$\text{Price} = \text{AVC} + \text{AFC} + \text{NPM} \quad (\text{Net Profit Margin}) = \text{NPM}$$

**मान्यताएँ :-**

(1) **फर्म का उद्देश्य**—इस सिद्धान्त के अनुसार फर्म का उद्देश्य अल्पकाल में लाभ को अधिकतम करना नहीं होता है बल्कि वह दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करना चाहती है। अगर वह अल्पकाल में लाभ को अधिकतम करना चाहेगी तो उसे ऊँची कीमत रखनी पड़ेगी जिससे दूसरी फर्म आने का डर बना रहता है क्योंकि अल्पकाल में ऊँची कीमत रखने से उस फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे और अन्य फर्म भी लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रवेश करने की संभावना बढ़ जाएगी ओर उसे अपने लाभ कम होने का भय लगा रहेगा अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभ की संभावना खत्म हो जाती है।

(2) **मांग फलन तथा पूर्ति फलन**—मांग का अनुमान कभी भी नहीं लगाया जा सकता है। यह अवश्य हो सकता है कि जिसका ज्यादा अनुभव होता है वह भविष्य के बारे में सही अनुमान लगाने की कोशिश कर सकता है। लेकिन वह भी यह घोषणा नहीं कर सकता कि भविष्य में एक निश्चित कीमत पर कितनी मांग होगी।

**पूर्ति वक्र**—मांग वक्र की तरह कोई भी फर्म अपने दीर्घकालीन पूर्ति वक्र या लागत वक्र को नहीं जानती कि दीर्घकाल में वस्तु बनाने की लागत क्या आएगी। अल्पकाल में केवल Variable Cost का पता तो चल सकता है कि वह एक निश्चित उत्पादन स्तर पर क्या होगी।

Hall and Hitch ने पाया कि सभी उद्यमी आमतौर पर अपनी वस्तु की Average variable cost को जानते हैं जिसके आधार पर वे कीमत तय करते हैं। उन्होंने पाया कि हर फर्म में एक Reserve Capacity होती है। जिसके जरिए वह मांग के कम ज्यादा होने पर वह उत्पादन को कम ज्यादा कर सकती है।

**Price Determinant**—कीमत की निर्धारण दो अवस्थाओं में किया जाता है।

(1) फर्म उस कीमत का अनुमान करती है जिससे उसे कुल लागतें तथा उचित लाभ प्राप्त होते हैं अर्थात्

(2) **Desired Price**—फर्म अनुमानित कीमत की तुलना करती है कि किस कीमत पर अधिक फर्म प्रवेश कर सकती हैं तथा वह कीमत निर्धारित करती है जिस पर फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाई जा सके अर्थात्  $P = \text{AVC} + \text{GPM}$

Desired Price का अनुमान लगाने के लिए फर्म  $P = \text{APC} + \text{GPM} = \text{AC}$  लेती है।

$$P = \text{Price}$$

$$\text{AVC} = \text{Average Variable Cost}$$

$$\text{GPM} = \text{Gross Profit Margin है}$$

GPM के अन्तर्गत AFC तथा सामान्य लाभों को शामिल किया जाता है।

$$\text{GPM} = \text{AFC} + \text{NPM} (\text{Net Profit Margin})$$

इस सिद्धान्त के अनुसार पहले स्थापित फर्मों के अनुभव के आधार पर NPM का ज्ञान होता है। जो पूंजी का उचित प्रतिफल प्रदान करते हैं ताकि फर्मों में दीर्घकाल में निवेश होता रहे तथा उत्पादन सम्बन्धी सभी जोखिमों को भी Cover करता है। पुरानी वस्तु के उत्पादन के NPM का फर्म को अपने अनुभव से ज्ञात होता है तथा नई वस्तु के उत्पादन की स्थिति में फर्म NPM ऐसा



**आलोचनाएँ—**

1. Price की सही मात्रा कितनी होगी जो फर्म को अधिकतम लाभ प्रदान करेगी, अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
2. अनुभव के आधार पर भविष्य में किसी वस्तु की मांग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
3. सीमान्तवादियों के सिद्धान्त को दूसरे तरीके से दोहराता है।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि Prof. Hall & Hitch का सिद्धान्त सम्भावित कीमतों में लागू नहीं होता है। क्योंकि ये अर्थशास्त्री कीमत का निर्धारण वहाँ पर करते हैं। जहाँ पर  $P > AVC + GPM$  होता है। जिसमें NPM भी शामिल होता है और Net Profit Margin का पता करना बहुत मुश्किल होता है।

# अध्याय 11

## सीमा-कीमत निर्धारण का सिद्धान्त (LIMIT PRICING THEORY)

### परिचय

#### (Introduction)

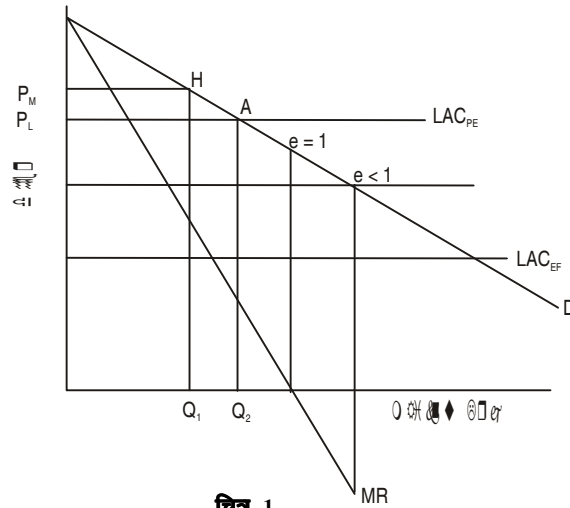
कीमत निर्धारण के अध्ययन में हम अन्ततः उस अवस्था में पहुँच गये हैं जिसमें हम कीमत सिद्धान्त में कुछ नवीन विचारों की व्याख्या कर सकते हैं। एकाधिकार तथा अल्पधिकार के परम्परागत सिद्धान्तों में वर्तमान फर्मों नई फर्मों के सम्भावित प्रवेश तथा उनके व्यवहार एवं प्रतिक्रियाओं की चिन्ता नहीं करती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के मॉडल में नई फर्मों के वास्तविक प्रवेश का वर्तमान फर्मों के उत्पादन तथा कीमत पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। किन्तु कूर्नो, बर्ट्रेन्ड, एजवर्थ तथा चैम्बरलिन के परम्परागत अल्पधिकार मॉडल बन्द (Closed) मॉडल हैं क्योंकि उनमें नई फर्मों के प्रवेश की कोई व्यवस्था नहीं है। इन अल्पाधिकार मॉडल में फर्मों की संख्या को स्थिर मान लिया गया है तथा विरोधी फर्मों की क्रियाओं के विरुद्ध वर्तमान फर्मों की प्रतिक्रियाओं की ही व्याख्या की गई है। हाल ही में, अनेक अर्थशास्त्रियों प्रमुख रूप से बेन (Basin), साइलोस लाबिनी (Sylos-Lobini), एण्ड्रयूज (Andrews), मोदिग्लियानी (Modigliani) तथा जगदीश भगवती (Jagdish Bhagwati) ने तर्क प्रस्तुत किया है कि अल्पधिकारी बाजारों में वर्तमान फर्मों के कीमत तथा उत्पादन के निर्णय फर्मों के वास्तविक प्रवेश (actual entry) द्वारा ही बल्कि सम्भावित प्रवेश (potential entry) द्वारा भी प्रभावित होते हैं।

इन अर्थशास्त्रियों द्वारा जो महत्त्वपूर्ण विषय उठाया गया है वह यह है कि अल्पधिकारी फर्म अल्पकालीन लाभों को अधिकतम नहीं करती है। इसके बजाय, वे स्थिति का और अधिक दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाती है तथा उन नई फर्मों के सम्भावित प्रवेश की दृष्टि में दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करने का प्रयास करती है जो लाभ की सम्भावनाओं को प्रभावित करती हैं। अपनी पथप्रदर्शक कृति 'ए नोट आन प्राइसिंग इन मोनोपोली एण्ड ओलिगोपोली (1949)' तथा इसी के बाद अपनी पुस्तक 'बैरियर्स टु न्यू कम्पिटिशन' (Barriers to New Competition) में जे0 एस0 बेन0 ने सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसका संक्षेप में अभिप्राय यह है कि फर्म अल्पकालीन लाभों को इस भय के कारण अधिकतम नहीं करती हैं कि अल्पकाल में बहुत अधिक या असामान्य लाभ उन नई फर्मों के प्रवेश को प्रेरित करेगा जो उनके लाभों को दीर्घकाल में बड़ी मात्रा में कम कर देगी। उनके अनुसार अल्पधिकारी फर्म अल्पकालीन लाभ अधिकतम करने वाली कीमतें नहीं निर्धारित करेंगी बल्कि इसके बजाय अपेक्षाकृत कम कीमत वसूल करेगी और इस प्रकार उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश को रोकेंगी। इस प्रकार उनके अनुसार संभावित प्रवेश के भय के महत्त्वपूर्ण कारण से ही कपटसंधायी अल्पधिकार के अन्तर्गत एकाधिकारी कीमतें वसूल नहीं की जाती हैं। सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त अथवा प्रवेश रोकने वाला कीमत निर्धारण सिद्धान्त को साइलोस लाबिनी, मोदिग्लियानी तथा जगदीश भगवती द्वारा और अधिक विकसित किया गया तथा सामान्य बनाया गया है। वर्तमान अध्याय में हम इन अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत सीमा कीमत निर्धारण मॉडलों की संक्षेप में व्याख्या करेंगे।

### सीमा-कीमत निर्धारण सिद्धान्त के मूल तत्त्व: बेन का मॉडल (Basics of The Theory of Limit Pricing: Bain's Model)

बेन का सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त कपटपूर्ण अल्पधिकार की स्थिति से संबंधित है। उनके सिद्धान्त का केन्द्रीय विचार सीमा-कीमत की धारणा है। सीमा कीमत वह अधिकतम कीमत है जो वर्तमान फर्म मानती है कि नई फर्मों के प्रवेश को आकर्षित किये बिना वे वसूल कर सकती हैं। अन्य शब्दों में सीमा कीमत प्रवेश रोकने वाली कीमत होती है (limit price is the entry preventing price)। सीमा कीमत निर्धारण के इस विश्लेषण में बेन मानते हैं कि उद्योग में पहले ही सुस्थापित तथा सम्भावित फर्मों के पदार्थ समरूप होते हैं। उद्योग के पदार्थ का निर्धारणीय माँग वक्र दिया हुआ है तथा जो वर्तमान फर्मों द्वारा कीमत समयोजन अथवा नई फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप कीमत में परिवर्तन की अवधि में अपरिवर्तित तथा स्थिर बना रहता है।

कपटपूर्ण अल्पधिकारी जिस समस्या का सामना करते हैं, यह है कि सीमा कीमत किस स्तर पर निर्धारित की जाय कि वह नई फर्मों के प्रवेश को रोके। बेन के अनुसार सीमा कीमत (a) सम्भावी प्रवेशकर्ताओं की लागत, (b) उद्योग के पदार्थ के लिए माँग की लोच, (c) बाजार का आकार अर्थात् पदार्थ के माँग की मात्रा, (d) उद्योग में प्रतिष्ठित फर्मों की संख्या तथा (e) दीर्घकालीन लागत वक्रों (LAC) का स्तर एवं आकृति द्वारा निर्धारित की जाती है। रेखाकृति 30.1 सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त के आवश्यक लक्षणों को स्पष्ट करती है। DD कपटपूर्ण अल्पधिकार का बाजार माँग वक्र तथा MR तत्संबंधी सीमान्त आय वक्र हैं। माना कि  $LAC_{EF}$  वर्तमान प्रतिष्ठित कपटपूर्ण अल्पधिकारियों की दीर्घकालीन लागत रेखा है। चूँकि  $LAC_{EF}$  स्थिर है अतः LMC इसके बराबर होगी। यदि कपटपूर्ण अल्पधिकार अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करना चाहता है तो वह  $LAC_{EF}$  (जो  $LMC_{EF}$  के समान है) तथा सीमान्त आय वक्र के प्रतिच्छेद बिंदु से संबंधित कीमत निर्धारण करेगा। रेखाकृति से यह स्पष्ट है कि यह अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत  $P_m$  (जो एकाधिकारी कीमत है क्योंकि हम कपटपूर्ण अल्पधिकार की स्थिति पर विचार कर रहे हैं)। किन्तु यह अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत  $P_m$  सम्भावित प्रवेशकर्ता फर्मों की दीर्घकाल औसत लागत  $LAC_{PE}$  की अपेक्षा अधिक है। परिणामस्वरूप  $P_m$  कीमत उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश को आकर्षित करेगी। नई फर्मों के प्रवेश से पुरानी फर्मों को बाजार माँग के एक भाग को हानि होगी जिसके कारण उनका माँग वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जायेगा। इस प्रकार उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश के परिणामस्वरूप फर्मों अपने पदार्थ की माँग के बारे में अनिश्चितता का सामना करती है।



चित्र 1.

अब यदि वे सम्भावी प्रवेशकर्ताओं की दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर  $P_L$  कीमत निर्धारित करती हैं तो पदार्थ की  $Q_2$  मात्रा बेचेंगी। सुस्थापित कपटपूर्ण अल्पधिकारी अब भी लाभ

अर्जित करेंगे क्योंकि  $P_L$  कीमत उनकी दीर्घकालीन औसत लागत  $LAC_{EF}$  की अपेक्षा अधिक है। तथापि यह उद्योग में प्रवेश करने वाले सम्भावी विरोधियों के हित में नहीं होगा क्योंकि  $P_L$  कीमत उनकी उत्पादन की औसत लागत के बराबर है। यदि वे उद्योग में प्रवेश करते हैं तो पदार्थ की पूर्ति में वृद्धि होगी। यदि सम्भावी फर्म उद्योग में प्रवेश करती हैं तो उन्हें हानि होगी जो उन्हें  $P_L$  कीमत पर प्रवेश करने से रोकती है। अतः  $P_L$  कीमत को सीमा कीमत (Limit Price) कहा जाता है क्योंकि यह वह कीमत है जो सुस्थापित पुरानी फर्म प्रवेश को प्रेरित किये बिना वसूल कर सकती हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि सीमा कीमत  $P_L$  होने पर सम्भावी प्रवेशकर्ताओं के विपरीत सुस्थापित पुरानी फर्म लाभ अर्जित कर रही हैं किन्तु प्रति इकाई लाभ की सीमा  $C_1P_L$  या  $C_1C_2$  उस स्थिति की तुलना में कम है यदि वे एकाधिकारी कीमत वसूल करते होते।

यह उल्लेखनीय है कि सीमा कीमत प्रवेश में अवरोध (barriers to entry) के अस्तित्व से संबंधित है। हमारे विश्लेषण में सुस्थापित पुरानी फर्मों की तुलना में सम्भावी फर्मों की अधिक औसत लागत ही उनके प्रवेश में अवरोध का कार्य करती है। और सुस्थापित फर्मों की प्रति इकाई कम उत्पादन लागत ही सीमा कीमत पर भी उन्हें लाभ अर्जित करना सुनिश्चित करता है तथा इस प्रकार नई फर्मों के प्रवेश को रोकने में सफल बनाने को भी सुनिश्चित करता है। पुरानी फर्म कुल  $C_1C_2AB$  के बराबर लाभ अर्जित कर रही हैं जो अल्पकालीन अधिकतम लाभ  $C_1P_mHE$  की अपेक्षा कम हैं। फर्म कुछ अल्पकालीन लाभों का परित्याग कर रही हैं क्योंकि वे आशा करती हैं कि प्रवेश विरोधी युद्धनीति की सहायता से दीर्घकाल में अपेक्षाकृत अधिक लाभार्जन के द्वारा उनकी उससे अधिक क्षतिपूर्ति हो जायेगी।

बेन (Bain) के सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसकी सहायता से बेन ने कुछ उद्योगों में-अल्पाधिकारी फर्मों की कीमतों को माँग के उस स्तर पर रखते हुए उनके अवलोकित तत्त्वों की व्याख्या करने का प्रयास किया जिस पर माँग की कीमत लोच इकाई से कम थी। रेखाकृति पर एक नजर डालने से स्पष्ट होगा कि यदि सम्भावित प्रवेशकर्ता फर्म की औसत लागत  $OJ$  है तो सीमा कीमत इस स्तर पर निर्धारित होगी। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जा सकता है कि दिये हुए माँग वक्र  $DD$  पर  $OJ$  कीमत होने पर माँग की कीमत लोच इकाई से कम है क्योंकि यह रेखीय माँग वक्र  $DD$  के मध्य बिंदु के नीचे के बिंदु से संबंधित है तथा और भी देखा जा सकता है कि इस कीमत पर सीमान्त आय ऋणात्मक है। बेन के अनुसार सम्भावित फर्म के प्रवेश को रोकने के लिए अल्पाधिकारी सीमा कीमत  $OJ$  पर निर्धारित कर सकते हैं क्योंकि यह अब भी उनकी उत्पादन की औसत लागत ( $C_1$ ) की अपेक्षा अधिक है और इसलिए वे इस कीमत पर भी लाभ को प्रोत्साहित करने के लिए प्रवेश अवरोध युद्धनीति को अपनाते उनके सर्वाधिक हित में है तो वे इन परिस्थितियों के अन्तर्गत सीमा कीमत को  $OJ$  स्तर पर निर्धारित करेंगे।

बेन के सीमा कीमत निर्धारण सिद्धान्त का अन्य रोचक लक्षण यह है कि यदि बाजार माँग तथा लागत की दशाएँ इस प्रकार हैं कि एकाधिकारी कीमत (अर्थात् अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत) सीमा कीमत की अपेक्षा कम है ( $P_m < P_L$ ) तो अल्पाधिकारी अपने अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी कीमत वसूल करेंगे क्योंकि यह प्रवेश को भी रोकेगा तथा दीर्घकालीन अधिकतम लाभ को सुनिश्चित करेगा।

### प्रवेश में अवरोध तथा सीमा कीमत (Barriers to Entry and Limit Price)

अपनी बाद की कृति 'बैरियर्स टु एन्ट्री' (Barriers to Entry) (1956) में बेन ने व्याख्या की कि अल्पाधिकारी पूर्ण प्रतिस्पर्धी कीमत की अपेक्षा कीमत क्यों निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार प्रवेश में अवरोध होने के कारण सीमा कीमत प्रतिस्पर्धी कीमत की अपेक्षा अधिक निर्धारित की जाती है। बेन की सीमा कीमत-निर्धारण के विश्लेषण में एक फर्म तब प्रवेश करती है जबकि उद्योग में प्रवेश करने वाली नई फर्म एक ऐसी नई उत्पादक क्षमता का निर्माण करती है जिसका उसके प्रवेश



## अध्याय 12

# बहु उत्पाद कीमत निर्धारण

## MULTI PRODUCT PRICING

उत्पादन कीमत निर्धारण के लिए बहुत से अर्थ-शास्त्रियों ने अपने-2 सिद्धान्त या विचार प्रस्तुत किए हैं। लेकिन उनके सिद्धान्त पूर्ण नहीं हैं तथा वे केवल एक वस्तु के उत्पादन की कीमत का निर्धारण करने की कोशिश करते हैं। लेकिन हम यहाँ Multi Product Pricing की व्याख्या करेंगे और वास्तविक जीवन में भी फर्म या कोई भी कम्पनी एक ही वस्तु का उत्पादन नहीं करती है बल्कि एक साथ बहुत सी वस्तुओं का उत्पादन करती है तथा वह अपनी लागत के लाभ के आधार पर वस्तु की कीमत का निर्धारण करती है।

यदि एक फर्म एक से ज्यादा प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करती है तब वह अपनी वस्तुओं की कीमत किस प्रकार तय करें जिससे वह अपनी इच्छित लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। वास्तव में कोई भी फर्म एक वस्तु का उत्पादन नहीं करती बल्कि कई वस्तुओं का उत्पादन करती है। उत्पादन का आकार भी भिन्न-2 होता है और इसके रंग, बनवाट भी भिन्न-2 होती है जैसे मारुती कम्पनी की कार। यदि बहु उत्पादन फर्म है जिसके लिए अपने उत्पादन की सीमान्त लागत अपनी बहुत कठिन काम है वह कैसे अपने उत्पाद की कीमत की निर्धारण करेगी। उसके लिए निम्न व्यवहारिक दृष्टिकोण है :-

1. **प्रतिशत कुल लागत विधि** (Prices which are proportional to full cost)- इस विधि के द्वारा एक उत्पादक अपने द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत निर्धारण करने के लिए उत्पादित वस्तुओं की कुल लागत को जोड़कर तथा जितना लाभ वह कमाना चाहता है उसको जोड़कर कीमत निर्धारण करता है।

उदाहरण के लिए साबुन कम्पनी को साबुन बनाने की लागत जो दो प्रकार के उत्पाद बनाती है :- A and B

	A	B
कच्चे माल की लागत	2 ₹0	1 ₹0
मजदूरी की लागत	1 ₹0	1.50 ₹0
अन्य लागत	50 पैसे	1 ₹0
<b>कुल लागत</b>	<b>3.50 ₹0</b>	<b>3.50 ₹0</b>

यदि वह लेता Profit 10% है तो वह निम्नलिखित कीमत तय करेगा तो उसे 3.85 रुपये प्राप्त होंगे।

**हानि :-**

1. फर्म की उत्पाद की अन्य लागतों और मजदूरी लागत का सही अनुमान नहीं लगा सकती।
2. कीमत निर्धारण करते समय किस उत्पाद की मांग ज्यादा या कम है उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया गया।
3. वस्तु की आय लोच व कीमत लोच को ध्यान में नहीं रखा गया।

2. **संवृद्धि लागत के अनुपात के आधार पर कीमत तय करना** (Prices which are proportional to incremental cost) – इसी विधि के द्वारा एक फर्म को किसी वस्तु के उत्पादन में मुख्य

लागतें कितनी होगी इसके एक निश्चित % के रूप में लाभ को शामिल करके कीमत का निर्धारण करता है। इसमें हम अन्य लागतें नहीं जोड़ते जैसे साबुन तैयार करती है।

	A	B
मजदूरी लागत =	1.00 ₹0	1.50 ₹0
अन्य लागत =	0.50 ₹0	1.00 ₹0
<b>Conversion Cost =</b>	<b>1.50 ₹0</b>	<b>2.50 ₹0</b>

90% लाभ कमाना चाहती है or यदि वह अपनी Conversion Cost 90% लेना चाहती है तो उसकी Prices निम्न होगी :-

A उत्पाद की कीमत	=	2.85 ₹0
B उत्पाद की कीमत	=	4.75 ₹0

#### हानि (अवगुण) :

1. मांग व कीमत तथा आय लोच की तरफ ध्यान नहीं दिया गया।
2. हमारे द्वारा तय किया गया एक निश्चित % conversion लागत का भाग हो सकता है कि उत्पाद पर कच्चे माल की लागत को पूरा भी ला करता हो।

**4. वस्तु की मांग लोच के अनुसार कीमत तय करना (Prices which contribution margin depending up on the elasticity of demand of different market sector)—** इस विधि के अनुसार यह देखा जाता है कि फर्म का यह उत्पाद किस वर्ग के लिए बनाया जा रहा है अर्थात उस उत्पाद को कौन सा वर्ग Use कर रहा है। उसी को देखते हुए हम उत्पाद की कीमत को तय करेंगे। यदि उत्पाद का प्रयोग धनी वर्ग द्वारा किया जाता है तो हम % Profit ज्यादा रखेंगे। क्योंकि ज्यादा आय वाले व्यक्ति कीमतों को महत्व नहीं देते। इस विधि का प्रयोग 1979 में एक अमेरिकन कम्पनी ने Use करके Profit कमाया था।

#### हानि :-

हर ज्यादा आय वाला व्यक्ति कीमत को महत्व न दे यह व्यावहारिक नहीं है।

**5. उत्पाद की अवस्था को ध्यान में रखते हुए कीमत तय करना (Price related to the stage in the life cycle of the product)—** इस विधि के द्वारा हम यह ध्यान देंगे कि हमारा उत्पाद किस अवस्था में है जैसे :-

**1. पहली अवस्था (एकाधिकार अवस्था)—** इस अवस्था में एक ही प्रकार उत्पाद बनाना आता है। ऐसे समय लागत में अधिक लाभ जोड़कर कीमत तय करनी चाहिए।

**2. मध्यावस्था—** जब उस उत्पाद को बनाने वाली अन्य फर्म भी बाजार में आ गई है तो लागत में लाभ का अनुपात कम रखकर कीमत तय करनी चाहिए जिससे ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाया जा सके।

**3. अन्तिम अवस्था—** जब एक ही उत्पाद को बनाने वाली अनेक फर्म हो तो उसे लागत में लाभ का कम से कम % लगाकर कीमत तय करनी चाहिए।

**निष्कर्ष—** आज तक कोई भी ऐसी सर्वमान्य विधि नहीं हुई है जिसके आधार पर एक बहु उत्पाद का उत्पादन करने वाली फर्म तर्क के आधार पर निर्णय ले सके कि उसके द्वारा उत्पादित विभिन्न उत्पादों की कीमत क्या हो जो उसको अधिकतम लाभ दे सके। यह भी विवाद का मुद्दा बना हुआ है कि फर्म का उद्देश्य क्या होना चाहिए और कौन से काल में उसका लाभ अधिक हो। कुछ फर्म अल्पकाल में तो कुछ फर्म दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करना चाहती है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि विभिन्न फर्म अपने उत्पाद की कीमत विभिन्न आधार पर तय करती है।

## अध्याय 13

### वैधानिक कीमत

#### SATUTORY PRICING

वैधानिक कीमत वह किमत होती है जो सरकार द्वारा स्थापित एक कमीशन (समिति) द्वारा तय की जाती है। सामान्य वस्तुओं सम्बन्धी भारत में लोहा, इस्पात, कपास, चीनी, कागज, माचिस, नमक व अनाज आदि पर इसकी कीमतें तय की जाती हैं। भारत में ये कीमतें इस समय Beuro (ब्यूरो) of Investment cost and Price conversion or aggregate cost and price concersion द्वारा तय की जाती हैं।

**कीमत तय करने की विधि निम्न है :-**

(i) **लागतों का निर्धारण :-** किसी वस्तु की कीमत तय करते समय वह कमीशन उस वस्तु पर आने वाली लागतों के बारे में अध्ययन करती है।

(ii) **लाभ का निर्धारण :-** यह संस्था यह भी तय करती है कि इस वस्तु के उत्पादक को कम से कम कितना लाभ मिलना चाहिए, जो सही हो।

(iii) **प्रबन्धकीय ऐजेन्ट कमीशन :-** सरकार यह भी देखती है कि उस वस्तु को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने वाली फर्म का कम से कम कितना कमीशन होना चाहिए। इस प्रकार सरकार जरूरी वस्तुओं सम्बन्धी एक संवैधानिक कीमत तय करती है जिससे उत्पादक व उपभोक्ता दोनों की दीर्घकाल में लाभ पहुँचाता है।

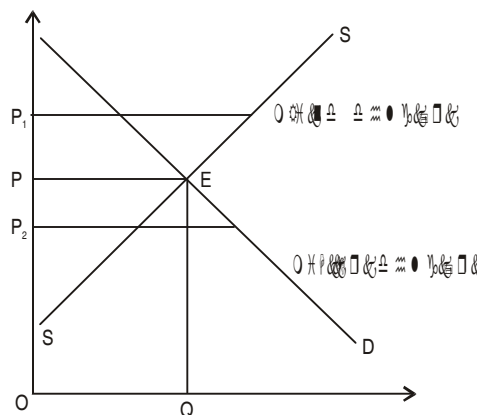
**व्याख्या—**जब सरकार को यह महसूस होता है कि उत्पादक को यदि खुले बाजार के भरोसे छोड़ दिया जाए तब या तो उत्पादक को परेशानी उठानी पड़ सकती है या उपभोक्ता शोषण का शिकार हो सकता है। उस वक्त सरकार एक संवैधानिक कीमत तय करती है जो उत्पादक और उपभोक्ताओं को सही हिस्सा दिलाने में सहायक होती है।

कीमत कम या ज्यादा सरकार दो कारणों से करती है :-

(i) उत्पादक की सहायता के लिए

(ii) उपभोक्ता की सहायता के लिए

**वैधानिक कीमत का निर्धारण :-**



चित्र 1.

रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि OP कीमत वैधानिक कीमत होगी। जिस पर उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों सन्तुष्ट होंगे। क्योंकि  $e$  बिन्दु पर मांग तथा पूर्वी वक्र दोनों एक दूसरे को काटते हैं इसलिए यह सन्तुलन का बिन्दु होगा। अगर कीमत  $OP_1$  निर्धारित की जाती है तो इससे उत्पादक को लाभ होगा और उपभोक्ता को शोषण होगा क्योंकि उन्हें थोड़ी मात्रा के लिए अधिक कीमत चुकानी पड़ेगी। दूसरी तरफ अगर कीमत  $OP_2$  निर्धारित की जाती है तो इससे उपभोक्ता को भी लाभ होगा और उत्पादक को हानि होगी। लेकिन OP की कीमत वैधानिक कीमत होगी और इस पर दोनों सन्तुष्ट होंगे।

(1) **Statutory Pricing निर्धारण करने सम्बन्धी दिक्कतें**—सरकार के लिए देी कीमत का अनुमान लगाना मुश्किल होता है जो उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों के लिए सही होता है।

(2) **लागतों का निर्धारण**—सरकार जो कीमत निर्धारण करती है, उसमें लागतें भी शामिल होती हैं। लेकिन सरकार द्वारा लागतों का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वह केवल जो उत्पाद पर लागतें आती हैं उन्हीं को ध्यान में रखकर निर्धारित करती है। लेकिन वह उत्पादन के Labour को ध्यान में नहीं रखता।

(3) **उत्पादक के लाभ का निर्धारण**—सरकार द्वारा यह तय करना कि किस उत्पादक को कितना लाभ मिलना चाहिए, बहुत कठिन है।

(4) **एजेन्ट के कमीशन का निर्धारण**—एजेन्ट के कमीशन का निर्धारण सरकार किसी Specific नियम के तहत नहीं करती कि प्रबन्धकीय एजेन्ट को कितना कमीशन मिलना चाहिए।

(5) कई वस्तुओं पर यह नीति फेल साबित होती है। जैसे हिमाचल में सेब से सम्बन्धित, हरियाणा पंजाब में गेहूँ से सम्बन्धित जो उपभोक्ता को देने वाली Quality कम हो जाती है।

**सारांश**—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सरकार को कुछ आवश्यक वस्तुओं और कीमतों पर नियन्त्रण रखना चाहिए जिससे आवश्यक वस्तुओं का उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं तथा उन वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उत्पादकों को भविष्य के बारे में चिंता न रहे।

## UNIT—III

## अध्याय 14

## पूंजी बजटन की प्रकृति और समस्याएं

## NATURE OF CAPITAL BUDGETING PROBLEM

पूंजी से हमारा अभिप्राय मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तु जैसे- मशीन, ईमारत आदि से है जिससे दीर्घकाल में या भविष्य में उत्पादन में सहायता मिलती है। पूंजी की उत्पादकता इस बात पर निर्भर करती है कि उसका प्रयोग कहाँ किया जाए। एक विवेकशील उत्पादक हमेशा इस प्रयास में रहता है कि अपना धन इस प्रकार के क्षेत्र में लगाए जिससे वो भविष्य में ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त कर सके। पूंजी बजटन में हम उत्पादक के दीर्घकाल पूंजी सम्बन्धी निवेश के प्रति निर्णय लेने में प्रयोग किए जाने वाले साधारण कदमों की व्याख्या करते हैं।

पूंजी सम्बन्धी व्यावसायिक निर्णय लेना काफी जटिल कार्य होता है कि किस प्रकार की हो, कितनी मात्रा में नई पूंजी को लगाया जाए, धन को कितनी मात्रा मूल्यहास के लिए रखें और किस समय वह पूंजी लगानी चाहिए।

प्रबन्धक द्वारा किसी क्षेत्र की पूंजी का अनुमान लगाने निर्णय लेने और फर्म के दिए हुए उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किसी एक क्षेत्र के चुनाव करना पूंजी बजटन द्वारा आसान को जाता है।

**पूंजी बजटन**—“दीर्घकाल में निवेश करने के लिए एक विवेकशील क्षेत्र का चुनाव करना जो अधिकतम लाभ प्रदान करता हो पूंजी बजटन कहलाता है।”

## Nature of Capital Budgeting and Problems

1. **पूंजी खर्च की परिभाषा** :- पूंजी बजटन में पूंजी का अर्थ दीर्घकाल निवेश के लिए खर्च किए जाने वाले धन से है, जिनको अल्पकाल में व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। पूंजी बजटन में समान्यतया वह खर्च शामिल किया जाता है जो एक वर्ष की अवधि या उससे ज्यादा अवधि के लिए किया जाता है। पूंजी बजटन में शामिल किए जाने वाले फर्म के खर्च:-

- (i) नई पूंजी उपकरणों पर खर्च
- (ii) नई फर्म द्वारा उत्पादित की गई दीर्घकालीन सम्पत्ति
- (iii) वर्तमान पूंजी स्टॉक में वृद्धि करने पर खर्च
- (iv) मूल्यहास पूंजी को बदलने पर खर्च
- (v) उन विज्ञापनों पर खर्च जिनसे दीर्घकाल में फर्म की आय में वृद्धि होती है।
- (vi) फर्म द्वारा अनुसंधान और विकास पर खर्च।

2. **योजनाकाल का निर्धारण** :- पूंजी खर्च में बहुत ऊँचे स्तर की अनिश्चितता पाई जाती है। उस अनिश्चितता को कम करने के लिए फर्म एक योजना बनाती है।

एक अच्छी योजना के तत्व :-

- (A) प्रभावपूर्ण, क्रियान्वन और नियन्त्रण हो।
- (B) पुरानी योजनाओं के साथ ताल-मेल स्थापित किया जाए और भविष्य में फर्म के लाभ को ध्यान में रखा जाए।
- (C) सही पैमाने की बचतों को ध्यान में रखकर योजना का निर्धारण।,
- (D) सही वित्त प्रबन्ध के लिए योजना बनाना और समय पर वित्त का प्रबन्ध करना।

**3. Choice of Decision rule (निर्णय लेने वाले नियमों का चुनाव)**—एक Project का विभिन्न समसया है कि किस Project को चुना जाए व किसे छोड़ दिया जाए। सामान्यतः इसके लिए हम चार विधियों का अध्ययन करते हैं जो किसी प्रबन्धक को यह निर्णय लेने में सहायता देते हैं कि कौन सा Project लाभदायक है। ये विधि निम्न है :-

- (A) Present Value Criteria
- (B) Net Present Value
- (C) Internal rate of return Method
- (D) Pay back period Method

जब हम किसी विधि को चुन लेते हैं तो Final Project का चुनाव करने के लिए दो विधियां हैं जो निम्न हैं :-

- (A) Accept reject Approach
- (B) Ranking Approach

**4. Collection of Necessary Data (आवश्यक आंकड़ों को इकट्ठा करना)**—

- (A) Market rate of Interest के आंकड़े एकत्रित करना।
- (B) Project की पूंजी लागत क्या होगी इसके बारे में आंकड़े एकत्रित करना।
- (C) विभिन्न वैकल्पिक के आंकड़े एकत्रित करना।

**सारांश :-** किस पूंजी पर कौसी Plan के तहत कौन सी विधि से विभिन्न के बारे में निर्णय लेना और लेने से पहले आंकड़ों को इकट्ठा करना तथा Project का चुनाव करना जो सर्वश्रेष्ठ हो, पूंजी बजटन में शामिल किया जाता है।

# अध्याय 15

## निवेश का मूल्यांकन

### INVESTMENT DECISION

एक फर्म के पास बहुत से वैकल्पिक निवेश क्षेत्र हों जिनमें से उसको किसी एक का चुनाव करना पड़ता है तो फर्म यह कैसे तय करे कि उन विभिन्न निवेश क्षेत्रों में से सबसे अच्छा निवेश किस क्षेत्र में होगा। सामान्यतः एक फर्म यह निर्णय दो प्रकार से करती है :-

1. जहां लाभ की दर अधिकतम है (Probability)
2. निश्चितता और जोखिम (Certainty & Risk)

**Investment Decision :-** हम यह कैसे निर्धारित करें कि कौन से Project में अधिकतम Probability और न्यूनतम Risk हो इस प्रक्रिया को निवेश मूल्यांकन कहते हैं। इसको मापने की विधियां विभिन्न हैं।

1. Payback Period Method
2. Present Value Method (P.V.Method)
3. Net Present Value Method (N.P.V.)
4. Internal Rate of Return Method (I.R.R.)

**1. Payback Period Method :-** इस विधि द्वारा यह देखा जाता है कि जिस Project में हम जितना निवेश कर रहे हैं। वह हमें वापिस कितने वर्षों में प्राप्त हो जायेगा। जितना जल्दी हमें उस Project पर लगाया पैसा वापिस मिलता है वहीं Project ज्यादा अच्छा होता है।

Project	खर्चा	आय प्रति वर्ष	PBP	Ranking	Accept/Reject
A	20,000	4,000	5 वर्ष	Second	Rej.
B	50,000	8,000	6 ¼ वर्ष	Third	Rej.
C	40,000	6,000	6.8 वर्ष	Fourth	Rej.
D	40,000	10,000	4 वर्ष	First	Accept

विभिन्न Project का मूल्यांकन Pay Back Period Method से करने पर सबसे अच्छा Project D मालूम होता है। प्रोजेक्ट के चुनाव के लिए हमारे पास दो विधियां हैं :-

(i) **Accept-Reject Approach :-** इसमें हम जो Project हमें अच्छा लगता है उसका चुनाव करके उसमें निवेश करते हैं अर्थात् उस Project को Accept और बाकी को Reject कर देते हैं या त्याग देते हैं। इन विभिन्न Projects में से हम D को Accept और बाकी को reject कर देंगे।

(ii) **Ranking Method :-** इस Method में हमें जो Project अच्छा लगेगा उसे 1st rank और उससे दूसरे को second rank इसी प्रकार सबसे घटिया Project को last rank देंगे। इन Projects में हम को 1st rank, A को Second, B को Third और C को Fourth rank देंगे।

**Pay Back Period Method की विशेषताएं :-**

- (i) यह risk और लाभ की दी दोनों का समावेश है।
- (ii) यह Project की प्रतिवर्ष आय से सीधे तौर पर स्पष्ट निर्णय लेने में सहायक है।
- (iii) यह Project इस मान्यता पर आधारित है कि फर्म जो Project निवेश करेगी उससे प्रतिवर्ष आय कितनी होगी। यह अनुमान लगाया जा सकता है।
- (iv) स्पष्ट और सरल विधि है जो आम व्यक्ति के आसानी से समझ में आ जाती है।

**आलोचनाएं :**

- (i) किसी भी Project को शुरू करने पर उसकी केवल शुरूआती लागतें ही नहीं आती बल्कि उसे बाद में भी निवेश करना पड़ता है। जिनका यह विधि अध्ययन नहीं करती।
- (ii) प्रत्येक Project से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि उससे प्रतिवर्ष आय कितनी वर्ष में Cash हो जाएगा। यह लाभ की दर को नहीं बताता।
- (iii) इस विधि के तहत केवल इस बात का पता चलता है कि हमारा शुरूआती निवेश कितनी वर्ष में Cash हो जाएगा। यह लाभ की दर को नहीं बताता।
- (iv) इस विधि में केवल यह देखा जाता है कि Project की आय को वसूल होने में कितने वर्ष लगेंगे बल्कि आय के साथ प्रबंधक को यह भी देखना होता है कि Project से लाभ कितना होगा।
- (v) यह विधि जितनी आसान है उतनी ही अस्पष्टता पर आधारित है।

**2. Present Value Method (P.V.) -** यह विधि निवेश मूल्यांकन संबंधी सही निर्णय लेने में सक्षम है क्योंकि इस विधि के तहत इस बात की ओर ध्यान दिया जाता है कि किसी भी Project में निवेश पहले होता है और उससे प्राप्त होने वाली आय में समय लगता है। अलग-अलग Project में समय भी अलग-अलग लगता है। इस विधि में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि वर्तमान में किस Project के आय अधिक होगी।

<i>Project</i>	<i>प्रतिवर्ष आय</i>	<i>Time</i>	<i>P.V.</i>	<i>Ranking</i>	<i>Accept/Reject</i>
A	5,000	3	12434	Second	Reject
B	8,000	2	13884.9	First	Accept
C	10,000	1	9090.90	Third	Reject

$$PV = \frac{FV}{(1+r)^t} \text{ ब्याज की दर} = 10\%$$

$$P.V.(a) = \frac{5000}{(1+0.1)} + \frac{5000}{(1+0.1)^2} + \frac{5000}{(1+0.1)^3}$$

$$y = \text{Income}$$

$$r = \text{rate of Intt.}$$

$$= \frac{5000}{11/10} + \frac{5000}{(11/10)^2} + \frac{5000}{(11/10)^3}$$

$$= 5000 \times 10/11 + 5000 \times 100/121 + 5000 \times 1000/1331$$

$$= 4545.45 + 4132.23 + 3756.56$$

$$= 12434.21$$



$$\begin{aligned}
 P.V.(b) &= \frac{8000}{(1+0.1)} + \frac{8000}{(1+0.1)^2} \\
 &= 8000 \times 11/10 + 8000 \times 100/121 \\
 &= 7272 + 6611.57 = 13884.29
 \end{aligned}$$

$$P.V.(c) = \frac{10000}{(1+0.1)} = 9090.90$$

**विशेषताएं :-**

- (i) भविष्य की आय वर्तमान के आधार पर जांचता है।
- (ii) प्रोजेक्ट से मिलने वाली कुल आय का आधार है।
- (iii) यह तथ्यों scientific की जांचती हुई वर्तमान आय को ध्यान रखती है।
- (iv) यह साधारण विधि है।

**आलोचनाएं :-**

- (i) केवल शुरूआती लागत देखते हैं और वो भी समान मानकर चलते हैं।
- (ii) भविष्य की आय के बारे में तय करना ब्याज की दर discount करना दोनों की मान्यताओं पर आधारित Concept है क्योंकि ब्याज की दर भी बदलती रहती है और भविष्य में मिलने वाली आय के बारे में पता लगाना असम्भव है।
- (iii) विभिन्न प्रोजेक्ट से विभिन्न सालों में कितनी-२ आय होती है और कितने वर्ष वह प्रोजेक्ट कम करेगा यह कुछ भावागत तत्व पर निर्भर करते हैं।

**3. Net Present Value Method (NPV) :-** यह विधि निवेश निर्णय लेने के लिए सर्वोत्तम विधि है। इसमें हम प्रोजेक्ट से मिलने वाली आय की वर्तमान Value और लागत दोनों को ध्यान में रखकर निर्णय लेते हैं। इस विधि द्वारा लिए गए निर्णय Pay Back Period Method और Present Value Method से संतोषजनक हैं।

$$\text{Formula :- } NPV = PV - C$$

$$\text{Net Present Value} = \text{Present Value} - \text{Cost}$$

जिस Project में NPV ज्यादा अच्छा होती है वह Project माना जाता है जिस Project की NPV कम होती है वह घटिया Project माना जाता है। इस विधि को भिन्न-भिन्न प्रकार से निवेश निर्णय लेने के लिए प्रयोग किया जाता है।

- (i) जब केवल Project की स्थिर लागतें हों और आय विभिन्न वर्षों में प्राप्त होती हों।
- (ii) जब Project में लागत-स्थिर + परिवर्तनशील दोनों हों और आय विभिन्न वर्षों में होती है।
- (i) जब Project की लागत स्थिर हो और आय विभिन्न वर्षों में होती है।

Project	प्रतिवर्ष स्थिर लागत	पहले वर्ष आय	दूसरे वर्ष आय
A	18,000	10,000	12,000
B	15,000	8,000	10,000

$$\text{मिश्रधन} = \text{मू०} (1+r)^{\text{समय}}$$

$$FV = PV \cdot (1 + r)^t$$

$$PV = \frac{FV}{(1 + r)^t}$$

$$TPV = \sum_{i=1}^n \frac{FV}{(1+r)^t}$$

हम जानते हैं कि

$$\text{Net Present Value (NPV)} = \text{TPC} - \text{TC}$$

Project A की NPV का अनुमान

$$TPV_A = \frac{10000}{\left(\frac{10}{100}\right)^1} + \frac{12000}{\left(\frac{10}{100}\right)^2}$$

$$TPV_A = 9090.90 + 9917.35$$

$$NPV_A = 19008.25 - 18000$$

$$= 1008.25$$

$$NPV_A = 1008.25$$

Project B की N.P.V का अनुमान

$$TPV_B = \frac{8000}{1.1} + \frac{10000}{1.21}$$

$$= 7272.72 + 8264.36$$

$$= 15537.18$$

$$NPV_B = PV_B - C$$

$$= 15537 - 15000 = 537$$

<i>Project</i>	<i>NPV</i>	<i>Accept/Reject</i>	<i>Ranking</i>
A	1008	Approach	Approach
B	537	Accept	Ist
		Reject	IIInd.

(ii) जब Project में लागत = स्थिर + परिवर्तनशील दोनों हों और आय भी विभिन्न वर्षों में होती है।

$$NPV = \frac{\sum R_n}{(i+r)^n} - \sum \frac{(n)}{(1+r)^n}$$

<i>C</i>	<i>Y</i>	<i>Year</i>
50000	0	0 year
10000	20000	Ist year
10000	20000	II year
---	20000	III year

$$\begin{aligned} \sum_{i=1}^n \frac{R_n}{(1+r)^n} &= \frac{20000}{\left(\frac{10}{100}\right)^1} + \frac{20000}{\left(\frac{10}{100}\right)^2} + \frac{20000}{\left(\frac{10}{100}\right)^3} + \frac{20000}{\left(\frac{10}{100}\right)^4} \\ &= 18181.81 + 16528.92 + 15037.5 + 13888 \\ &= 63637.03 \\ \sum_{i=0}^n \frac{C}{(1+r)^n} &= \frac{C_0}{(1+r)^0} + \frac{C_1}{(1+r)^1} + \frac{C_2}{(1+r)^2} \\ &= \frac{5000}{0} + \frac{10000}{1.1} + \frac{10000}{1.21} \\ \text{TPC} &= 50000 + 9090.9 + 8264 \\ &= 67355.36 \\ \text{NPV} &= \text{TPV} - \text{TPC} \\ &= 63637 - 67355 \\ &= -3718.36 \end{aligned}$$

**विशेषताएं :**

- (i) यह Method वर्तमान आधार को महत्व देता है।
- (ii) PBP और Present Value Method से सही निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।
- (iii) Cost को स्थिर और परिवर्तनशील दोनों ओर अध्ययन करता है।
- (iv) समान प्रतिवर्ष आय की मान्यता से मुक्त है।
- (v) फर्म द्वारा अर्जित सारी आय और उस पर आने वाली सारी लागत को ध्यान में रखता है।

**आलोचनाएं :**

- (i) भविष्य आय और लागत के बारे में आंकड़े प्राप्त करना असंभव सा है।
- (ii) काफी जटिल विधि है।
- (iii) आय और लागत को एक निश्चित समय के बाद का ही अध्ययन करता है बल्कि वर्तमान में लागत और आय प्रतिदिन बदलती रहती है।

**निष्कर्ष :-** संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अगर हमारे पास आंकड़े सही उपलब्ध हों तो यह विधि सर्वश्रेष्ठ है।

## प्रतिफल की आन्तरिक दर विधि (Internal Rate Of Return Method)

इस कसौटी से अभिप्राय परियोजनाओं के लाभों और लागतों के प्रवाहों में निहित प्रतिफल की प्रतिशत दर है। स्टीफन ए. मार्गलिन के अनुसार, प्रतिफल की आन्तरिक दर (IRR) वह बट्टा दर है जिस पर प्रतिफल का वर्तमान मूल्य घटा लागतें शून्य हों। दूसरे शब्दों में, जो बट्टा दर परियोजना के वर्तमान मूल्य को शून्य बनाती है उसे IRR कहते हैं। अर्थात् IRR वह बट्टा दर है जो नकद अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को नकद बाह्य प्रवाहों के वर्तमान मूल्य के बराबर करेगी। NPV की तरह IRR भी बट्टा तकनीक पर आधारित है। इस तकनीक के अन्तर्गत भविष्य में होने वाले नकद

अन्तप्रवाहों का इस तरह बट्टा किया जाता है कि उनका कुल वर्तमान मूल्य कुल नकद बाह्यप्रवाहों के वर्तमान मूल्य के बिल्कुल बराबर होता है। प्रबंधन को भविष्य में होने वाले नकद प्रवाहों की समय-सूची तो ज्ञान होती है परन्तु बट्टा की दर ज्ञात नहीं होती।

जहां,  $A_1, A_2, A_3$  आदि पहले, दूसरे, तीसरे वर्ष की समाप्ति पर नकद अन्तप्रवाह हैं।

$r$  = प्रतिफल की आन्तरिक दर;

$n$  = परियोजना का संभावित जीवन; तथा

$C$  = परियोजना की लागत है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी प्रोजेक्ट में 1, करोड़ रु० का निवेश किया जाता है पहले वर्ष के अंत में 1,200 करोड़ रु० हो जाता है। अब प्रतिफल की दर की गणना निम्न प्रकार की जाएगी।

जहां,

$1$  = नकद बाह्य प्रवाह अर्थात् प्रारंभिक पूंजी निवेश;

$A_1$  = पहले वर्ष के अंत में नकद अन्तप्रवाह;

$r$  = निवेश से प्राप्त प्रतिफल की दर

इस प्रकार,

$$\text{रु०} \quad 1,000 =$$

$$\text{या} \quad 1,000 + 1,000r = 1,200$$

$$\text{या} \quad 1,000r = 1,200 - 1,000$$

$$\text{या} \quad 1,000r = 200$$

$$r = 200/1,000$$

$$= .20 \text{ या } 20\%$$

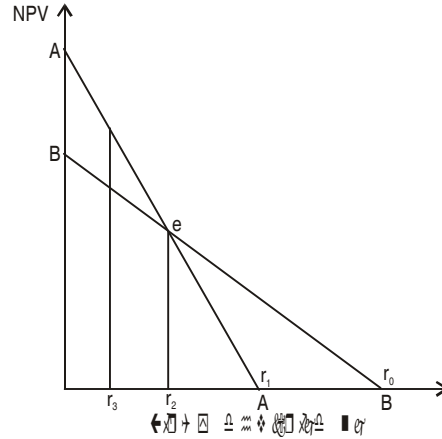
यदि प्रतिफल एक से अधिक वर्षों तक आता है तो प्रतिफल की दर की गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जाएगी :

$$C = \frac{A_1}{(1+r)^1} + \frac{A_2}{(1+r)^2} + \frac{A_3}{(1+r)^3} \dots \dots \dots \frac{A_n}{(1+r)^n}$$

## स्वीकार या अस्वीकार करने की कसौटी

कोई पूंजी परियोजना तभी स्वीकार करने योग्य होती है जब उसकी प्रतिफल की आंतरिक दर (IRR) प्रतिफल की इच्छित दर से अधिक हो।

सापेक्ष लाभदायकता के लिए दो परियोजनाओं में से पहली की IRR दूसरी से अधिक हो तो पहली श्रेष्ठ होगी और उसे ही चुना जाएगा। यदि दो वैकल्पिक परियोजनाओं के वर्तमान मूल्य दिए हों तो उनमें से कौन सी चुनी जाएगी यह दर पर निर्भर करता है। इसे चित्र 1 में दर्शाया गया है। समानान्तर अक्ष पर प्रतिफल की दर तथा अनुलम्ब अक्ष पर शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) लिया गया है। वक्र  $AA_1$  प्रथम परियोजना का निवेश व्यक्त करता है तथा वक्र  $BB_1$  दूसरी परियोजना का निवेश। परियोजना (B) की प्रतिफल की दर, प्रथम परियोजना (A) की अपेक्षा अधिक है।  $O_r$  पर प्रतिफल की दर  $O_{r_1}$  की अपेक्षा अधिक है। क्योंकि  $O_{r_2}$  पर दोनों पर प्रतिफल की दर समान है।



चित्र 1.

परन्तु यदि प्रतिफल की दर  $Or_2$  से कम हो जाती है तो प्रथम परियोजना (A) चुनी जाएगी क्योंकि AA' पर निवेश का शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) अधिक होगा, जैसे  $Or_3$  पर शुद्ध वर्तमान मूल्य  $ar_3$  है जबकि BB' पर यह  $br_3$  है। प्रतिफल की दर के परिवर्तन के अनुसार कभी प्रथम तथा कभी दूसरी परियोजना को चुनना switching तथा re-switching कहलाता है।

### गुण (Merits)

इस विधि के निम्न गुण हैं :

1. यह विधि मुद्रा के समय मूल्य पर विचार करती है।
2. इस विधि के प्रयोग के लिए पूंजी का लागत की गणना कोई आवश्यक शर्त नहीं है।
3. यह विधि परियोजना की संपूर्ण विधि के दौरान होने वाले नकद प्रवाह पर विचार करती है।

### सीमाएं (Limitations)

1. जब किसी परियोजना की लाभदायकता की गणना करने के लिए एक प्रतिफल की दर मान ली जाती है तो उसे परिवर्तित करना संभव नहीं होता है।
2. दीर्घावधि में फल देने वाली परियोजना की प्रतिफल की दर से गणना करना कठिन होता है क्योंकि ऐसी परियोजना कई वर्षों तक लाभ नहीं देती है।
3. यदि परियोजनाएं एक दूसरे से भिन्न हों तो यह मापदण्ड ऐसी परियोजना का पक्ष करता है जिसकी पूंजी लागत अन्य परियोजनाओं की अपेक्षा कम होती है। इसलिए यह मापदण्ड अत्यधिक पूंजी-गहन परियोजनाओं पर लागू नहीं किया जा सकता।
4. प्रतिफल की आन्तरिक दर को सार्वजनिक निवेश के लिए प्रयोग करने से सही निर्णय प्राप्त नहीं होते हैं। इसका मुख्य कारण प्रतिफल की आन्तरिक दर के अर्थ से है जिससे यह अभिप्राय लिया जाता है कि किसी मध्यवर्ती लाभों या लागतों का भी आन्तरिक दर (r) पर बट्टा काटा जाता है। यह वास्तविक नहीं है क्योंकि सार्वजनिक निवेश में मध्यवर्ती लाभों या लागतों पर इस प्रकार टिटा काटना संभव नहीं होता है।
5. प्रायः ऐसी परियोजनाएं भी होती हैं जिन पर प्रथम समय-अवधि में ही समस्त व्यय नहीं किया जा सकता जिससे उनकी प्रतिफल की आन्तरिक दर को निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है।

6. प्रतिफल की आन्तरिक दर की कसौटी ऐसी निवेश परियोजनाओं के लिए उपयुक्त है जो एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र हों। ऐसी हालत में विभिन्न परियोजनाओं सबसे पहले चुनी जाएगी श्रेणीबद्ध किया जा सकता है तथा उच्चतम दरों वाली परियोजनाओं को क्रमबद्ध चुना होता है, जब कि समस्त प्राप्य निधियां खर्च नहीं हो जाती। परन्तु वास्तविकता यह है कि सार्वजनिक निवेश एक दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र नहीं होते बल्कि वैकल्पिक सार्वजनिक निवेशों के बीच निवेश केवल उनकी प्रतिफल की आन्तरिक दरों के आधार पर ही नहीं किए जा सकते।
7. पूंजी राशनिंग की समस्या वहां उत्पन्न होती है, जहां परियोजनाएं, प्रतिफल की दी को क्रमबद्धता के आधार पर नहीं चुनी जा सकती। वे केवल अपने NPV पर ही चुनी जा सकती है।

## अध्याय 16

### पूंजी के स्रोत

#### Sources of Capital

एक फर्म को किसी Project के लगाने के लिए सबसे पहले पूंजी की आवश्यकता होती है और फर्म पूंजी कहां से प्राप्त करे यह फर्म के लिए महत्वपूर्ण कार्य है। इसलिए फर्म को ऐसे स्रोतों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है जिनसे फर्म को पूंजी प्राप्त होती है और ये स्रोत कौन से हैं जिनसे फर्म या कम्पनी आय पूंजी प्राप्त करती है। एक फर्म के पास पूंजी प्राप्त करने के कई स्रोत होते हैं लेकिन उनसे फर्म को अनिश्चितता व जोखिम का सामना करना पड़ता है।

किसी फर्म या कम्पनी के मुख्य रूप से दो स्रोत होते हैं जिनसे फर्म पूंजी प्राप्त करती है जो निम्नलिखित हैं।

(i) Internal Sources आंतरिक स्रोत

(ii) External Sources बाहरी स्रोत

फर्म मुख्यतः इन्हीं दो प्रकार के स्रोतों का पूंजी निर्माण के लिए प्रयोग करती है। इनके द्वारा फर्म कई प्रकार की पूंजी अपने पास रखती है। या फिर किसी से उधार ले सकती है। जो फर्म के मुश्किल समय में काम आती है या दूसरे Project को शुरू करने के लिए प्रयोग में ली जाती है।

**(I) Internal Sources :-** आंतरिक साधन वे होते हैं जो फर्म के अपने होते हैं तथा वह उन्हीं के द्वारा आय (पूंजी) प्राप्त करती है जो निम्नलिखित हैं :-

मूल्याह्रास खाते में धन

(i) Deperisation Account

(ii) Retained Profit

(i) **Deprisation Account**—मूल्याह्रास खाता कम्पनी या फर्म का वह खाता होता है जो फर्म अपनी मशीनों की टूट-फूट के लिए Project के शुरू में ही अलग से देती है तथा एक निश्चित आय का हिस्सा कम्पनी या फर्म अपने खाते में रख देती है। [एक निश्चित आय का हिस्सा] जिसमें लाभ को शामिल नहीं किया जाता है। इस Sources में मैनेजर कभी भी बिना अनुमति के प्रयोग कर सकता है तथा शेयरधारी इसके प्रति उदासीन होते हैं। उन्हें इससे कोई लेना-देना नहीं होता तथा इसे कम्पनी या फर्म बदल नहीं सकती। मूल्याह्रास खाते को कम्पनी या फर्म कभी किसी Project को शुरू करने के लिए या किसी प्रकार की पूंजीगत बाधा आने पर प्रयोग कर सकती है।

(ii) **Retained Profit**—ये कम्पनी या फर्म के वे लाभ होते हैं जो फर्म के किसी Project से होते हैं तथा पूरे लाभों को फर्म शेयरधारियों में वितरित नहीं करती है बल्कि कुल % लाभ कुछ भाग अपने पास रख लेती है। तथा कुछ % लाभ का शेयरधारियों में बांट देती है। जो लाभ अपने पास रखती है वह फर्म के अनिश्चितता तथा भविष्य में काम आता है और Retained Profit का कितना हिस्सा रखे यह कम्पनी या फर्म की परम्परा पर निर्भर करता है या शेयरधारी अपने कितने शुद्ध लाभ छोड़ने के लिए तैयार है। शेयरधारियों को प्रभावित करता है तथा एक मैनेजर को इनका प्रयोग करने के लिए शेयरधारियों की इजाजत या अनुमति लेनी पड़ती है कि क्या हम आपके लाभांश को इस Project में प्रयोग कर सकते हैं। इसे किसी नए Project में भी लगा सकते हैं।

एक फर्म अपने आन्तरिक स्रोतों का प्रयोग क्यों करना चाहती है इसके निम्नलिखित कारण हैं :-

1. इससे फर्म की स्मद्धि व प्रबन्धकीय कुशलता का पता चलता है।
2. इसकी कोई अतिरिक्त लागत नहीं होती।
3. इससे फर्म की वित्त की अनिश्चितता कम होती है।
4. फर्म की साख बढ़ती है।

(II) **External Sources**—ये फर्म या कम्पनी के अपने स्वयं के स्रोत नहीं होते हैं बल्कि फर्म या कम्पनी को बाहर से प्राप्त करने पड़ते हैं जिनसे फर्म या कम्पनी को पूंजी की प्राप्ती होती है जो निम्नलिखित है :-

- (i) Sale of Bond
- (ii) Issuing Common share
- (iii) Issuing Preferential share Issuing Shares
- (iv) Direct Loans

(i) **Bond**—कोई भी बड़ी कम्पनी या फर्म अपने Bonds जारी कर सकती है जिसके आधार पर फर्म या कम्पनी किसी सामान्य व्यक्ति से पैसा उधार ले सकती है इसके लिए फर्म या कम्पनी का आम व्यक्ति को विश्वास होना आवश्यक है तथा कम्पनी या फर्म को Bonds पर ब्याज की दर सामान्य ब्याज की दर से अधिक देनी पड़ती है तभी उस कम्पनी या फर्म को Bonds पर ब्याज की दर सामान्य ब्याज की दर से अधिक देनी पड़ती है तभी उस कम्पनी या फर्म के Bonds को व्यक्ति खरीदते हैं। लेकिन सामान्यतः बड़ी फर्म इसका कम प्रयोग करते हैं। क्योंकि इसकी लागत अधिक आती है।

**Shares** :- शेयर एक फर्म मुख्य रूप से दो प्रकार से जारी करती है या शेयर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(ii) **Common Share**—वे शेयर होते हैं जो फर्म शुरुआत में जारी करती है तथा एक फर्म अपने लाभ को इसमें वितरित करती है और फर्म अपने Divident (लाभांश) का भरोसा देती है। लेकिन पूरी विश्वसनीयता के साथ यह पक्का नहीं कहती कि उनको लाभांश मिलेगा। इसी के आधार पर सामान्य व्यक्ति इनके शेयर खरीदते हैं तथा छोटी फर्म या कम्पनी जिनकी साख नहीं होती है इनके लिए शेयर बेचना मुश्किल कार्य है।

(iii) **Preferential Share**—(पूर्वधिकार अंश) ये वे शेयर होते हैं जिनमें फर्म या कम्पनी निश्चित दर पर Divident (लाभांश) देने का वादा करती है। आज यदि फर्म को ज्यादा लाभ होता है तो फर्म या कम्पनी उन्हें ज्यादा लाभांश भी दे सकती है और यदि फर्म को हानि होती है तो भी फर्म को एक निश्चित दर पर Divident देना ही पड़ता है। वह लाभ या हानि नहीं देखता तथा ऐसे शेयरों पर सामान्य व्यक्ति का विश्वास होता है तथा बाजारिय साख अच्छी होती है।

- (a) redeemable preference share
- (b) irredeemable preference share

(iv) **Direct Loans**—एक फर्म या कम्पनी Commercial Bank, SBI, ICICI या IDBI आदि बैंको से एक निश्चित ब्याज की दर पर ऋण भी ले सकती है, जब उसे सामान्य तरीके से पूंजी न मिले।

**सारांश**—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक फर्म या कम्पनी अपने आन्तरिक स्रोतों से ही पूंजी प्राप्त करना चाहती है न कि बाहरी स्रोतों से। क्योंकि आन्तरिक स्रोतों की लागत कम आती है तथा आसानी से मिल जाते हैं और इनमें जोखिम तथा अनिश्चितता भी नहीं होती जबकि बाहरी स्रोतों में लागत भी अधिक आती है तथा जोखिम भी होता है।



## अध्याय 17

# पूंजी की लागत

## Cost of Capital

पूंजी संरचना में पूंजी की लागत एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है और विभिन्न स्रोतों से पूंजी एकत्रित करते समय पूंजी की लागत को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी भी फर्म या कम्पनी को अपने आन्तरिक व बाहरी साधनों का ज्ञान होता है कि उन्हें कहाँ-2 से पूंजी प्राप्त हो सकती है तो वह इस बात का अवश्य ध्यान रखेगी कि पूंजी की लागत क्या होगी। और फर्म या कम्पनी उसी स्रोत से या वहीं से अधिक पूंजी प्राप्त करती है जहाँ से उसे कम से कम लागत पर अधिक से अधिक पूंजी मिल सके। और यदि पूंजी की सामान्य लागत का फर्म को पता लग जाए तो वह यह तय कर सकती है कि फर्म को कम से कम किस दर पर विकास करना चाहिए जिससे उसे लाभ होना शुरू हो जाए क्योंकि पूंजी की लागत व्यवसाय की लाभ अर्जन शक्ति पर सीधा प्रभाव डालती है। अतः वित्तीय प्रबन्ध को चाहिए कि फर्म के लिए पूंजी की व्यवस्था करते समय इस बात पर विशेष ध्यान रखे कि फर्म की आय पर पूंजी की लागत की अनावश्यक भार न पड़े।

फर्म के पास पूंजी प्राप्त करने के विभिन्न स्रोत होते हैं जहाँ से वह आय या पूंजी प्राप्त करती है। और उस पूंजी की लागत क्या होगी यह जानने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया गया है। जो निम्नलिखित है।

1. Cost of Debt. Capital
2. Cost of Preferencial Share
3. Average Cost of Capital

(1) **Cost of Debt. Capital :-** किसी भी फर्म के लिए ऋण पूंजी का तात्पर्य दीर्घकालीन ऋण पूंजी से होता है और फर्म यह पूंजी ऋण पत्रों व Bonds को जारी करके प्राप्त करती है। और Bonds व ऋण पत्रों पर ब्याज की दर पूंजी की लागत होती है। लेकिन फर्म अपने Bonds व ऋण पत्रों की लागत ज्ञात करने के निम्न formula का प्रयोग करती है। जिससे हमें यह पता चलता है कि फर्म की पूंजी प्राप्त करने की औसत लागत क्या आ रही है। जो निम्नलिखित है :-

$$cd = \frac{i + \frac{MV - NP}{n}}{\frac{MV + NP}{2}} \times 100$$

यहाँ पर  $i$  = वार्षिक ब्याज की मात्रा की दर,  $MV$  = वह पूंजी जो वापिस करनी है।

$NP$  = वह पूंजी जो फर्म ने वास्तव,  $n$  = Number of years में प्राप्त की है।

मान लो Before tax Bond = 1000

Agent Commision = 7.5%

N.P. = 1000 - 75 = 925

$$n = 15 \text{ वर्ष}$$

$$i = 15\% \text{ प्रति वर्ष}$$

$$cd = \frac{\frac{1000 - 925}{2} + 150}{\frac{1000 + 925}{2}} \times 100 = 16.14\%$$

= After tax cost of Capital  
Before tax cost (1-Tax rate)

$$\text{Tax} = 50\%$$

Then  $16.14 (1 - 50/100)$

$$16.14 (1 - 0.5)$$

$$16.14 (0.5) = 8.07\%$$

यदि फर्म को प्रति वर्ष 100% Bonds के जरिए उधार लेने पर फर्म को 8.07% का वास्तविक भुगतान करना पड़ेगा।

(2) Cost of Preferential Share—ये वे शेयर होते हैं जो कोई फर्म या कम्पनी अपने शेयरधारियों को निश्चित % (दर) पर dividend (लाभांश) देने का वादा करती है और उन्हें यह लाभांश अपने शेयरधारियों को देना पड़ता है चाहे फर्म को हानि भी क्यों न हो।

ये शेयर मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं :-

- (i) Redeemable Share (एक निश्चित अवधि में भुगतान करना होता है)
- (ii) Irredeemable Share

इनकी Cost निकालने का formula निम्नलिखित है।

$$CP = \frac{PD + \frac{MV - NP}{n}}{\frac{MV + NP}{2}} \times 100$$

यहाँ पर  $n$  = Number of year, PD = वार्षिक लाभांश

MV = वह पूंजी जो फर्म को भुगतान करनी पड़ती है।

NP = वह पूंजी जो फर्म को वास्तव में प्राप्त होती है।

मान लो,

$$\text{शेयर का मूल्य} = 100 \text{ रूपये}$$

$$\text{लाभांश} = 13.5\%$$

$$\text{Cost of Share Issue} = 7.5\%$$

$$NP = 100 - 7.50 = 92.50\%$$

$$n = 15 \text{ वर्ष}$$

$$CP = \frac{13.5 + \frac{100 - 92.50}{15}}{\frac{100 + 92.50}{2}} \times 100$$

$$\text{Cost of Redeemable Share} = 14.55\%$$

(ii) **Irredeemable Share :-** वे शेयर होते हैं जिनका भुगतान समय काल निश्चित अवधि में नहीं करना होता है।

इनका Cost निकालने का formula निम्नलिखित है।

$$CP = \frac{PD}{NP} \times 100$$

PD = लाभांश

NP = फर्म को प्राप्त वास्तविक आय

(3) **ब्याज की दर का निर्धारण**—जिस ब्याज की दर पर फर्म पैसा उधार लेती है वही उसकी लागत होती है।

(4) **Average Cost of Capital**—कोई भी फर्म लगभग सारी पूंजी किसी स्रोत से प्राप्त नहीं करती है बल्कि थोड़ी-2 सभी स्रोतों से प्राप्त करती है। जिनकी लागत भिन्न-2 होती है। फर्म को अपनी एकत्रित की गई सारी पूंजी की औसत लागत निकालने का formula निम्नलिखित है।

$$WC = \frac{\Sigma CW}{\Sigma W} \quad WC = \text{Weighted Cost}$$

मान लो

	W	C	CW
Bonds	70%	13.5%	94.5%
Pre Share	10%	14.55%	14.5:5%
Loan	20%	18%	3.60%
	$\Sigma W = 100\%$		$\Sigma CW = 145\%$

**A.C.C. = Average Cost of Capital**

$$A.C.C. = \frac{\Sigma CW}{\Sigma W} = \frac{145.0}{100} = 15.50\% \quad \text{होगी।}$$

**कमियाँ—**

1. अर्थव्यवस्था में ब्याज दर विभिन्न पाई जाती हैं।
2. नई फर्मों को शेयरस और बॉण्ड्स से ऋण लेने में समस्या होती है जिससे उनकी पूंजी की लागत का अनुमान लगाना कठिन है।
3. सभी फर्मों के लिए शेयरस और बॉण्ड्स की दलाली एक समान नहीं होती।
4. फर्म बाजार से अलग-अलग समय में अलग-अलग व्यक्ति से उधार लेती रहती हैं जिनमें ब्याज की दर की भिन्नता पाई जाती है।

**निष्कर्ष**—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि फर्म को अपनी विभिन्न प्रकार से प्राप्त पूंजी की लागत निकालना बहुत जटिल कार्य है। परन्तु फर्म पूंजी लागत निकालकर वह अपने Profit rate के संदर्भ में निर्णय ले सकता है।

## अध्याय 18

# फर्म का अधिकतम लाभ सिद्धांत

## PROFIT MAXIMISATION

एक फर्म का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्रदान करना होता है। जब एक फर्म उत्पादन शुरू करती है तो वह किसी भी कीमत पर और विभिन्न साधनों द्वारा अपने लाभ को अधिकतम रखना चाहेगी। एक फर्म जब अपने सीमित साधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त कर रही होती है तो वह उस समय सन्तुलन में होती है। फर्म द्वारा लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य को विवेकपूर्ण व्यवहार माना जाता है।

एक फर्म वस्तु की कितनी मात्रा उत्पादित करे तथा उसकी कितनी कीमत तय करे जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके और फर्म का अभिप्राय मुद्रा लाभ से होता है।

**Profit Maximisation :-** एक फर्म के लाभ वहाँ पर अधिकतम होंगे जहाँ  $MC = MR$  तथा  $MC$  वक्र  $MR$  को नीचे से काटती है। अर्थात् सीमान्त लागत बराबर होनी चाहिए तथा सीमान्त आय वक्र को नीचे से काट रही हो तभी फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकती है। एक फर्म सीमान्त आय को ध्यान में रखकर ही उत्पादन करना शुरू करती है।

**मान्यताएँ—**एक फर्म निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर अपना उत्पादन शुरू करती है—

1. **फर्म का प्रबन्धक ही स्वामी है :-** उद्यमी ही फर्म का स्वामी होता है तथा स्वाभित्व व प्रबन्धक में कोई अन्तर होता और वही सारे निर्णय लेता है।
2. फर्म का एक ही उद्देश्य होता है, अधिकतम लाभ कमाना।
3. **उत्पादन की शर्त**  $MC = MR$  तथा  $MC, MR$  को नीचे से काटती है।
4. **निश्चितता या सम्पूर्ण जानकारी :-** इस मान्यता का अर्थ है कि सभी घटनाएँ निश्चितता के आधार पर घटती हैं। जैसे मालिक को अपनी फर्म की  $MC, AC, MR, AR$  आदि Curves का सम्पूर्ण ज्ञात होता है।
5. **समय अविधि स्वतन्त्र है** अर्थात् अल्पकाल + अल्पकाल = दीर्घकाल
6. **प्रवेश व त्यागने की सभांशना :-** फर्म बाजारों के अनुसार ही प्रवेश व त्याग कर सकती हैं कि कौन सा बाजार है, पूर्ण प्रतियोगिता है या एकाधिकार है।

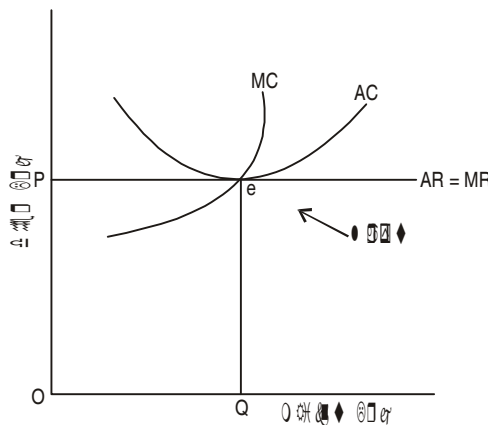
**ब्याख्या—**बाजार को तीन भागों में बाटा जा सकता है तथा उन्हीं के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि कौन से बाजार में कब लाभ अधिकतम होंगे, जो कि निम्नलिखित हैं—

1. पूर्ण प्रतियोगिता
2. अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारिक प्रतियोगिता
3. एकाधिकार

सामान्यतः इन बाजारों में अल्पकाल की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि फर्म तो दीर्घकाल तक कार्यरत रहती है। कोई फर्म यह सोच कर स्थापित नहीं होती कि वह अल्पकाल में कार्य करेगी। इसलिए इन बाजारों में दीर्घकालीन लाभों को ज्ञात करते हैं और दीर्घकाल में—

पूर्ण प्रतियोगिता में सामान्य लाभ  
अपूर्ण प्रतियोगिता में सामान्य लाभ तथा  
एकाधिकार में असामान्य लाभ प्राप्त होते हैं।

(1) **पूर्ण प्रतियोगिता**—पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म जिस वस्तु का उत्पादन करती हैं उनकी कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा किया जाता है। उद्योग द्वारा निर्धारण के कारण फर्म की अपनी कोई निश्चित कीमत नहीं होती तथा सही ढंग से लाभ का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। इसलिए फर्म को उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर ही माल बेचना पड़ता है अतः फर्म को सामान्य लाभ ही प्राप्त होते हैं।

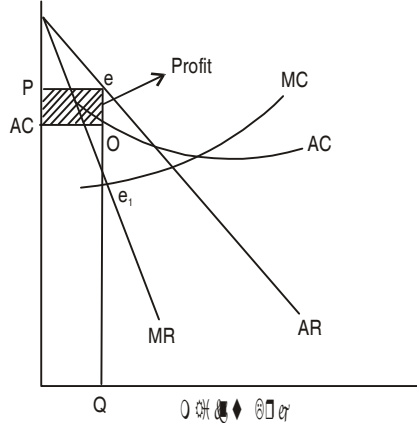


चित्र 1.

इस रेखाचित्र 1 में  $ox$  अक्ष पर उत्पादन तथा  $oy$  पर कीमत तथा लागत है। चित्र से स्पष्ट है कि फर्म को सामान्य लाभ ही प्राप्त हो रहे हैं।  $OP$  वह कीमत है जिसे उद्योग ने निर्धारित किया है। यदि फर्म  $OP$  से अधिक कीमत तय करती है तो वह कीमत  $AC$  के निम्नतम बिन्दु से उपर स्थित होगी। जिससे  $MC$  व  $Price$  वहाँ बराबर होंगे जहाँ फर्म को असामान्य लाभ हो रहे हों। परन्तु उस स्थिति में नई फर्मों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है अतः फर्म दीर्घकाल में  $OP$  से उपर सन्तुलन में नहीं हो सकती। यदि फर्म  $OP$  से कम कीमत रखती है तो कीमत  $MC$ ,  $AR$  तथा  $AC$  से नीचे स्थित होगी, जिससे  $MC$  व  $Price$  ऐसे बिन्दु पर बराबर होगी जहाँ फर्म को हानि होगी। अतः दीर्घकाल में फर्मों को उद्योग छोड़ पाने की संभावना रहती है। जिससे पदार्थ की कीमतें बढ़ जाएगी तथा उद्योग में जो फर्म शेष रह जाती हैं वे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकेंगी। अतः दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म उस समय सन्तुलन में होगी जब कीमत ऐसे बिन्दु पर होगी जब  $AR$ ,  $MR$  वक्र  $AC$  के निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करता है।

(2) **अपूर्ण प्रतियोगिता**—अपूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में तो फर्म को असामान्य लाभ व हानि दोनों हो सकते हैं परन्तु सामान्यतः दीर्घकाल की गणना ही की जाती है क्योंकि अल्पकाल + अल्पकाल = दीर्घकाल। दीर्घकाल में फर्म को सामान्य लाभ ही प्राप्त होते हैं। दीर्घकाल में सामान्यतः लाभ होते हैं। अल्पकाल में असामान्य लाभ भी होते हैं। यदि फर्म  $OP$  से अधिक कीमत रखेगी तो  $AR$  तथा  $MR$  दांयी ओर सरक जाएंगे उसे असामान्य लाभ होंगे और नई फर्मों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाएगी और यदि  $OP$  से कम कीमत रखेगी तो  $AR$  तथा  $MR$  बांयी ओर सरक जाएंगे जिससे उसे हानि होगी अतः दोनों ही स्थितियाँ अल्पकालीन हो सकती हैं। परन्तु दीर्घकाल में उसे सामान्य लाभ ही मिलेंगे।

(3) **एकाधिकार**—एकाधिकार एक ऐसा बाजार है जिसमें पदार्थ या वस्तु का निकटतम स्थानापन्न नहीं होता तथा बाजार में केवल एक ही उत्पादक, फर्म या विक्रेता होता है। इसमें फर्मों के प्रवेश व त्यागने पर पूर्ण प्रतिबन्ध होता है। इसलिए फर्म को हमेशा असामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। इसे निम्न चित्र 2 द्वारा दर्शा सकते हैं।



चित्र 3.

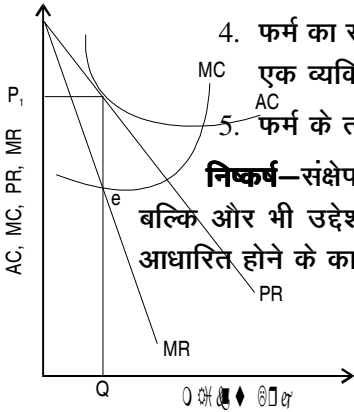
चित्र 2.

इस रेखाचित्र 3 से स्पष्ट है कि फर्म OP कीमत रखेगी तथा OQ मात्रा का उत्पादन करेगी। सन्तुलन शर्त E बिन्दु पर पूरी है। अतः E बिन्दु पर फर्म पर फर्म की औसत कीमत OH के बराबर है तथा औसत आय OP के बराबर है अतः फर्म को PTST के बराबर असामान्य लाभ मिल रहे हैं।

**आलोचनाएं—**

1. फर्म केवल एक ही उद्देश्य, लाभ कमाना नहीं होता बल्कि ओर भी बहुत से उद्देश्य होते हैं।
2. फर्म को पहले से ही अपने लागत व आय वक्रों AR,MR, AC, MC का ज्ञान नहीं होता।
3. भविष्य के बारे में निश्चितता नहीं होती बल्कि भविष्य तो अनिश्चित होता है।
4. फर्म का स्वामित्व व प्रबन्धक एक हो, यह वास्तविकता नहीं है क्योंकि स्वामित्व व प्रबन्धक एक व्यक्ति के बस की बात नहीं होती।
5. फर्म के त्यागने व प्रवेश करने की मान्यता भी गलत है।

**निष्कर्ष—**संक्षेप में हम कह सकते हैं कि फर्म की केवल एक उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता बल्कि और भी उद्देश्य होते हैं तथा Profit Maximisation Theory अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित होने के कारण वास्तविकता से दूर है।



अ. अ. अ. अ. अ.

## अध्याय 19

# बिक्री अधिकतम सिद्धान्त

## Sales Maximisation (Baumol)

**बिक्री अधिकतम सिद्धान्त :** 1948-49 में W.J. Baumol ने संकेत दिया है कि फर्म का उद्देश्य केवल मात्र लाभ अधिकतम नहीं बल्कि बिक्री अधिकतम करना होता है। बामोल ने कहा वर्तमान फर्मों में फर्म का संचालन मालिक नहीं बल्कि मैनेजर करते हैं, मालिक तो फर्म के शेयरधारी होते हैं। ऐसी अवस्था में एक मैनेजर अपने शेयरधारियों (मालिकों) को एक न्यूनतम लाभ की दर प्रदान करते हुए बिक्री अधिकतम करना चाहेगा। इनके निम्न कारण हैं :-

1. क्योंकि मैनेजर की Salary और दूसरी सुविधाएं फर्म की बिक्री के साथ जुड़ी होती हैं न कि लाभ के साथ।
2. वित्तिय संस्थाएँ फर्मों को साख प्रदान वक्त उस फर्म की बिक्री को ध्यान में रखती है। इसलिए एक मैनेजर सस्ती दर पर वित्त पाने के लिए फर्म की बिक्री अधिक चाहेगा।
3. व्यक्तिगत समस्याओं को बिक्री के साथ आसानी से सुलझाया जा सकता है।
4. ज्यादा बिक्री मैनेजर की Protige को बढ़ाती है जिससे दूसरी फर्म भी उस मैनेजर की जरूरत महसूस करती है। परन्तु ज्यादा लाभ की दर मालिक को खुश करती है।
5. मैनेजर अपने मालिक को एक सामान्य लाभ की दर प्रदान करना चाहेगा। क्योंकि एक समय में उपलब्ध कराया गया ज्यादा Profit मालिक Profit की दर के प्रति लालसा बढ़ा देती है।

अतः इन कारणों से मैनेजर बिक्री अधिक चाहेगा तथा मालिकों को न्यूनतम लाभ देगा, नहीं तो उसकी job को खतरा हो सकता है।

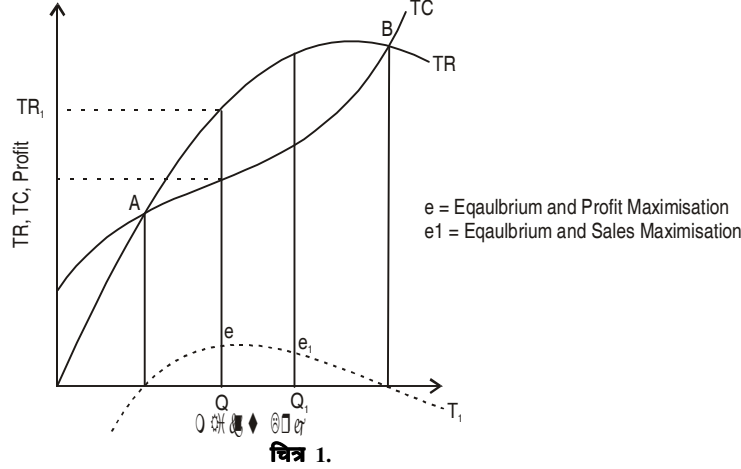
### मान्यताएँ :

1. Time Horizon एक ही अवधि (वर्तमान अवधि) का है।
2. इस अवधि में फर्म बिक्री अधिकतम करना चाहती है।
3. न्यूनतम लाभ की सीमा बाहरी तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। और यदि उससे कम लाभ की दर शेयरधारियों (मालिकों) को प्राप्त होती है तो मैनेजर की नौकरी खतरे में पड़ जाती है।
4. लागत वक्र परम्परागत तरीके ('U' आकार) के माने गए हैं।

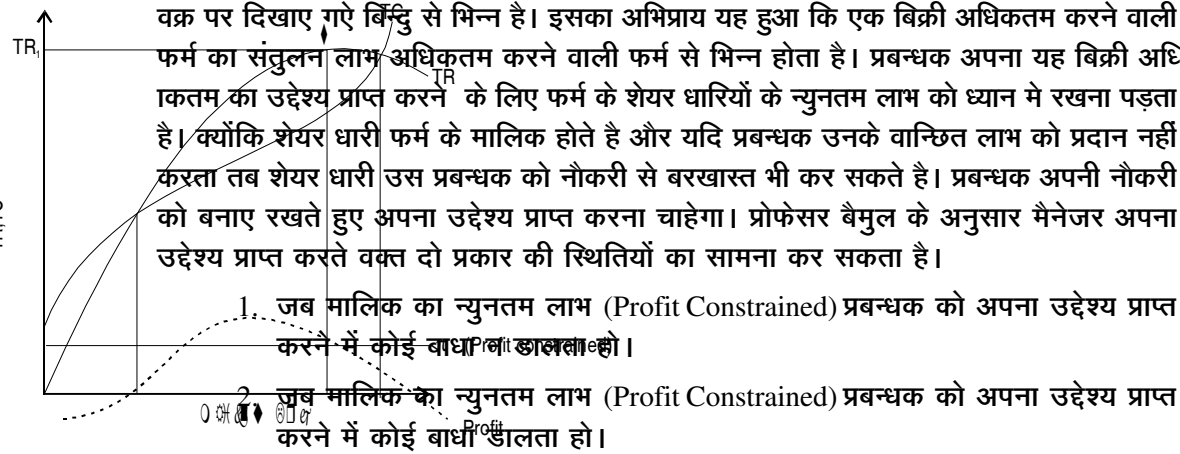
Model :- Static Model

- (A) A Single Product Model without Advertising
- (B) A Single Product Model with Advertising
- (C) A Single Product Model with out adver tising
- (D) A Single Product Model with adver tising

(A) A Single Product Model without Advertising—पहले हम इस सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे जिसमें विज्ञापन व्यय को शामिल नहीं किया। एकल उत्पाद फर्म जिसको प्रबन्धक चलाता हो का उद्देश्य बिक्री अधिकतम होता है न कि लाभ अधिकतम। यदि फर्म का उत्पाद बिना विज्ञापन के सहारे बिकता हो तब फर्म का कुल आयकर से हम यह बता सकते हैं कि फर्म की अधिकतम बिक्री कहां होगी। एक फर्म अपने कुल आय वक्र और कुल लागत वक्र की सहायता से हम यह भी व्याख्या कर सकते हैं कि फर्म यदि बिक्री अधिकतम चाहती है तो फर्म का संतुलन कहां होगा और यदि लाभ अधिकतम चाहती है तब संतुलन कहां होगा जिसकी व्याख्या बैमल के मोडल की व्याख्या करने से पहले जरूरी है। हम निम्न चित्र से कर रहे हैं।



उपरोक्त चित्र में TR वक्र में क बिन्दु पर कुल बिक्री अधिकतम दिखाई गई है। जो कि लाभ वक्र पर दिखाए गए बिन्दु से भिन्न है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक बिक्री अधिकतम करने वाली फर्म का संतुलन लाभ अधिकतम करने वाली फर्म से भिन्न होता है। प्रबन्धक अपना यह बिक्री अधिकतम का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए फर्म के शेयर धारियों के न्यूनतम लाभ को ध्यान में रखना पड़ता है। क्योंकि शेयर धारी फर्म के मालिक होते हैं और यदि प्रबन्धक उनके वांछित लाभ को प्रदान नहीं करता तब शेयर धारी उस प्रबन्धक को नौकरी से बरखास्त भी कर सकते हैं। प्रबन्धक अपनी नौकरी को बनाए रखते हुए अपना उद्देश्य प्राप्त करना चाहेगा। प्रोफेसर बैमुल के अनुसार मैनेजर अपना उद्देश्य प्राप्त करते वक्त दो प्रकार की स्थितियों का सामना कर सकता है।



चित्र 2.



इन दोनों स्थितियों की व्याख्या हम क्रमानुसार निम्न रेखा चित्रों से कर रहे हैं जिससे चित्र न. 2 पहली स्थिति की व्याख्या कर रहा है और चित्र न. 3 दूसरी स्थिति की व्याख्या कर रहा है। चित्र न. 2 के अनुसार जब मालिक का न्यूनतम लाभ प्रबन्धक को अपना उद्देश्य पूर्ण करने में कठिनाई नहीं डालता हो कि व्याख्या करता है। प्रबन्धक मूल आय वक्र के बिन्दु पर जाना चाहता है। जो अधिकतम है। उस समय फर्म को मिलने वाले लाभ मालिक द्वारा आशतित तय किये गये न्यूनतम लाभ से ज्यादा हैं। इस प्रकार प्रबन्धक को मालिक से किसी प्रकार का कोई विरोध का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि प्रबन्धक ने फर्म से जितने लाभ की मालिक आशा करता था को प्रदान कर दिये गये हैं। जिससे मालिक भी संतुष्ट होगा और प्रबन्धक भी अपनी कुल बिक्री को अधिकतम करके संतुष्ट होगा। इस स्थिति को हम (Non Operative profit Constraint) कहते हैं।

### चित्र 3.

**चित्र न. 3 की व्याख्या**—प्रोफेसर बैमुल ने कहा की यह जरूरी नहीं कि प्रबन्धक के उद्देश्य और शेयर धारी के उद्देश्यों में कोई विरोधाभास ना हो यदि ऐसा होता तब प्रबन्धक को अपने आय अधिकतम के उद्देश्य में मालिक के अनुसार समझोता कर लेते हैं। प्रबन्धक को पहले मालिक को संतुष्ट करना होता है। और उसके बाद वह अपना उद्देश्य प्राप्त करता है। चित्र न. 3 में दर्शाया गया है कि मालिक का (P.P) लाभ वक्र है। जो मालिक द्वारा अपने आप तय किया गया है। फर्म (Q.T) एरिया के अंदर ही मालिक इस उद्देश्य को पूर्ण कर सकती है। परन्तु प्रबन्धक का आय अधिकतम का उद्देश्य इस क्षेत्र में पूरा नहीं होता। इसलिए प्रबन्धक वहां तक अपना उद्देश्य प्राप्त करेगा जब फर्म को मालिक के द्वारा तय किये गये न्यूनतम लाभ अवश्य प्राप्त हो रहे हो। इस स्थिति को (Operative Profit Constraint) कहते हैं।

फर्म जब प्रबन्धक के उद्देश्य के अनुसार काम कर रही हो तब उसके कीमत स्तर और लाभ अधिकतम के अनुसार काम कर रही हो के कीमत स्तर में अंतर होता है। बिक्री अधिकतम करने वाली फर्म का कीमत स्तर लाभ अधिकतम करने वाली फर्म के कीमत स्तर की तुलना में कम होता है। जिसकी व्याख्या हम रेखाचित्र न. 4 से कर रहे हैं। इस रेखा चित्र में कुल आगम वक्र के विभिन्न बिंदुओं पर एक सीधी लाईन सी हम कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन को माप रहे हैं। यदि इस रेखा के ढलान में जितनी कमी होती जाती है उतनी ही कीमत कम होती जाती है। रेखा 0 और रेखा 0 से का ढलान भिन्न-भिन्न है। रेखा 0 क लाभ अधिकतम चाहने वाली फर्म का कीमत स्तर है और रेखा 0 स का ढलान बिक्री अधिकतम चाहने वाली फर्म का कीमत स्तर दर्शाती है जो कि 0 क के ढलान से कम है इस रेखा चित्र को हम अगले पेज पर दर्शाते हैं।

चित्र 4.

इस रेखाचित्र में  $ox$  पर उत्पादन तथा  $oy$  पर कुल आय, कुल लागत, कुल लाभ लिए हैं।  $ML$  न्यूनतम लाभ रेखा है जो कि मैनेजर को मालिकों को देना पड़ता है।  $TC$  व  $TR$   $O$  बिन्दु से शुरु है अतः ये दीर्घकालीन लागत व आय हैं।

यदि फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है तो  $OA$  वस्तु की बिक्री होगी क्योंकि  $AH$  अधिकतम लाभ को दर्शा रहा है। परन्तु बामोल के अनुसार फर्म का उद्देश्य बिक्री अधिकतम करना है जो कि वह होगी जहां  $(TR)$  कुल आय अधिकतम होगी।  $TR$  अधिकतम  $R^2$  बिन्दु पर है। अतः फर्म  $OC$  वस्तु की बिक्री करके आय तथा  $CG$  Profit प्राप्त करती है।

फर्म यदि ऐसा करती है तो उसे  $CG$  लाभ होंगे जो कि न्यूनतम लाभ रेखा  $ML$  से कम होंगे इसलिए मैनेजर की Job security को खतरा हो सकता है। इस स्थिति में फर्म उस बिन्दु पर उत्पादन करेगी जहाँ न्यूनतम लाभ उत्पन्न हो रहे हों।  $E$  बिन्दु पर  $TP$  वक्र  $ML$  को काट रहा है अतः फर्म  $BE$  न्यूनतम लाभ प्राप्त करते हुए  $OB$  वस्तु का उत्पादन करेगी तथा  $BR_1$  के बराबर कुल आय प्राप्त करेगी। इस स्थिति में फर्म न्यूनतम लाभ पर अधिकतम बिक्री कर रही है। न्यूनतम लाभ रेखा ( $ML$ ) लाभ वक्र ( $TP$ ) को  $K$  बिन्दु पर भी काट रही है परन्तु उस स्थिति में फर्म की कुल आय कम है अतः वह  $ON$  बजाय  $OB$  उत्पादन करके अधिक बिक्री व अधिक आय ( $TR$ ) प्राप्त कर सकती है जो कि  $BR_2$  है।

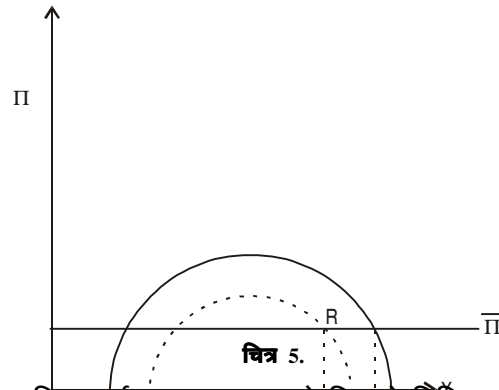
**Effect of Increase in Fixed cost in Equilibrium Position of a Sales Maximiser Firm**

जब कभी फर्म की बंधी लागत में वृद्धि हो जाती है तो फर्म का Total cost curve ऊपर की तरफ सरक जाता है और इस प्रकार Total profit curve नीचे की ओर सरकता है। Sales maximiser फर्म बड़ी हुई लागत की कीमत बढ़ाकर ग्राहकों पर डाल देते हैं। ऐसा उस समय हो सकता है जब Sales maximiser फर्म पर जैसे कि Lump-sum Tax (इकट्टा टैक्स) लगा दिया जाता है।

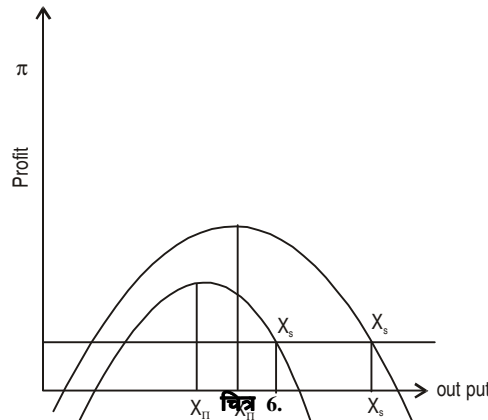
Lump-sum Tax बड़ी लागत का रूप है। अल्पकाल में बंधी लागत ग्राहकों पर नहीं रखी जा सकती बल्कि फर्म को खुद को बर्दाश्त करनी पड़ती है। जब एक फर्म Profit maximiser होती है तब उत्पादन और कीमत को प्रभावित नहीं करती है। अल्पकाल में बल्कि वह स्वयं Lump-sum tax के भाग को सहन करती है। परन्तु यदि एक फर्म Sales maximiser है। जैसा उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है। चाहे कुछ भी Lump-sum tax profit को नीचे की ओर सरका देगा और एक दिये हुए Profit Constraint फर्म उत्पादन के स्तर को कम करेगी। और कीमत को बढ़ा देगी। यह कीमत में वृद्धि उत्पादन में कमी होने के कारण भी होती है। जैसे चित्र में उत्पादन  $X_5$  में गिराकर

A = Profit maximiser  
R = Sales maximiser

$X_{s1}$  हो जाती है परन्तु Baumol यह तर्क देता है कि अन्ततः फर्म Tax को ग्राहकों पर ही टलती है।



जब उत्पादन पर प्रति इकाई Tax लगाया जाये जिसके विशिष्ट-कर Specific tax कहते हैं। यह भी Profit को नीचे बाई ओर सरका देगा। एक दिये हुए Profit Constraint पर Sales maximiser उत्पादन को  $X_s$  से घटाकर  $X_{s1}$  कर देगा और कीमत को बढ़ाएगा और इस प्रकार कुछ tax को ग्राहकों पर टाल देगा। एक profit maximiser firm ही चित्र में दर्शाये गये उत्पादन के अनुसार उत्पादन को XII से घटाकर  $X_s$  कर देगी और वस्तु की कीमत बढ़ाएगी।



चाहे कुछ भी हो sales maximiser फर्म के उत्पादन में कमी profit maximiser firm की अपेक्षा अधिक है जैसे चित्र से स्पष्ट है। मांग में परिवर्तन (Shift) उत्पादन में परिवर्तन एक sales revenue maximisation की अवस्था में अवश्य होगा परन्तु Baumol के model में एक निश्चित नहीं हैं कि कीमत में कितना परिवर्तन होगा। कीमत मांग में परिवर्तन और फर्म की costs conditions पर निर्भर करती है।

## MODEL 2 A SINGLE PRODUCT MODEL WITH ADVERTISING THE ASSUMPTION OF THE MODEL

Model की मान्यताएं :-

1. फर्म का उद्देश्य minimum profit constraint के होते हुए अधिकतम sales revenue प्राप्त करना है।
2. Minimum Profit का निर्धारण बाहर (Exogenously determinant) होता है।

## अध्याय 20

# संतुलित संवृद्धि दर अधिकतम सिद्धांत

## BALANCE GROWTH RATE MAXIMISATION

Balance Growth Rate Maximisation सिद्धान्त Marris ने प्रतिपादित किया। यह उनका व्यवहारवादी सिद्धान्त था। Marris के अनुसार कोई भी फर्म हो वह अपने-अपने उद्देश्य रखकर ही अपना उत्पादन आरम्भ करती है तथा अधिकतम सन्तुष्टि करना चाहती है। उनके अनुसार एक फर्म के मालिक व मैनेजर उस समय सन्तुष्ट होते हैं जब सन्तुलित विकास अधिकतम हो तथा सन्तुलित विकास तभी अधिक हो सकता है जब मालिक की Growth of Capital (पूंजी की संवृद्धि) और मैनेजर की Growth of Demand (मांग की संवृद्धि) अधिकतम हो।

Marris के अनुसार मालिक व मैनेजर की फर्म के प्रति अलग-अलग इच्छाएं होती हैं और वे अपनी-अपनी इच्छाओं को Maximise करना चाहते हैं और दोनों तभी अधिकतम सन्तुष्ट होते हैं जब Balanced Growth हो।

मुख्य उद्देश्य—

$$\begin{aligned} \text{Growth (G)} &= g_d = g_c \\ g_d &= \text{Growth of Demand} \\ g_c &= \text{Growth of Capital} \end{aligned}$$

व्याख्या : एक फर्म के मालिक व मैनेजर की अलग-अलग इच्छाएं होती हैं।

तब वह Utility of owner = f (Profit, Capital, Output, Public Esteem)

एक फर्म के मालिक तभी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकते हैं जब उपरलिखित सभी प्राप्त हो रहे हों

$$\text{Utility of Manager} = (\text{Salaries, Power, Status or Job security})$$

एक मैनेजर अपनी इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही उत्पादन करता है तथा इसके साथ-साथ मालिक के Project को भी ध्यान में रखता है। इन्हें हम निम्न प्रकार लिख सकते हैं।

$$\text{Utility of Owner} = f(g_c)$$

$$\text{Utility of Manager} = f(g_d)$$

Maximise of balanced growth rate—

$$\text{Growth} = \text{Growth of Capital} = \text{Growth of demand}$$

**Constraint**—किसी फर्म के मालिक तथा मैनेजर को कुछ सीमाओं में रहकर कार्य करना पड़ता है अर्थात् इनकी कुछ सीमाएं हैं जिनसे आगे वे नहीं बढ़ सकते, ये सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **Managerial Constraint**—मैनेजर को फर्म की प्रगति करने के लिए निश्चित सीमाओं में ही कार्य करना पड़ता है तथा उसकी Job security बनी रह सकती है। जैसे कि एक निश्चित लाभांश उसे मालिक को देना पड़ेगा नहीं तो उसकी Job security को खतरा हो सकता है।

(2) **Job security Constraint**—मैनेजर को अपनी Job को बनाए रखने के लिए कुछ सीमाओं में रहकर कार्य करना पड़ता है। इन सीमाओं को हम निम्न प्रकार से दर्शा सकते हैं।

$$a_1 \text{ Debt Ratio} = \frac{\text{Value Debt}}{\text{Total Asset}} = D$$

इनका negative effect पड़ता है।

$$a_2 = \text{Liquidity Ratio} = \frac{\text{Liquidity Asset}}{\text{Total Asset}} = \frac{L}{A}$$

यह शुरू में Positive होता है।

$$a_3 = \text{Retained Ratio} = \frac{\text{Retained Profit}}{\text{Total Profit}} = \frac{rR}{r}$$

यह भी Positive होता है

मैनेजर को अपनी Job को बनाए रखने के लिए इन सब बातों को ध्यान में रखना पड़ता है

**MODEL—Marris** के सिद्धान्त के अनुसार Owner तथा Manager को अधिकतम सन्तुष्टि मिलनी चाहिए। तथा दोनों सन्तुलन में हों।

इसे निम्न तरह दर्शा सकते हैं :

$$U \text{ Owner} = gc$$

$$U \text{ Manager} = gd$$

$$d = gc = gd$$

**Instrumental Variable**—फर्म के मैनेजर द्वारा अपनी सन्तुष्टि को बढ़ाने तथा मालिक को सन्तुष्टि को बढ़ाने के लिए किन-किन चरों में परिवर्तन का सहारा ले सकता है, उसे हम Instrument Variable कहते हैं।

मैनेजर निम्न चरों में परिवर्तन करके सन्तुष्टि बढ़ा सकता है।

$$P = C + A + R \text{ and } D + M$$

$$P = \text{Price}$$

$$C = \text{Capital}$$

$$A = \text{Advertisement,}$$

$$R \& D = \text{Reserach and development, } M = \text{Profit}$$

हम P तथा C को स्थिर मानकर चलते हैं। और जब हमें Average Profit निकालने हों तो  $M = P - C - A - R \& D$  क्योंकि P और C को हम स्थिर मानते हैं तथा R & D का M के साथ Negative सम्बन्ध होता है, और फिर

$$R \& D = \text{Record \& Development - Rate of growth Demand}$$

$$gd = f_1(d, k)$$

$$d = \text{diversification ( new product)}$$

$$k = \text{Success of new product}$$

$$k = f_2(d, P, A, R \& D, \text{Internal Value})$$

हम यहाँ P को स्थिर मानते हैं तथा इनका K के साथ Positive सम्बन्ध है। इसलिए

$$m = f_3(A, R \& D)$$

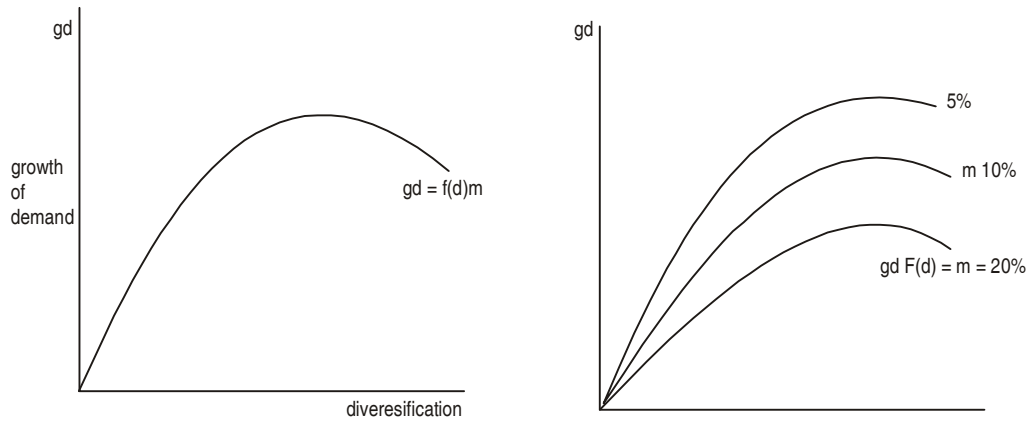
M के साथ इनका Negative सम्बन्ध है।

इसलिए  $K = f_4(d, m)$

m तथा k का भी negative सम्बन्ध है।

इसलिए  $gd = f(d, m)$

इसको हम चित्र द्वारा दर्शा सकते हैं।



चित्र 1.

यदि हम अपने Profit rate को बढ़ाकर 10% या 20% करना चाहते हैं तो growth of Demand कम हो जाएगी और वक्र नीचे की तरफ खिसक जाएगा। यदि हम Profit rate कम करते हैं तो growth of Demand अधिक हो जाएगी अतः वक्र उपर की तरफ खिसक जाएगा और एक फर्म का मैनेजर तभी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है जब gd अधिकतम हो।

**Rate of growth of Capital Supply :-** एक फर्म का मालिक भी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है और वह अधिकतम सन्तुष्टि तब होता है जब

$$U_{owner} = gc$$

= growth of capital अधिकतम हो

तथा  $gc = f_1$  और

Marries सभी Constrained को a से दर्शाता है।

$$\pi = f(m, k/x)$$

यहाँ  $k/x =$  पूंजी उत्पादन अनुपात

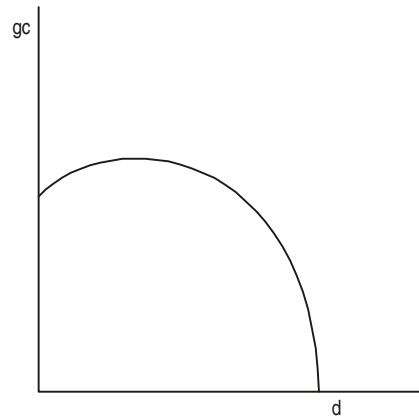
और  $k/x = f(d)$

हम पूंजी उत्पादन अनुपात को स्थिर मान लेते हैं तथा एक सीमा तक पूंजी उत्पाद अनुपात कम होता जाता है तथा उसके बाद बढ़ना शुरू करता है इसलिए -

$$\pi = f(m, d)$$

इसलिए  $gc = f(m, d)$

इसको हम रेखाचित्र द्वारा भी दर्शा सकते हैं।



चित्र 2.

लेकिन owner तथा manager का मुख्य उद्देश्य  $g = gc = gd$  होता है। इसलिए दोनों तभी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकते हैं जब  $gd = gc$  हो। तथा दोनों अधिकतम बिन्दु पर स्थापित हों जो निम्न चित्र में स्पष्ट है :-

फर्म के मालिक तथा मैनेजर बिन्दु E पर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहे हैं इसलिए ये दोनों बिन्दु E पर ही सन्तुलन में हैं। क्योंकि बिन्दु G पर Profit rate अधिकतम होने से growth of Demand कम है और बिन्दु F पर Growth of demand अधिक होने पर profit rate कम है। इसलिए बिन्दु E पर ही दोनों सन्तुलन में है क्योंकि बिन्दु E पर growth of Demand तथा Profit rate दोनों अधिकतम हैं।

चित्र 3.

Marris तथा Baumol के सिद्धान्त की तुलना तथा इन तुलनाओं के अन्दर ही मान्यताओं के आधार पर आलोचनाएं की गई हैं—

इन दोनों का एक ही मत है कि फर्म के उद्देश्य का निर्धारण manager द्वारा किया जाता है। किन क्षेत्रों में कितना परिवर्तन करना है, कीमतें क्या रखनी हैं, लाभ की दर क्या होनी चाहिए, Advertisement कितना खर्च करना चाहिए आदि। परन्तु फिर भी दोनों के मध्य निम्न अन्तर हैं :-

(1) Baumol के Model में Manager केवल अपनी सन्तुष्टि अधिकतम करना चाहता है (Sales maximisation करके) परन्तु Marris के Model में manager अपनी सन्तुष्टि के साथ-2 Owner की सन्तुष्टि भी अधिकतम करना चाहता है।

(2) दोनों ही सिद्धान्तों में manager project की मांग बढ़ाना चाहते हैं। परन्तु कुछ सीमाओं में Baumol के अनुसार manager sales maximise करना चाहेगा और Profit के minimum

constant रखेंगे। परन्तु Marris के अनुसार Project की मांग को बढ़ाने के लिए फर्म rate of Diversification करना चाहेगी।

(3) Boumol के सिद्धान्त में Growth of Capital के बारे में मैनेजर की रुचि को नहीं बताया गया। उनके अनुसार फर्म को ज्यों-2 लाभ मिलते जायेंगे gc अपने आप होती जाएगी। परन्तु Marris के अनुसार एक मैनेजर Owner को खुश करने के लिए gc को अधिकतम करना चाहेगा।

(4) दोनों ही सिद्धान्तों में Profit का निर्धारण करना आन्तरिक मुद्दा है न कि मुख्य उद्देश्य। दोनों का यह भी मानना है कि फर्म सामान्यतया अपना विस्तार करने के लिए retained profit का सहारा लेती है।

(5) Marris लाभ के साथ-2 growth rate को भी अधिकतम करना चाहता है। इसका मानना है कि Profit तथा growth एक दूसरे के विपरीत नहीं है। परन्तु Baumol के अनुसार Project की growth को बढ़ाने के लिए project का त्याग करना पड़ता है।

#### Marris तथा Baumol के सिद्धान्त में Instrumental सम्बन्धी अन्तर—

(1) **Price के आधार पर**—दोनों ही सिद्धान्तों में कहा गया है कि फर्म कीमत में वृद्धि या कमी का सहारा नहीं लेगी क्योंकि एक फर्म के कीमत कम करने पर दूसरी फर्म उसकी होड़ में शामिल हो सकती है। यह भी माना गया है कि फर्म को अपनी उत्पादन को Average Cost का पता होता है।

(2) **Output के आधार पर**—Baumol के अनुसार फर्म अपने न्यूनतम लाभ को ध्यान में रखते हुए तब तक output को बढ़ती जाएगी जब तक revenue maximise न हो जाए। परन्तु Marris के अनुसार फर्म अपनी growth of demand को or growth of capital को ध्यान में रखते हुए चलेगी। Marris भी optimum output के बारे में जिक्र नहीं किया।

(3) **R and D or Advertising पर खर्च**—Baumol के अनुसार Advertisement को बढ़ाने से आर व बिक्री बढ़ती है। परन्तु Baumol ने कम्पनी के R and D के बारे में कुछ नहीं बताया। Marris के अनुसार एक फर्म Advertisement or R and D का सहारा लेगी। जिससे उसके Project की मांग बढ़े। इसके लिए वह Profit भी कम कर सकता है।

(4) **वित्तीय नीति**—Baumol के अनुसार एक मैनेजर retained profit का सहारा लेकर अपनी फर्म का विस्तार कर सकता है। उसके बारे में Baumol में कोई सीमा नहीं बताई। परन्तु Marris ने वित्तीय नीति सम्बन्धित तीन धारणाओं को बताया जिसके बारे में एक मैनेजर निर्णय ले सकता है।



## अध्याय 21

# प्रबन्धक की उच्च उपयोगिता या विलियमसन का प्रबन्धकीय डिस्क्रिशन मॉडल

## MANAGERIAL UTILITY MAXIMISATION OR WILLIAMSON'S MODEL OF MANAGERIAL DISCRETION

---

सन् 1963 में O. Williamson ने अपने article 'Managerial Discretion and business behaviour' में एक फर्म के उद्देश्य क्या होंगे और उसमें एक प्रबन्धक का क्या role होगा, का विवेचन दिया।

O.W. ने बताया कि एक मैनेजर की यह इच्छा होती है कि वह अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करे न कि लाभ को अधिकतम करे। क्योंकि ज्यादा लाभ तो Owner की सन्तुष्टि बढ़ाते हैं। हालांकि उनका विचार है कि मैनेजर यह बिल्कुल नहीं चाहेगा कि मालिक को बिल्कुल भी लाभ न मिले। यदि वह ऐसा करता है तो यह मैनेजर की Job security के लिए खतरा हो सकता है।

प्रबन्धक की उपयोगिता निम्न बातों पर निर्भर करती है :-

$$U_m = f(\text{Salary, Security, Power, Prestige})$$

उपयोगिता को प्रभावित करने वाले तत्वों में Salary एक ऐसा तत्व है जिसको हम माप सकते हैं परन्तु अन्य तत्वों को हम सीधे तौर पर नहीं माप सकते। हम उनके लिए वो Proxy Variable ले सकते हैं जिससे उनकी सन्तुष्टि के बारे में पता चलता है जो निम्न है :-

- (1) Slack Payment (emolument)
- (2) Discretion Investment

**(1) Slack Payment :-** इसमें मैनेजर के वे सारे खर्चे आ जाते हैं जो कम्पनी salary के अलावा करती है जैसे अच्छा आफिस, कार, चपरासी, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि। परन्तु यह माना जाता है कि यदि मैनेजर को ये सुविधाएँ मिलें तो वह अपने आप को ज्यादा Prestigious महसूस करे। परन्तु इनके अभाव में कोई मैनेजर नौकरी भी नहीं छोड़ता।

**(2) Discretion Investment :-** यह Proxy variable बताता है कि मैनेजर ज्यादा Powerful अपने आप को उस समय समझता है जब उसके हाथ में ऐसी काफी पूंजी हो जिसको वह मनचाहे ढंग से प्रयोग कर सके। यह वह पूंजी होती है जो कम्पनी के सारे लाभ व खर्चे निकालकर बचती है।

$$\text{अतः } U_m = f(\text{Salary, M, Id})$$

M = Emolument

Id = Discretion Investment

Williamson ने Model शुरू करने से पहले निम्नलिखित परिभाषाएँ ली हैं :-

**1. Price function:-**

$$P = f(x, S, E)$$

P = Price

X = वस्तु की मांगी गई मात्रा

S = Staff expenditure

E = Other factors बाहरी तत्व

$\frac{dp}{dx} < 0$  अर्थात् P का X से Negative सम्बन्ध है।

$\frac{dp}{ds} < 0$  अर्थात् P का S से Positive सम्बन्ध है।

$\frac{dp}{dc} < 0$  अर्थात् P का C से Positive सम्बन्ध है।

**2. Cost Function :**

$$C = f(x)$$

C = Cost

X = Output

$\frac{dc}{dx} > 0$  C का X के साथ Positive सम्बन्ध है।

Williamson के अनुसार एक फर्म की आय को निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं।

**1. Actual Profit—**

$$\pi = R - C - S$$

$\pi$  = Actual Profit

R = Total Revenue (TR)

C = Total Cost (TC)

S = Staff Expenditure

अतः Actual Profit फर्म की कुल आय में से कुल लागत व Staff Expenditure घटाने पर आता है।

**2. Reported Profit ( $\pi_r$ )—**

$$\pi_r = \pi - M$$

$$\pi_r = \pi - M$$

$\pi_r$  = Actual Profit

$$\pi_r = R - C - S - M$$

M = Emolument (Slack payment)

**3. Minimum Profit 0—**ये वे लाभ है जो Owner को अवश्य देने पड़ते हैं नहीं तो मैनेजर की Job security को खतरा होता है। इसलिए Reported Profit का Minimum Profit + Tax के जोड़ से बड़ा होना आवश्यक है क्योंकि नहीं तो मैनेजर की Job को खतरा हो सकता है।

$$\pi_r = \pi_0 + T$$

[T = Tax]

4. Discretionary Investment (Id)—Company की आय में से लाभ तथा अन्य खर्च निकालने पर मैनेजर के पास मनचाहे उपयोग हेतु बची पूंजी।

$$Id = \pi_R = \pi_0 - T$$

अतः Reported Profit में से minimum profit व Tax घटाने पर बची पूंजी।

5. Discretionary Profit :  $(\pi_d) = \pi_d = \pi - \pi_0 - T$

Model :  $M = 0$

Williamson के अनुसार एक मैनेजर की उपयोगिता को निम्न तरह दर्शा सकते हैं :

$$U_m = f(S, Id)$$

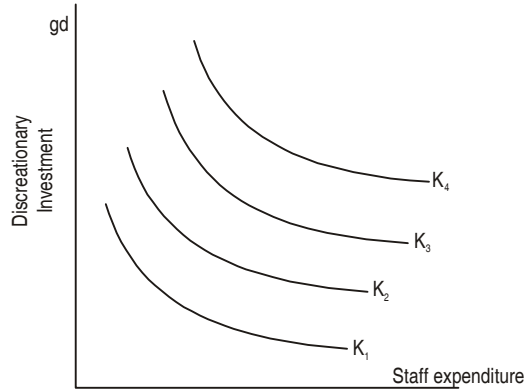
उपयोगिता की शर्तें (i)  $\pi_R > 0 + T$

(ii)  $Id = \pi_R = \pi_0 - T$

इसलिए हम

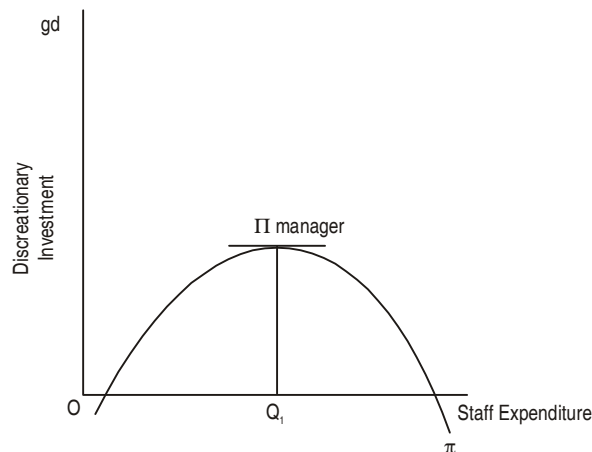
$$U_m = f(S, \pi_R = \pi_0 - T) \text{ लिख सकते हैं।}$$

= Indifference curve की सहायता से मैनेजर की एक समान सन्तुष्टि या S, Id के विभिन्न संयोगों को दर्शा सकते हैं :-



चित्र 1.

रेखाचित्र में ox पर salary तथा oy पर Discretionary Profit है।  $IC_1, IC_2, IC_3, IC_4$  चार तटस्थता वक्र है। प्रत्येक तटस्थता वक्र पर प्रत्येक बिन्दु पर समान सन्तुष्टि मिलती है परन्तु ऊंचे तटस्थता वक्र पर अधिक सन्तुष्टि मिलती है जबकि प्रत्येक तटस्थता वक्र पर Id तथा S के विभिन्न संयोग बिन्दु है। मैनेजर को Owner के Profit का भी ध्यान रखना पड़ता है नहीं तो उसकी नौकरी को खतरा होता है।



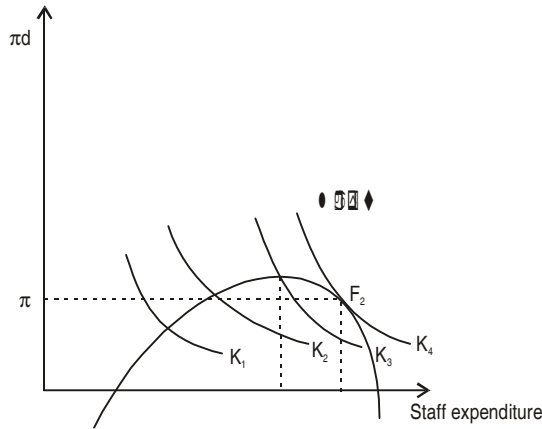
चित्र 2.

इस चित्र के द्वारा स्पष्ट है कि एक मैनेजर अपनी सन्तुष्टि के साथ-साथ मालिक का Profit भी चाहता है। B तटस्थता वक्र पर वह  $0\pi d_2$  के समान Owner को Profit दे रहा है। लेकिन स्वयं को खर्च के लिए केवल ही  $OQ_1$  ही प्राप्त हो रहे हैं। फिर वह उससे ऊंचे तटस्थता वक्र C पर जाता है जिससे वह owner को अधिकतम लाभ देकर खुश रखता है जो  $0\pi d_1$  है तथा वह Staff expenditure के लिए भी पहले से अधिक मिलता है जो  $OQ_2$  है। लेकिन वह और अधिक सन्तुष्टि चाहता है जो तटस्थता वक्र D से उसे प्राप्त हो रही है और बिन्दु E पर वह owner के  $0\pi d_2$  Profit भी देता है तथा स्वयं को अधिकतम staff expenditure  $OQ_3$  प्राप्त कर रहा है तथा सन्तुष्टि भी है और मालिक को भी न्यूनतम लाभ प्रदान कर रहा है। इसलिए उसकी नौकरी को भी खतरा नहीं है।

### फर्म का सन्तुलन

#### आलोचनाएँ :-

- (1) O. Williamson ने केवल मैनेजर की Utility को दिखाया है।
- (2) वह केवल staff expenditure को ही व्याख्या करता है, बाकी खर्चों को भुला देता है।
- (3) मैनेजर केवल अपनी ही Power, Salary तथा Prestige को देखता है, मालिक को केवल न्यूनतम लाभ ही देता है।



चित्र 3.

**सारांश—**संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि O. Williamson की Theory अधिक सफल नहीं रही है। क्योंकि ये केवल मैनेजर की Utility को ही बात करते हैं और मालिक के लाभ पर ध्यान नहीं देते और न ही वस्तुओं की बात करता है कि फर्म किस प्रकार की वस्तुएं तैयार कर रही है।

## अध्याय 22

### साइर्ट एवं मार्च का व्यवहारिक मॉडल

#### THE BEHAVIOURAL MODEL OF CYERT AND MARCH

व्यवहारिक सिद्धान्तों में Cyert और March के सिद्धान्त को विशेष रूप से गिना जाता है। उनके इस सिद्धान्त को, जो 1955 में एक अमेरिकन जर्नलस में प्रकाशित हुआ था, निम्न मुख्य क्रम में अध्ययन करेंगे।

1. फर्म ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिसमें स्वार्थ संघर्ष चलता रहता है।
2. फर्म के अन्दर विभिन्न समूह किस प्रकार अपने मार्ग उद्देश्य (Demand Goal) तय करते हैं।
3. उच्चतम प्रबंध कमेटी द्वारा फर्म का उद्देश्य तय करना- (सन्तोषजनक व्यवहार)
4. फर्म के अन्दर पाये जाने वाली विभिन्न स्वार्थ प्रतिद्वन्द्वता का समाधान करने की विधि - (साधन)
5. प्रबन्धक कमेटी द्वारा फर्म के उद्देश्य तय करने और लागू करने की प्रक्रियाएं।
6. व्यवहार वादी सिद्धान्त में अनिश्चितता के वातावरण का हल
7. आलोचनाएं

**1. फर्म के अन्दर स्वार्थ संघर्ष :-** प्रो० Cyert and March के वहु उत्पाद तैयार करने वाली फर्म की अध्ययन करके बताते हैं ऐसी फर्मों में निर्णय लेने की प्रक्रिया में क्या-क्या मुसीबतें आती हैं। एक फर्म में विभिन्न प्रकार के वर्ग जुड़े हुए होते हैं और उनके विभिन्न उद्देश्य हैं मुख्य वर्ग- 1. प्रबन्धक 2. श्रमिक 3. शेयर धारी 4. उपभोक्ता 5. सप्लायर्स 6. बैंक 7. टैक्स इन्सपैक्टर इत्यादि।

**2. आकांक्षा स्तर: (Aspiration level)**—प्रो० सियर्स और मार्च के अनुसार फर्म का उद्देश्य-फर्म के सदस्यों की मांगों पर निर्भर करता है। सदस्यों की माँग को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व-

1. आकांक्षा स्तर
2. भूतकाल में सफलता-अपनी माँग मनवाने की
3. उनकी आशाएं
4. दूसरे वर्गों की सफलता
5. उनको मिलने वाली सूचना पर

हर वर्ग की माँग इतनी ज्यादा होती है जिसको पूर्ण से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए एक समय अवधि में हर वर्ग अपनी सबसे महत्वपूर्ण माँगों को ही उच्चतम प्रबन्धक के सामने रखता है।

माँग और भूतकाल सफलता में बहुत गहरा सम्बन्ध है। विभिन्न वर्गों द्वारा उठाई गई सभी माँगों को भी पूरा नहीं किया जा सकता। कितनी माँगों किस वर्ग की स्वीकार कर ली गई - यह उनके तक (Bargaining Power पर निर्भर करती है)

**3. फर्म का उद्देश्य-सन्तोषजनक व्यवहार :-**

1. उत्पादन उद्देश्य
2. स्टाफ उद्देश्य

3. बिक्री उद्देश्य
4. बाजार हिस्सा उद्देश्य
5. लाभ उद्देश्य

फर्म के उद्देश्य अन्तिम तौर पर उच्चतम प्रबन्धक द्वारा ही तय किये जाते हैं। इन उद्देश्य को तय करते समय शिखर प्रबंधन-जहाँ तक संभव हो सके, विभिन्न वर्गों के संघर्ष मय उद्देश्य के पूरा करने की कोशिश करता है।

फर्म प्रबंधन अधिकतम लाभ की बजाय-सन्तोषजनक संगठन को ज्यादा महत्व देती है। जिसमें 1. सन्तोषजनक उत्पादन 2. सन्तोषजनक बाजार का हिस्सा 3. सन्तोषजनक लाभ की दर 4. सन्तोषजनक प्रतिष्ठा (देश में) आदि प्राप्त होती है।

प्रो० सियर्ट और मार्च यह भी बताते हैं कि इस प्रकार सन्तोषजनक व्यवहार- सीमित विवेकशीलता (bounded Rationality) के आधार पर लिए जाते हैं। शिखर प्रबन्धक Global Rationality में अपना निर्णय ले सकता।

**4. वर्गों में अन्तर्द द को कम करने के समाधान :-** शिखर प्रबन्धन के पास विभिन्न प्रकार के ऐसे उपाय हैं जिसके साहरे वह वर्ग संघर्ष को कम, यह पूर्ण हल कर सकती है।

1. Money Payment
2. Side Payment (Policy Commitment Ingeenieer)
3. Slack Payment.

ये सभी Slack का प्रयोग फर्म अपनी Performance के आधार पर सकेगी।

4. Sequential attention of demands.

**5. निर्णय लेने की प्रक्रिया—**फर्म में निर्णय प्रशासन के विभिन्न स्तर पर लिये जाते हैं। हम इनको दो भागों में बांटते हैं।

1. शिखर प्रबंधन के स्तर पर लिये गये किस वर्ग को कितना बजट देना है।

(i) Financial Criteria (ii) Improvement Criteria

2. निचे के स्तर पर लिए गये निर्णय (Blue Print)

**6. अनिश्चिता और फर्म का व्यवहार का वातावरण:—**

1. tacit collusion
- (i) Mantual-Uncertaining
- (ii) Competition Uncertaining

**7. आलोचना :- (Critique)**

1. Behavioural theory का महत्वपूर्ण aspect (पहलू) यह है कि फर्म के अंदर ही साधनों का पुनःबटवारा करती रहती है जबकि नहीं होते। जबकि goals satisfy परंपरागत सिद्धान्त में यह कमी पाई जाती थी। वास्तव में देखा जाए तो traditional theory साधनों के बंटवारों के लिए सारा अर्थव्यवस्था में market (price) mechanism पूर्ति की सहायता की। इस प्रकार ये दोनों सिद्धान्त एक दूसरे से पूरक है। प्रतिस्थान नहीं।
2. व्यय करने में ढील (slack) केवल manager को प्रदान की गई है जिसको managerial slack कहते हैं। परंतु फर्म के अन्य सदस्यों को भी slack payments किस सुविधा भी प्रदान की जाती है। जिसके प्रभावों की व्याख्या सिद्धान्त में नहीं की गई।
3. वास्तव में यह फर्म के व्यवहार की व्याख्या नहीं करती क्योंकि किसी फर्म के particular action की व्याख्या किये बिना ही उसके व्यवहार का अध्ययन किया गया है।

4. Cyert and March ने Industry equilibrium का अध्ययन नहीं किया इसलिए फर्म के interdependence की अवहेलना की गई है।
5. इस सिद्धान्त में बाहर से प्रवेश करने वाली फर्मों की धमकी को भी ध्यान में नहीं रखा गया है।
6. इस सिद्धान्त में एक फर्म वास्तविक जगत में किस प्रकार अल्पधिकार के अंतर्गत कीमत और उत्पादन का निर्धारण करती है। कि व्याख्या पूर्ण रूप से छोड़ दी गई है।
7. Behaviour theory का short sighted (अल्पकालीन) अध्ययन करती है यद्यपि यह निश्चित है कि uncertainty of the market का ध्यान term planning में भी रखा जाता है। परंतु अधिकतर निर्णय long term planning के अंतर्गत ही लिये जा सकते हैं। इसलिए फर्म की आलोचना की गई है। कि केवल अल्पकालीन planning का ही ध्यान किया गया है।